ग्लोबल संस्कृत फोरम नई दिल्ली एवं
उत्तराखण्ड के अनेक महा.वि./वि.वि. की प्रस्तुति

योग की वैश्विक दृष्टि

GLOBAL SANSKRIT FORUM
वैश्विक संस्कृत मञ्च
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

प्रधान सम्पादक
प्रो. विष्णुपद महापात्र, प्रो. राम विनय सिंह
सम्पादक
डॉ. राजेश कुमार मिश्र

योग की वैश्विक दृष्टि

अमृतब्रह्म प्रकाशन
Amritbrahma Prakashan
प्रयागराज

योग की वैश्विक दृष्टि

प्रधान सम्पादक

प्रो. विष्णुपद महापात्र

प्रो. राम विनय सिंह

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

प्रयागराज

ISBN: 978-81-989024-0-5

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

63/59, मोरी, दारागंज, प्रयागराज – 211006

सम्पर्क +91-9450407739, 8840451764

Email: amritbrahmaprakashan@gmail.com

योग की वैश्विक दृष्टि

प्रधान सम्पादक : प्रो. विष्णुपद महापात्र, प्रो. राम विनय सिंह

सम्पादक : डॉ. राजेश कुमार मिश्र

© ग्लोबल संस्कृत फोरम, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2025

मूल्य : 699/-

The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusion reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of Author. The publisher/Editors/Editorial Board bears no responsibility for them whatsoever.

मुद्रक

Infinity Imaging Systems

नई दिल्ली

प्रो.बिष्णुपदमहापात्रः

आचार्यः , न्यायविभागः अद्वैतवेदान्तविभागाध्यक्षश्च

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-११००१६

शुभाशंसा

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

योगस्यमहत्त्वंसर्वथाविद्यतएव। योगेनैवचित्तस्यएकाग्रतांप्राप्तुंशक्यते। यश्चित्तस्य एकाग्रतावस्थायां सद्भूतमर्थं प्रकाशयति, क्लेशान् शमयति, कर्मबन्धनानि शिथिलयति, निरोधावस्थाम् अभिमुखं करोति, स संप्रज्ञातो नाम योगः। योगेसंप्रज्ञातः समाधिः सबीजः समाधिरप्युच्यते, अत्र बीजस्यावलम्बनस्य वा सद्भावात्। संप्रज्ञातो योगश्चतुर्विधो भवति- वितर्कानुगतः, विचारानुगतः, आनन्दानुगतः, अस्मितानुगतश्चेति।

सर्ववृत्तीनां निरोधेतु असम्प्रज्ञातः समाधिःभवति। योगे स च समाधिः निर्बीजः समाधिरप्युच्यते, अत्र बीजस्यावलम्बनस्य वा असद्भावात्। असंप्रज्ञातः समाधिःद्विधाभवप्रत्ययः, उपायप्रत्ययश्चेति। ज्ञानोन्मेषाभावेन विदेहानां प्रकृतिलीनानां च भवप्रत्ययः समाधिः। 'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्', 'श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्', श्रद्धा-वीर्य-स्मृति-समाधि-प्रज्ञा-समवेतानाम् उपायप्रत्ययः समाधिः। उपायप्रत्यये प्रज्ञाया उदयात् संस्काराणां दाहाच्च व्युत्थानाशङ्का न संभवति। उपायप्रत्यय एव वास्तविकः समाधिः भवति इति योगदर्शनस्य सिद्धान्तः।तादृशं सिद्धान्तम् अङ्गीकृत्य **"योग की वैश्विक दृष्टि"** ग्रन्थरत्नं

प्रकाश्यते इतिमोमुद्यतेमेचेतः। विशेषतः योगशास्त्रे विद्यमानानि यानिमानसिक-सामाजिकाभ्युदयतत्त्वानिवैज्ञानिकतत्त्वानि च विद्यन्ते तेषां तत्त्वानां समाजोन्मुखीकरणम् अनेन ग्रन्थरत्नेन भविष्यतीतिमेभाति । एतदर्थं सम्पादकेभ्यश्च भूरिशः धन्यवादाः शुभाशीर्वादाश्च प्रदीयन्ते। अनेन संस्कृतजगति निगूढतत्त्वानां समुद्घाटनाय एतेषां सम्पादकानां शरीर-वाग्-बुद्धि-मनांसि सततं सुस्थतामेकरूपतां च प्राप्नुयुरितिभगवन्तं विश्वनाथं सम्प्रार्थ्य विरमामीति शम् ।

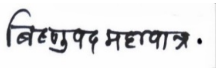

प्रो.बिष्णुपदमहापात्रः

आचार्यः ,

न्यायविभागः अद्वैतवेदान्तविभागाध्यक्षश्च

श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विश्वविद्यालयः

प्रधान-संपादकीय

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति- इन पञ्चविध चित्तवृत्तियों को अंतःकरण से दूर कर देना ही चित्त का शुद्धीकरण है, और वास्तव में यह शुद्धीकरण ही योग है। *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'* कहकर योग को परिभाषित करते हुए महामुनि पतञ्जलि ने इसी चित्तवृत्ति के उत्प्रेरक मार्ग को निरुद्ध कर देने की बात की है। योगवार्तिककार विज्ञानभिक्षु ने तो स्पष्ट ही लिखा कि मैं उस महामुनि पतञ्जलि के प्रति विनत हूँ जिन्होंने योग के द्वारा चित्त के मल को दूर कर दिया, पद अर्थात् व्याकरण महाभाष्य द्वारा वाणी(भाषा) के मल को दूर किया और जिन्होंने वैद्यक विद्या की ज्ञानपरक टीका द्वारा शारीरिक रोग रूपी मल को दूर किया-

"योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पातञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽहम्।।"

यह योग विद्या किसी व्यक्ति अथवा किसी समुदाय अथवा किसी स्थान मात्र के लिए नहीं; बल्कि संपूर्ण विश्व-मानवता के कल्याणार्थ है। यह लोक से परलोक अथवा स्थूल से सूक्ष्म के प्रति प्रस्थान है। जब अंतस्थ विकृतियाँ चित्त का स्थान छोड़ देती हैं तभी उस रिक्त शुद्ध स्थान पर द्रष्टा पुरुष कैवल्यवत् अवस्था में अवस्थित हो जाता है। यह अवस्था ही योगी की चिन्मयवस्था होती है। इसे आकस्मिक रूप से नहीं, बल्कि यम-नियमादि के साधना-क्रम से ही सिद्ध किया जा सकता है। योग-सूत्र में महर्षि पतञ्जलि ने अष्टाङ्ग-मार्ग से सिद्ध करने हेतु इसे क्रमिक रूप से चार पादों में विभक्त कर स्पष्ट किया है। योग-सूत्र पर यद्यपि अनेकानेक टीकाएँ विगत 2000 वर्षों में हुई हैं तथापि इसका रहस्य अद्यावधि अनुद्घाटित ही है, सार्वजनिक नहीं हो सका! कदाचित् हो भी नहीं; क्योंकि यह केवल सिद्धान्त का विषय नहीं, प्रयोग का विषय है। सिद्धान्त और अनुप्रयोग में यथायोग्य साम्य बिठाने के क्रम में ही अनेक साधक इस ओर

लिखने के लिए प्रवृत्त होते रहे हैं। कुछ तो *'जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई'*की तरह ऐसे लीन हो गए कि उन्होंने उस अनुभव को बताना उचित ही नहीं समझा और जिन्होंने कुछ बताने की कोशिश की वे उस अनिर्वचनीय का सही-सही निर्वचन ही नहीं कर सके, आस-पास का वृत्त-वर्णन भर होकर रह गया। कुछ सिद्धान्त में ही उलझे रह गए तो कुछ बेतरतीब प्रयोगों में ही योग का साफल्य ढूँढते रहे। अन्ततः योग का एकान्त पथ कभी राजपथ न बन सका! यह योग तपस्वी के निजी तप से ही तप्त जलधारा बनकर रह गया। इसका परिणाम हुआ कि आज भी योग पर लिखने, सोचने और करने की गुंजाइश उसी तरह बनी हुई है।

यह अभिनव ग्रंथ *'योग की वैश्विक दृष्टि'* भी इस श्रृंखला में ही एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। वैश्विक संस्कृत मञ्च के द्वारा योगभूमि उत्तराखण्ड में आयोजितसंगोष्ठी में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विषय-संगत आलेखों का यह समुच्चय निश्चय ही योग पर शोध दृष्टि से कार्य करने वाले साधकों के लिए मार्गदर्शक होगा। विविध विद्वानों ने विविध दृष्टिकोणों से शोधपरक आलेख लिखे हैं, यह इस पुस्तक का वैशिष्ट्य है। वे समस्त मनीषी आचार्य साधुवादार्ह हैं। वैश्विक संस्कृत मञ्च के अन्ताराष्ट्रिय सचिव व संपादक डॉ. राजेश कुमार मिश्र जी को इस ग्रंथ रत्न की प्रकाशन के अवसर पर भूयसी बधाइयाँ और शुभकामनाएँ समर्पित करता हूँ कि आपके सात्त्विक श्रम से यह सारस्वत प्रकल्प पूर्ण हो सका है। भगवती सरस्वती से यह कामना करता हूँ कि वह निरंतर इस विश्वव्यापी संस्कृत सेवा यज्ञ को अपनी कृपा का बल प्रदान करती रहें और हम सब संगत भाव से संस्कृत का प्रचार-प्रसार करते हुए **'योगः कर्मसु कौशलम्'**को सार्थक बनाते रहें। इति शम्।

प्रो. राम विनय सिंह,

अध्यक्ष- वैश्विक संस्कृत मञ्च, उत्तराखण्ड प्रान्त एवं

आचार्य, संस्कृत विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज

देहरादून, उत्तराखण्ड

विषयानुक्रमणिका

क्र.	आलेख	लेखक/लेखिका नाम	पृ.सं.
1.	महामुनि पतंजलि और योगसूत्र	दिनेश शाह	11
2.	योग एक विज्ञान है	नयना. बी. गार्गी	26
3.	अष्टांग योग में नियम वैशिष्ट्य	प्रा. डॉ. सोलंकी मंजुलाबेन नाथाभाई	34
4.	अष्टांग योग में यम वैशिष्टय	डॉ. नरेन्द्र कुमार	45
5.	अष्टाङ्गयोगः	देवज्योतिकुण्डुः	54
6.	RELEVANCE OF AṢTĀṄGAYOGA IN THE STRESS-AFFLICTED SOCIETY	Dr. Sapna O. P.	71
7.	भारत के विशिष्ट योगाचार्य: शिवानंद सरस्वती	डॉ. ऋषिका वर्मा	77
8.	विशिष्टयोगीश्यामाचरणलाहिरीमहाभागनां क्रियायोगसाधना	सुफलमोदकः	86
9.	आधुनिकससंस्कृतसाहित्ये पण्डितमूर्धन्य सीतानाथाचार्यस्य अवदानम्	सुमना साँतरा	94
10.	वैदिक साहित्य में योग का स्वरूप	डॉ. तरुलता वी पटेल	106
11.	जैनसाहित्य में योगविश्लेषण	डॉ. ज्योति बोथरा	121
12.	योग निर्मित मानवीय व्यवहार का शुभपथ	डॉ. उर्वशी सी. पटेल	131

13.	अष्टांग योग में ध्यान वैशिष्टय	देव प्रकाश गुजेला	139
14.	उपनिषदों में योग	डॉ. रीटा एच. पारेख	150
15.	योग और स्वास्थ्य लाभ	डॉ. शोभना आर. चांपानेरी	160
16.	चरित्र निर्माण में अष्टाङ्ग योग की भूमिका	स्वर्णलता शर्मा	169
17.	वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद	डॉ. गौरी चावला	179
18.	भारतीय योग परंपरा का संरक्षण	डॉ. अरुण रा. पवार	196
19.	योग और स्वास्थ्य लाभ	डॉ. चन्द्र भूषण	210
20.	"योग का मानव जीवन पर प्रभाव"	डॉ. शीतल ए अग्रवाल	228
21.	योग की दार्शनिर्शनिकता (The Philosophy of Yoga)	Vishal Goswami & Dr. C.V. Baldha	235
22.	योग दर्शन: परम्परा और भविष्य	श्रवण कुमार उपाध्याय	257
23.	योगनिरीक्षे ईश्वरप्रणिधानविमर्शः	रिया दत्तः	264
24.	वर्तमान युग में योग के लाभ तथा उसका महत्त्व	डॉ. मंजुलता	269
25.	समृद्धजीवनचर्यायां योगस्य भूमिका	जयन्त मण्डलः	277
26.	योग-संस्कृति का संस्कृत-आधार: वैश्विक समरसता एवं सांस्कृतिक संवाद	डॉ. वन्दना द्विवेदी	285
27.	श्रीमद्भागवत महापुराण में निहित ''योगतत्त्व''	गोपाल कृष्ण	301

महामुनि पतंजलि और योगसूत्र

दिनेश शाह, सहायक प्राध्यापक
संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बड़कोट, उत्तरकाशी

प्रस्तावना-

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।

अर्थात् जिस प्रकार रघुवंशम् के इस मंगलाचरण में शब्द और अर्थ के संबंध को पार्वती और शिव के साथ जोड़ा गया है, उसी प्रकार पतंजलि और योगसूत्र का संबंध भी एक-दूसरे के बिना अपूर्ण है। पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की और योगसूत्र ने पतंजलि को एक अमर स्थान दिया। इस प्रकार पतंजलि और योगसूत्र का संबंध भी उतना ही अविभाज्य और गहरा है जितना शब्द और अर्थ का या पार्वती और शिव का। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है-

शब्द और अर्थ का संबंध-

रघुवंशम् में शब्द और अर्थ को पार्वती और शिव की तरह एक-दूसरे के बिना अपूर्ण बताया गया है। शब्द के बिना अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती और अर्थ के बिना शब्द का कोई महत्त्व नहीं होता। दोनों का संबंध अभिन्न और अटूट है।

पतंजलि और योगसूत्र का संबंध-

पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की, जो योग के सिद्धांतों और विधियों का संकलन है। पतंजलि के बिना योगसूत्र की कल्पना नहीं की जा सकती और योगसूत्र के बिना पतंजलि का योगदान अपूर्ण है। पतंजलि का योगसूत्र योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) का विस्तार से वर्णन करता

है। इन सूत्रों में योग की गहनतम अवधारणाएँ और अभ्यास पद्धतियाँ संकलित हैं। पतंजलि और योगसूत्र का संबंध इस प्रकार है जैसे आत्मा और शरीर का।

योगसूत्र की विषय वस्तु-

जैसा विदित ही है कि योगसूत्र योग के विभिन्न बड़े-बड़े सिद्धान्तों और विषयों पर लिखा गया संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण है। जिसमें बिना संशय के योग के बड़े-बड़े दार्शनिक विचारों को बड़े ही सरल, प्रामाणिक और व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसके विषयों को चार अध्यायों के अन्तर्गत रखा गया है जिन्हें ’पाद की संज्ञा दी है-

1. **समाधि पाद**
2. **साधन पाद**
3. **विभूति पाद**
4. **कैवल्य पाद**

समाधि पाद में 51, साधन पाद में 55, विभूति पाद में 56 और कैवल्य पाद में 34 सूत्र हैं। कुल मिलाकर सम्पूर्ण योगसूत्र 196 सूत्रों में उपलब्ध होता है। विषय के अनुसार इन्हीं 196 सूत्रों में योग के विभिन्न विषय संक्षिप्त रूप में वर्णित किए गए हैं। चारों पादों की विषय वस्तु को संक्षिप्त रूप से कुछ इस प्रकार समझ सकते हैं-

समाधि पाद- इस अध्याय में योग की परिभाषा और इसके उद्देश्य का वर्णन किया गया है। **“योगः चित्तवृत्ति निरोधः”** योग का उद्देश्य मन की वृत्तियों का निरोध है।

चित्तवृत्तियाँ- प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति।

अभ्यास और वैराग्य- मन को नियंत्रित करने के दो प्रमुख साधन।

समाधि - एकाग्रता की उच्चतम अवस्था जिसमें ध्यान और चेतना का एकत्व होता है।

अर्थात् समाधि पाद के अन्तर्गत, समाधि से सम्बन्धित मुख्य विषयों को लिया गया है। जैसा कि नाम से ही समझा जा सकता है। समाधि से सम्बन्धित सभी दार्शनिक सिद्धान्तों और विषयों को इस अध्याय के अन्तर्गत बड़े ही व्यवस्थित क्रम में रखकर समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के लिए यौगिक पद्धतियों का वर्णन मिलता है।

इस अध्याय में सर्वप्रथम योग की परिभाषा बताई गयी है जो कि चित्त की वृत्तियों का सभी प्रकार से निरुद्ध होने की स्थिति का नाम है। यहां पर भाष्यों के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यह योग समाधि है। समाधि के सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात दो भेद हैं। दोनों ही प्रकार की समाधियों के आन्तर भेदों का विस्तृत स्वरूप है। समाधि की स्थिति को प्राप्त करने के साधनों के विषय में भी विस्तार से वर्णन मिलता है। इसके लिए सर्वप्रथम अभ्यास और वैराग्य के नाम से दो साधन बताए गए हैं। विद्वानों के अनुसार इस अध्याय के अन्तर्गत बताए अभ्यास सामान्य योगाभ्यासी के लिए नहीं अपितु उच्च कोटि के अधिकारी के लिए है। जिनका चित्त पहले से ही स्थिर हो चुका है, उन्हीं को ध्यान में रखकर यहाँ अभ्यासों की चर्चा की गयी है। कई सारे अभ्यास दिखने में जितने आसान प्रतीत होते हैं करने में उतने ही कठिन है।

ईश्वर प्रणिधान या ईश्वर भक्ति और ईश्वर के स्वरूप की चर्चा भी इसी अध्याय के अन्तर्गत की गयी है। ईश्वर वर्णन के कारण ही कभी-कभी सांख्य और योग में अन्तर किया जाता है। सांख्य जहां ईश्वर का वर्णन नहीं करता वहीं योग (पातंजल योग) ईश्वर का वर्णन करने के कारण कभी-कभी सेश्वर सांख्य के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार विभिन्न विषयों की विस्तार से चर्चा करने के साथ-साथ योग के दार्शनिक स्वरूप को बड़े ही सुन्दर ढंग से रखने का प्रयास समाधि पाद के अन्तर्गत किया गया है। चित्त से लेकर समाधि के भेद-प्रभेद एवं चित्त निरोध आदि के उपाय दिए गए हैं। विद्वानों के अनुसार इस अध्याय

के अन्तर्गत बताए अभ्यास सामान्य योगाभ्यासी के लिए नहीं अपितु उच्च कोटि के अधिकारी के लिए है। जिनका चित्त पहले से ही स्थिर हो चुका है, उन्हीं को ध्यान में रखकर यहाँ अभ्यासों की चर्चा की गयी है। कई सारे अभ्यास दिखने में जितने आसान प्रतीत होते हैं करने में उतने ही कठिन है।

साधन पाद- इस अध्याय में योग के अभ्यास और इसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया गया है।
क्लेश- पांच क्लेश- अज्ञान, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश।
कर्म और कर्मफल- कर्मों का फल और उनकी प्रकृति।
अष्टांग योग- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

इस पाद के अन्तर्गत योग को प्राप्त करने के लिए विभिन्न उपाय आदि बताये गए हैं। भाष्यकारों के अनुसार पहले अध्याय अर्थात् समाधि पाद के अन्तर्गत बताए गए अभ्यास उत्तम अधिकार प्राप्त योगियों के लिए उपयुक्त है। जबकि मध्यम और साधारण अधिकारी उन अभ्यासों को करने में सक्षम नहीं है। इसी को ध्यान में रखकर इस अध्याय के प्रारम्भ में यह स्पष्ट कर दिया है कि मध्यम अधिकारी के लिए क्रिया योग ही सर्वोत्तम साधन है। क्रिया योग के अन्तर्गत तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का समावेश किया है। इसी की विस्तृत चर्चा के साथ इस अध्याय की शुरुआत होती है। पंच क्लेशों की विस्तृत चर्चा भी इसी अध्याय के अन्तर्गत मिलती है। क्लेशों की पूर्ण निवृत्ति ही योग का साधन बनता है। बिना इनकी निवृत्ति के योग सम्भव नहीं। इसी अध्याय के अन्तर्गत अष्टांग योग भी वर्णित है, जिसे साधारण अधिकारी के लिए अति उत्तम साधन माना गया है। अष्टांग योग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का समावेश किया गया है। अष्टांग योग

सर्वाधिक प्रचलित साधना पद्धति है जिसको योग विषयक लगभग सभी अध्ययनों में देखा जाता है।

अष्टांग योग के विभिन्न अंगों की विवेचना के साथ-साथ यहां उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन भी मिलता है। जिसके कारण यहाँ प्राप्त होने वाले अष्टांग योग के वर्णन की तुलना किसी अन्य स्थल से नहीं की जा सकती है। इस अध्याय के अन्तर्गत विभिन्न दार्शनिक विषयों का भी वर्णन किया गया है। जिसमें दृष्टा और 'दृश्य' प्रमुख हैं। दृष्टा यहां पुरुष को एवं दृश्य प्रकृति को कहा गया है। इन दोनों में विवेक ज्ञान ही योग की प्राप्ति कराता है। इन दोनों की मिली हुई अवस्था के कारण ही अविद्या की स्थिति बनी रहती है। इसके अतिरिक्त चतुर्युहयाद की भी स्पष्ट विवेचना इसी अध्याय के अन्तर्गत आती है। हेय- दुःख का वर्णन, हेय-हेतु- दुःख के कारण का वर्णन, हान- मोक्ष का स्वरूप और हानोपाय मोक्ष प्राप्ति का उपाय सम्मिलित है। इस प्रकार यह अध्याय स्वयं में पूर्ण रूप से योग के विभिन्न दार्शनिक पहलुओं पर विस्तृत विचार प्रस्तुत करता है। कर्मफल का सिद्धान्त भी इसी अध्याय के अन्तर्गत आता है। इन सभी विषयों का ठीक प्रकार से समावेश होने के कारण इस अध्याय का नाम साधन पाद यथोचित्त रखा गया है।

विभूति पाद - इस अध्याय में योग अभ्यासों के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली सिद्धियों और शक्तियों का वर्णन है।

संयम के तीन अंग- धारणा, ध्यान, समाधि।

विभूतियाँ- विभिन्न योगिक शक्तियाँ- जैसे मन की अद्भुत क्षमताएँ, भविष्यवाणी आदि।

गहन ध्यान और समाधि की अवस्थाए- ध्यान और समाधि।

विभूति पाद- धारणा ध्यान और समाधि के वर्णन से शुरु होने वाले इस अध्याय के अन्तर्गत बड़े ही रहस्यास्पद एवं रोचक विषयों का समावेश देखने को मिलता है। यहां दार्शनिक विषयों का उल्लेख पहले के

अध्यायों की अपेक्षा बहुत कम देखने को मिलता है। फिर भी दार्शनिक दृष्टि से इस अध्याय का भी महत्त्व कम नहीं है। दार्शनिक विषयों में धर्म, धर्मी आदि का स्वरूप, चित्त के परिणाम आदि की विवेचना मिलती है। इसके साथ-साथ धारणा, ध्यान और समाधि को यहां सम्मिलित रूप से 'संयम' के रूप में बताया गया है। संयम योग सूत्र की पारिभाषिक शब्दावली का प्रमुख अंग है। सामान्यतया संयम का अर्थ नियंत्रण से होता है परन्तु यहां प्रयोग की धारणा, ध्यान और समाधि के सम्मिश्रण को बताया गया है।

इन सभी विषयों के साथ-साथ इस अध्याय का प्रमुख विषय संयम जनित विभूतियों का वर्णन है। जिस कारण इस अध्याय का नाम विभूति पाद रखा गया है। विभूति का अर्थ यहां पर सिद्धियों से ही है। जो योग की अन्तरंग अवस्था में जाकर संयम का परिणाम वाली है। उदाहरण के रूप में चन्द्रमा में संयम करने से तारों का ज्ञान, ध्रुव तारे में संयम करने से तारों की गति का ज्ञान, सूर्य में संयम करने से भुवनों का ज्ञान, कण्ठ-कूप में संयम करने से भूख-प्यास की निवृत्ति आदि विभिन्न सिद्धियां और विभूतियाँ संयम के परिणाम से प्रकट होने वाली है। इस प्रकार इन सब विषयों के समावेश के कारण यह अध्याय अपने आप में बड़े ही रोचक ढंग से योग दर्शन की प्रस्तुति करता है। इस आशय से विभूति पाद नामक यह अध्याय अपने नाम के अनुसार अपने विषयों को भली-भांति प्रस्तुत करता है।

कैवल्य पाद- इस अंतिम अध्याय में मुक्ति और आत्म-साक्षात्कार की अवस्था का वर्णन किया गया है।

कैवल्य- आत्मा की स्वतंत्रता और मुक्ति की अवस्था।

धर्ममेध समाधि- सबसे उच्च समाधि की अवस्था।

ज्ञान और विवेक- आत्मज्ञान और विवेक की प्राप्ति।

कैवल्य पाद जैसा कि इसके नाम से ही प्रतीत हो रहा है कि यह अध्याय योग के चरम लक्ष्य 'कैवल्य' की स्थिति को बताने वाला है। इस अध्याय के अन्तर्गत भी योग के दार्शनिक स्वरूप पर विस्तृत चर्चा देखने को मिलती है। इस अध्याय की शुरुआत पांच प्रकार से प्राप्त होने वाली सिद्धियों के वर्णन से होती है जिसमें बताया गया है कि सिद्धियां जन्म से, औषधि से, मन्त्र से, तप से और समाधि के द्वारा मिलती है। जिसमें बाद में समाधि जन्य सिद्धि को शुद्ध माना है। जिसका कारण बताया गया है कि समाधि में वासना जन्य संस्कार नहीं रहते इस कारण समाधि से प्राप्त सिद्धि भी पवित्र संस्कार वाली होती है। इस अध्याय के अन्तर्गत निर्माण चित्त, चतुर्विध कर्म, वासना आदि का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त जीवनमुक्त की मनोवृत्ति पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। अन्त में कैवल्य का स्वरूप बताकर इस अध्याय की समाप्ति के साथ योगसूत्र की भी पूर्णता हो जाती है। पहले के अध्यायों की अपेक्षा यह अध्याय अधिक छोटा है। परन्तु इसके बिना योग सूत्र की पूर्णता भी नहीं हो सकती है। जिस प्रकार पुरुषार्थ चतुष्ट्य में प्रथम तीन पुरुषार्थों धर्म,,अर्थ व काम का मुख्य उद्देश्य भी चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष(कैवल्य) की प्राप्ति है।

उसी प्रकार महामुनि पतंजलि ने योगसूत्र के चार अध्यायों के माध्यम से मानव मात्र के लिए जो जीवन जीने की कला प्रदत्त की है वह अद्वितीय है। जिससे कैवल्य की प्राप्ति संभव है। इसलिए सम्पूर्ण योगसूत्र का मूलसार मानव को इस जीवन के बंधनों से मुक्तकर कैवल्य (मुक्ति) की प्राप्ति करवाना है।

योगसूत्र में वर्णित योग के आठ अंगों (अष्टांगयोग) का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है-

यम- "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"।

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये यम हैं। महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में यम को नैतिक अनुशासन के रूप में वर्णित किया गया है। यम पाँच होते हैं और ये सभी जीवन में आचरण और नैतिकता का पालन करने के सिद्धांत हैं।

पतंजलि के अनुसार यम निम्नलिखित हैं-

अहिंसा- अहिंसा का अर्थ है हिंसा का अभाव। इसमें न केवल शारीरिक हिंसा का त्याग, बल्कि वाणी और विचार से भी किसी को चोट न पहुंचाना शामिल है। अहिंसा का पालन करने से मन में करुणा और प्रेम की भावना बढ़ती है।

सत्य- सत्य का अर्थ है सत्य बोलना और सत्य का पालन करना। इसमें झूठ बोलने से बचना और हर परिस्थिति में सत्य का साथ देना शामिल है। सत्य का पालन करने से विश्वास और पारदर्शिता बढ़ती है।

अस्तेय- अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। इसमें न केवल भौतिक वस्तुओं की चोरी से बचना, बल्कि किसी भी प्रकार की मानसिक, सामाजिक या नैतिक चोरी से भी बचना शामिल है। अस्तेय का पालन करने से संतोष और ईमानदारी की भावना बढ़ती है।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्य का अर्थ है इंद्रियों का संयम। इसमें यौन इच्छाओं का संयम और मानसिक और शारीरिक ऊर्जा का संरक्षण शामिल है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से आत्म-नियंत्रण और ऊर्जा का सही उपयोग होता है।

अपरिग्रह - अपरिग्रह का अर्थ है अनावश्यक संग्रह न करना। इसमें आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना और भौतिक सुख-साधनों के प्रति आसक्ति न रखना शामिल है। अपरिग्रह का पालन करने से मन की शांति और संतोष बढ़ता है।

इन पाँच यमों का पालन करने से साधक अपने आचरण में शुद्धता, आत्म-नियंत्रण और नैतिकता को स्थापित कर सकते हैं जिससे योग मार्ग में उन्नति प्राप्त होती है।

नियम- "शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः"।

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये नियम हैं। महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में नियम व्यक्तिगत अनुशासन के रूप में वर्णित किए गए हैं। नियम पाँच होते हैं और ये सभी आंतरिक शुद्धिकरण और आत्म-अनुशासन के सिद्धांत हैं।

पतंजलि के अनुसार नियम निम्नलिखित हैं-

शौच- शारीरिक और मानसिक शुद्धता का पालन। शौच के अंतर्गत शरीर और मन को स्वच्छ रखने के नियम आते हैं।

संतोष- संतोष का अर्थ है संतुष्ट रहना। जो भी परिस्थितियाँ और परिणाम मिलें उनमें संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है।

तप- तप का अर्थ है आत्म-अनुशासन और धैर्य। इसमें शरीर और मन को कठोर साधना और अभ्यास के माध्यम से मजबूत बनाना शामिल है।

स्वाध्याय- स्वाध्याय का अर्थ है आत्म-अध्ययन और धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन। इसमें अपने आंतरिक विचारों और कार्यों की समीक्षा और अध्ययन करना भी शामिल है।

ईश्वर प्रणिधान- ईश्वर में पूर्ण विश्वास और समर्पण। इसमें अपनी सभी क्रियाओं और विचारों को ईश्वर के प्रति समर्पित करना शामिल है।

इन पाँच नियमों का पालन करके योग साधक अपने जीवन में संतुलन और शांति प्राप्त करते हैं और आत्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर होते हैं।

आसन-"स्थिरसुखमासनम्"।

अर्थात् आसन वह स्थिति है जो स्थिर और सुखद हो। यह सूत्र बताता है कि योग में आसन को सही ढंग से करने के लिए वह स्थिति होनी चाहिए जो शरीर को स्थिर और मन को सुखद अनुभव दे। यही सही आसन का लक्षण है।

प्राणायाम- "तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः"।

अर्थात् आसन में स्थिरता प्राप्त करने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना (नियंत्रित करना) प्राणायाम कहलाता है।

प्राणायाम साधना का महत्वपूर्ण अंग है, जिसके अभ्यास से चित्त की शुद्धि और ध्यान में प्रगाढ़ता आती है। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ है 'प्राण आयाम' या 'श्वास का विस्तार'। इसमें श्वास को विभिन्न प्रकार से नियंत्रित किया जाता है, जिससे शरीर और मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्राणायाम के चार मुख्य प्रकार होते हैं। पूरक (श्वास लेना), रेचक (श्वास छोड़ना), कुम्भक (श्वास रोकना) और शून्यक (श्वास को खाली करना)। प्राणायाम का उद्देश्य श्वास के माध्यम से प्राण (जीवन ऊर्जा) को संतुलित और नियंत्रित करना है।

प्रत्याहार- "स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहारः"।

अर्थात् इन्द्रियों के अपने-अपने विषयों से हटाकर चित्त के स्वरूप में स्थित होने को प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार का शाब्दिक अर्थ है 'पीछे हटना' या 'वापस लेना'। इसमें इन्द्रियों को उनके बाहरी विषयों से हटाकर मन की ओर मोड़ा जाता है। इसका उद्देश्य इन्द्रियों को नियंत्रित करना और उन्हें मन के आदेश के अनुसार संचालित करना है।

प्रत्याहार योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) में पाँचवां अंग है और यह ध्यान और समाधि की उच्च अवस्थाओं के लिए एक आवश्यक तैयारी

है। प्रत्याहार के अभ्यास से साधक बाहरी विक्षेपों से मुक्त हो जाता है और ध्यान की ओर उन्मुख हो पाता है।

इस प्रकार प्रत्याहार के माध्यम से इन्द्रियों पर नियंत्रण पाया जाता है जिससे साधक का ध्यान एकाग्र होता है और आत्मा की ओर उसकी यात्रा प्रगाढ़ होती है।

धारणा- "देशबन्धः चित्तस्य धारणा"।

अर्थात् चित्त को किसी एक स्थान पर बांधने (स्थिर करने) को धारणा कहते हैं। धारणा का शाब्दिक अर्थ है 'धारण करना' या 'एकाग्रता'। इसमें साधक अपने मन को किसी एक स्थान, वस्तु या विचार पर केंद्रित करता है। यह ध्यान की प्रारंभिक अवस्था है जहां मन को बार-बार भटकने से रोककर एक बिंदु पर स्थिर किया जाता है।

धारणा के अभ्यास से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है और मन को स्थिरता प्राप्त होती है। यह ध्यान (ध्यान की गहन अवस्था) और समाधि (अंतिम अवस्था) की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। धारणा का अभ्यास योगी को बाहरी विक्षेपों से मुक्त कर ध्यान की ओर अग्रसर करता है। पतंजलि के योग सूत्र में धारणा को चित्त की एक विशेष स्थान पर स्थिर करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया गया है। योग सूत्र के तृतीय अध्याय (विभूतिपाद) के प्रथम श्लोक में धारणा का उल्लेख किया गया हैः

ध्यान- योग सूत्रों में ध्यान को इस प्रकार बताया गया है-

धारणासु च योग्यता धारणा- धारणाओं में चित्त की एकाग्रता धारणा है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्- वहाँ (धारणा में) जब चित्त का प्रवाह एक ही विषय पर स्थिर रहता है उसे ही ध्यान कहते हैं।

अर्थात् ध्यान वह अवस्था है जिसमें मन एक ही बिंदु पर स्थिर रहता है और कोई अन्य विचार या विक्षेप नहीं होता।

समाधि- पतंजलि के योग सूत्रों के अनुसार समाधि एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन की चित्तवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं और आत्मा का साक्षात्कार होता है। समाधि योग का अंतिम चरण है जहाँ ध्यान की पराकाष्ठा पर पहुँच कर व्यक्ति आत्मानुभूति करता है।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"। "योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है"।

अर्थात् जब चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है तब जो स्थिति आती है उसे समाधि कहते हैं। समाधि के विभिन्न प्रकारों का वर्णन भी पतंजलि के योग सूत्र में है जो इस प्रकार है-

संप्रज्ञात समाधि- "वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमात् संप्रज्ञातः"।

अर्थात् वितर्क (विश्लेषण), विचार (विचारशीलता), आनंद और अस्मिता (अहंकार) के आधार पर संप्रज्ञात समाधि होती है।

असंप्रज्ञात समाधि - "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः"।

अर्थात् जब अभ्यास और वैराग्य के परिणामस्वरूप चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है और केवल संस्कार शेष रह जाते हैं तब असंप्रज्ञात समाधि होती है।

इन अष्टांग योगों को अपनाकर मनुष्य अपने तीनों प्रकार के दुःखों (आदिभौतिक, आदिदैविक और आध्यात्मिक)से मुक्ति पा सकता है।

महामुनि पतंजलि के योगसूत्र का ऐतिहासिक महत्त्व-

पतंजलि के योग सूत्र का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत गहरा और व्यापक है। यह ग्रंथ योग के सिद्धांतों और अभ्यासों का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। पतंजलि ने लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व में योग सूत्र की रचना की थी। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्त्व निम्नलिखित बिंदुओं में वर्णित किया जा सकता है-

योग दर्शन का आधार- पतंजलि का योगसूत्र योग दर्शन का सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह योग के विभिन्न अंगों का वर्णन करता

है- जिसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि शामिल हैं। यह ग्रंथ योग को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है।

आध्यात्मिक मार्गदर्शन- योग सूत्र ध्यान और समाधि के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार और आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को स्पष्ट करता है। यह ग्रंथ साधकों को मानसिक शांति और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के उपाय प्रदान करता है।

व्यावहारिक निर्देश- योग सूत्र केवल सिद्धांतों का ही वर्णन नहीं करता बल्कि यह व्यावहारिक निर्देश भी प्रदान करता है कि किस प्रकार योगाभ्यास करना चाहिए। इसमें मानसिक और शारीरिक स्वच्छता, आत्म-अनुशासन और ध्यान की तकनीकों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

योग के अंगों का वर्णन- पतंजलि ने अष्टांग योग की अवधारणा प्रस्तुत की जिसमें योग के आठ अंगों का वर्णन किया गया है। यह आठ अंग योग साधकों को एक संपूर्ण और समग्र योग अभ्यास की ओर मार्गदर्शन करते हैं।

संस्कृत साहित्य में योगदान- योग सूत्र संस्कृत साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यह ग्रंथ योग पर साहित्यिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी समृद्ध है और इसमें संस्कृत भाषा की उच्चता और गहराई को दर्शाया गया है।

विभिन्न परंपराओं में स्वीकार्यता- पतंजलि के योग सूत्र को हिंदू, बौद्ध और जैन परंपराओं में भी मान्यता प्राप्त है। इसके सिद्धांत और अभ्यास सभी धार्मिक और आध्यात्मिक परंपराओं में स्वीकार्य हैं और इनसे प्रेरित हैं।

वैश्विक प्रभाव- आधुनिक युग में भी पतंजलि के योगसूत्र का वैश्विक प्रभाव है। योग को एक प्राचीन भारतीय विद्या के रूप में प्रस्तुत

करते हुए यह ग्रंथ पश्चिमी दुनिया में भी लोकप्रिय हुआ और योग के प्रति जागरूकता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शांत और संतुलित जीवन की शिक्षा- योग सूत्र मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश प्रदान करता है। यह व्यक्तिगत विकास, मानसिक शांति और संतुलित जीवन के सिद्धांतों को बढ़ावा देता है।

पतंजलि के योग सूत्र का ऐतिहासिक महत्त्व इस प्रकार व्यापक और गहरा है। यह ग्रंथ योग दर्शन, आध्यात्मिकता और मानसिक शांति के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है और योग के अनुयायियों के लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में स्थापित है।

निष्कर्ष - निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पतंजलि ने अपने समय में प्रचलित योग की विभिन्न पद्धतियों का संग्रह कर उनको सूत्रात्मक रूप में अपने ग्रन्थ में संग्रहित किया। सूत्र का यह लक्षण भी होता है कि वह कम से कम शब्दों में बिना कोई सन्देह उत्पन्न किए बहुत बड़े सिद्धान्त को भी अपने में समेट लेता है। जो हमें पतंजलि कृत योगसूत्रों का अध्ययन करने से पता चलता है। पतंजलि का “योगसूत्र“ एक प्राचीन और महत्त्वपूर्ण योग शास्त्र है जो योग के सिद्धांतों और प्रथाओं का संकलन है। योग के अभ्यास से मन की चंचलता और वृत्तियों (मानसिक तरंगों) को नियंत्रित किया जा सकता है जिससे आत्मा की वास्तविकता का अनुभव होता है। योग सूत्र में प्रस्तुत अष्टांगयोग (आठ अंग) मन, शरीर और आत्मा की शुद्धि और समेकन का मार्गदर्शन करते हैं। योग के नियमित अभ्यास से मन की चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है जिससे आत्मज्ञान और मुक्ति प्राप्त होती है। योग एक सम्पूर्ण जीवन शैली है जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। इस विषय पर एक बड़ा सुन्दर और लोकप्रिय श्लोक भी प्राप्त होता है-

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपारोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतंजलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

अर्थात् मैं करबद्ध होकर ऐसे पतंजलि मुनि को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योग के द्वारा चित्त शुद्धि, व्याकरण के द्वारा वचन शुद्धि और आयुर्वेद के द्वारा शरीर शुद्धि का उपाय बताया। इसप्रकार प्रचलित मान्यता में इन तीनों कार्यों का श्रेय पतंजलि को ही जाता है। यह मान्यता बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है जिसे भर्तृहरि, समुद्रगुप्त, भोजराज आदि ने अनेक बार दोहराया है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

- रघुवंशम्- महाकवि कालिदास।
- योगसूत्र- महामुनि पतंजलि।
- राजयोग- स्वामी विवेकानंद।
- श्रीमद्भगवद्गीता- कृष्णद्वैपायन वेदव्यास।

---०---

योग एक विज्ञान है

नयना. बी.गार्गी
श्री गोविंद गुरु विश्वविद्यालय, गोधरा

प्रास्ताविक-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् हम व्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेडब्रवीत् ।।

(गीता- ४.१)

भारतवर्ष मे योग का सिद्धान्त और व्यवहार की दृष्टियों से जो वैज्ञानिक अध्ययन किया गया वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'योगश्चितवृत्तिनिरोधः' कहकर जिस योग शब्द की परिभाषा प्रस्तुत की गई है उसका यह अर्थ है- कि योग एक विज्ञान है जो हमें चित्त की परिवर्तनशील अवस्था से निरुद्ध कर उसे वश मे करने की शिक्षा देता है। योग हमें यह सिखाता है कि किस प्रकार मन को नियमित करके जीवन के चरम लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति की जा सकती है। उपनिषदों में 'ब्रह्म वादिनो वदन्ति' एसे वाक्य के प्रयोग करके योग का महत्त्व को वर्णित किया गया है। योग एक विज्ञान है और विज्ञान के समान ही इसके तथ्यों के प्रयोग के द्वारा सत्यता निर्धारित की गई है। मानव का चरम लक्ष्य पुनर्जन्म नहीं अपितु ज्ञान और कैवल्य के द्वारा परमानन्द की अनुभूति है। परमानन्द की अनुभूति के साधनों में योगमार्ग एक अन्यतम साधन है। योग के शाब्दिक अर्थ 'मेल' में जो अन्तर्निहित भाव है वह है संतुलन और सामंजस्य का हेतुत्व। अतः योग का अर्थ संतुलन और सामंजस्य का विज्ञान भी है। योग की मान्यताओं के अनुसार विपरीत बल या शक्तियां विश्व के सभी पदार्थो तथा जीवित प्राणियों में सदा वर्तमान रहती है।

योग में जीवन के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षो पर ध्यान दिया जाता है। परन्तु व्यवहारिक पक्ष् की ओर विशेष बल दिया गया है।

प्रत्येक साधक को सत्यता का अनुभव योगाभ्यास करते समय स्वयं होता है। संसार में दु:ख का कारण यह है कि मनुष्य अपने साथी प्रकृति या माया से सम्बन्ध बनाये हुये है परन्तु दुसरे साथी परमात्मा की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। यदि मानव का सम्बन्ध(योग) परमात्मा से भी हो जाये तो उसक कल्याण हो सकता है। इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये योग का आश्रय लिया जाता है। शरीर ही सभी प्रकार के कार्यों के आचरण का मुख्य साधन है। योग में शरीर की साधना के स्वतः मोक्ष् की साधना भी अनवरत रूप से चलति रहती है। योग की साधना के बाद जो प्राप्त होता है वही विज्ञान है। आत्मज्ञान की प्राप्ति, चित्त की वृतियां एवं मन की क्रिया पर विजय पा लेना ही योग है। यही विज्ञान है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है- 'हे अर्जुन! सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को हृद देश में स्थिर करके अपने प्राणों को ब्रह्मरंध्र में स्थापित करके योग धारणा में स्थित हो। और ये भी कहा है कि योगानुष्ठान में चित्त जहां रम जाता है वहां निरन्तर स्वयं को योग में लगाते हुये मन को निग्रह किये हुये योगी परमात्मा में स्थित रहने वाली तथा परम निर्वाण को देने वाली शान्ति को प्राप्त करता है।

योगदर्शन में योग विज्ञान-

जिस प्रकार आधुनिक यन्त्रों की सहायता से वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में कार्य करते हैं उसी प्रकार आत्मविज्ञानी को अपने शरीर रूपी प्रयोगशाला में विविध चक्रों, ग्रन्थियों, विधि-विधानों एवं कर्मों के आधार पर दिव्य शक्तियों का उपार्जन करने के लिए साधना करनी पडती है। यह आत्मसाधना भौतिक विज्ञान की साधना से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। अतः आत्म साधना को एक वैज्ञानिक अन्वेषण कर्ता ही समझना चाहिये। पातंजल योग सूत्र में महर्षि पतंजलि ने कहा है-

'कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्।'

योगी के कर्म न पापरुप होते हैं न पुण्यरुप क्योकिं वह कर्तव्य रुप कर्म ईश्वर को समर्पित करके कर्मफ़ल को त्याग करके निष्काम भाव से कर्म करता है। पापकर्म तो वह कभी करता ही नहीं, क्योकिं वें उसके लिये सर्वदा त्याज्य हैं।

योगदर्शन में 'योगश्चितवृत्ति निरोध' कहकर योग की परिभाषा प्रस्तुत की गई है। इसका आशय है कि योग वह विज्ञान है जो हमें चित्त की परिवर्तनशील अवस्था से निरुद्ध कर उसे वश में करने की शिक्षा देता है। चित्त वह है जिससे हमारे मन का निर्माण होता है और जो सतत बाह्य तथा आन्तरिक प्रभावों से मथित होकर संकल्प-विकल्प की तरंगे उछालता रहता है। योग हमें यह सिखाता है कि किस प्रकार मन का नियमन किया? जिससे वह सन्तुलन खोकर तरंगित न हो पाये योग वह विज्ञान है जो हमारे चित्त को इन परिवर्तनों में पड़ने से बचाना सिखाता है। जब साघक मन को पूर्ण योग युक्त अवस्था तक पहुंचने में सफल हो जाता है तो उस समय उसे बोध हो जाता है कि वह क्या है? सभी परिवर्तनों पर उसका प्रभाव हो जाता है। निरुद्ध मन होने पर साधक को साक्षात्कार होता है। मैं परिवर्तन नहीं हूँ मैं परिवर्तनों को रोक सकता हूँ। अतः मैं स्वयं परिवर्तन कदापि नहीं हूँ। योग विज्ञान की यही आधारशिला है।

आधुनिक युग में योग विज्ञान की महत्ता-

आधुनिक जगत् में विज्ञान के कई प्रकार हैं। कुछ द्रव्य या पदार्थ से सम्बन्धित हैं दूसरे मुख्यत: प्राणियों से सम्बन्ध है- जीव विज्ञान आदि। लेकिन कुछ विज्ञान मानवीय समस्याओं पर आधारित भी है, जैसे- राजनीत विज्ञान तथा मनोविज्ञान। प्रत्येक विज्ञान का एक ज्ञात विश्व होता है। योग विज्ञान का यह विषय व्यक्तियों, पुरुष तथा स्त्री के अतिरिक्त कोई भी नहीं है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि योग व्यक्ति को स्वस्थ, सुखी और आनन्दमय बनाने का विज्ञान है।

अन्य विज्ञानों की तरह योग विज्ञान भी कुछ निश्चित आधारभूत सिद्धांतो पर आधारित है। इसके अन्वेषण, उपलब्धिया एवं प्रयोग तार्किक तथा बौद्धिक विचार धारणाओं पर आधारित है। इस विज्ञान के प्रवर्तकों तथा आविष्कारकों महर्षि पतंजति आदि ने यह पहले ही पता लगा लिया था कि मानव को दो विशिष्ट शक्तियाँ- शरीर और मन की आवश्यकता हैं और जब तक इन पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता तब तक इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। उन्होंने इन दोनों शक्तियों को समृद्ध करने की पद्धतियां विकसित कीं। ये दोनों शक्तियां अन्योन्याश्रित है। अतः दोनों में समन्वय एवं सामंजस्य रखने के लिए एक विशिष्ट पद्धति का विकास किया गया। योग में एक शारीरिक कुशलता की पद्धति है, दुसरी मानसिक कुशलता की और तीसरी इन दोनों में सामंजस्य रखने वाली। योग विज्ञान में विलक्षण यह है कि यह व्यक्ति की समस्याओं को समग्र रुप से स्वयं में समाहित करता है। योग भारत वर्ष का एक जाज्वल्यमान विज्ञान है।

योग में जीवन के सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही पक्षों की महत्ता विद्यमान है; किन्तु क्रियात्मक पक्ष पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमारे ऋषियों ने योग के द्वारा शरीर मन और प्राण की शुद्धि तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिये आठ प्रकार के साधन बताये गये हैं जिसे अष्टांग योग कहते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

योगासनो का हमारे जीवन में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा तन और मन को स्वच्छ, स्वस्थ व सुन्दर बनाया जा सकता है।

उपनिषदों का योग विज्ञान-

उपनिषदों की योग विधा का स्वरूप सूक्ष्म, गहनतम एवं विराट है। उपनिषदों की योगविद्या अर्थात् आत्मविद्या। आत्मयोग से शुद्ध होती हैं तथा धीरे-धीरे कर्मयोग, उपासनायोग, समर्पणयोग, भक्तियोग, प्राणयोग, राजयोग, हठयोग, स्वाध्याययोग, पञ्चाग्नियोग, पञ्चकोशविद्या, सत्कारयोग, ज्ञानयोग के रूप में वर्णित मिलती है।

मानव जीवन की गरिमा, मानव जीवन की सर्वोच्च लक्ष्य आत्मबोध की प्राप्ति, आत्म-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान का बोध, जीवन में प्रसन्नता, ज्ञान, आरोग्य एवं आनन्द की प्राप्ति करना ही उपनिषदों की शिक्षाओ का मूल उद्देश्य एवं मुख्य वर्ण विषय रहा है। कठोपनिषद् में योग की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि- इन्द्रिय, मन और बुद्धि की स्थिर धारणा का नाम ही योग है। ऐसा योग के अनुभवी साधक मानते है। क्योंकि उस समय साधक विषय दर्शनरूप सब प्रकार के प्रमाद से सर्वथा रहित हो जाता है। उपनिषद् रूपी अमृत का पान मानव जीवन के सभी कष्टों को हर लेता है। उपनिषदों की वाणी, उपनिषदों की शिक्षाए दु:खी मानवजीवन के लिये एक औषधि एक चिकित्सा प्रक्रिया बन सकती हैं जो मनुष्य को सुन्दर, स्वस्थ जीवन की नई दिशा प्रदान कर मानव जीवन के भीतर शांति, सुख, उल्लास एवं आनन्द से भर देगी।

योगविद्या का श्रवण रुप 'ईश्वर-प्रणिधान' की चर्चा करते हुए इस उपनिषद् के अन्त में कहा गया कि 'योग विद्या का उपदेश सुनने के अनन्तर नचिकेता यमराज द्वारा उपदिष्ट इस विधा को और सम्पूर्ण योग की विधि को प्राप्त करके मृत्यु के रहित और सब प्रकार के विकारों से शून्य होकर ब्रह्म को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म विद्या को इसी प्रकार जानने वाला है वह भी इस प्रकार हो जाता हैं । गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से 'जो पुरुष अन्तकाल में भी मुझको ही समरण करता हुआ शरीर का परित्याग कर देता है वह मेरे स्वरूप को ले प्राप्त होता है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हैं।

निष्कर्ष-

मनुष्य का चित्त समयांतर विचलित हो जाता है। लेकिन मनुष्य को अपने लक्ष्य सिद्धि के लिए जीवन में योग करना आवश्यक हो जाता है। जैसे की शारीरिक योग हो मानसिक योग हो या क्रियाशील वैसे तो

योग के कई प्रकार है लेकिन हठयोग, राजयोग और कर्मयोग मानवजीवन के अत्यंत निकटतम है। कर्मयोग क्रियाशीलता का और कार्य का विज्ञान है। राजयोग ध्यान तथा धारणा की शक्ति का विज्ञान है। योग के अनुसार मन शरीर को नियंन्त्रित करता है शरीर मन का नियंत्रण करने का एक उपकरण बन जाता है। यह भी माना जाता है कि जैसा आप चिन्तन करते है वैसा ही बनते है और जैसा सोचते हैं वैसा ही पाते है इसलिए आपका विचार केवल आपके कर्मों को स्वरुप प्रदान करने के लिए ही मात्र नहीं होना चाहिए बल्कि पृथ्वी के सभी मानव जाति के उद्धार के लिए कार्य करें एवं अपने कार्य एवं कर्म से अन्य मानव शारीरिक मानसिक एवं अन्य किसी भी तरह से कष्ट न दे ऐसा होना चाहिए। मनुष्य अपने कर्मयोग से और ऋषियों की वाणी स्वरुप ज्ञान, कर्म एवं उपासना योग से अपना जीवन श्रेष्ठ बनाता ही है साथ में अन्य के लिए भी प्रेरणादायी बन सकता है। ऐसे ही इशोपनिषद् में भी कहा है-

कुर्वन्नवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्मि न कर्म लिप्यते नरे॥
(ईश. मन्त्र-२)

उपनिषदो में विशेष रूप मे ज्ञानयोग में वर्णन मिलता है। लेकिन ज्ञान प्राप्ति के बाद यदि मानव कर्म या उपासना का स्वरुप नहीं अपनाता है तब वह ज्ञान का कोइ अर्थ रहता नहीं है। इसलिये निष्काम कर्म की उपासना करनी चाहिये यह उपासना भी एक प्रकार का योग ही है। मानव जीवन की दार्शनिक मीमांसा में तथा रहस्य विद्या के उद्घाटन में उपनिषद् काल के मनीषिओं ने जो साधना की है वह भारतीय चिंतन और संस्कृति की ही नहीं अपितु, विश्व की अमूल्य निधि है। फ्रांस की विदुषी कवयित्री मदाम रा ने लिखा है:- “मैने देश-विदेश का भ्रमण किया पर भारत की उपनिषद् विद्या की गहराई में बैठकर जो मोती मैंने पाया, वह अन्यत्र दुर्लभ था। समस्त प्राणियों का एकात्मबोध मानव का चरम दर्शन है। यह

आत्मविज्ञान उपनिषद् में निहित है और मानव को आत्मविज्ञान तक पहुचना अनिवार्य है।

योग विज्ञान के माध्यम से ही पहुंच सकते है। यही परमतत्त्व उपनिषदों की अमूल्य निधि है जिससे 'जीवन्मुक्ति' मिलती है। उपनिषद् चिंतको ने जो दर्शन किया वो आत्मविज्ञान है। मनुष्य चरम लक्ष्य भी आत्मज्ञान का है। यदि मनुष्य इसी शिक्षा के तहत आत्मज्ञान प्राप्त करेगा तभी सही अर्थ मे कर्मयोग करेगा योग के अलग-अलग पहलु में से मनुष्य का अपने ही अस्तित्व की खोज करने के कर्मयोग, ज्ञानयोग, उपासना योग आदि आवश्यक है। योग विज्ञान के एक पहलु के रूप मे यदि बात करें तो नैतिक आचरण, सत्य, संनिष्ठ प्रेम, मनुष्य बौद्धिक विकास यही मूल्यों के रूप प्राप्त होगा तभी अर्वाचीन विज्ञान में मनुष्य को प्रेरित करेगा और यही योग विज्ञान से मनुष्य अपने अस्तित्व की खोज करेगा। ईश्वरीय नियमानुसार मानव-शरीर इसलिए दिया गया है कि वह आत्मोन्नति करे और परमात्मा तक पहुचे। यथा-

आत्मानं रथिनं विद्धि रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विसयास्तेषु गोचरान।
आत्मेन्द्रिन्य मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणाम्।।

(कठ.१.३.३.४)

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

१.उपनिषद् योग तत्त्व दर्शन- डॉ. विनय कुमार शर्मा विरचित, पृ .सं. नं. ३३ भारतीय विद्या प्रकाशन दिल्ली, संस्करण- २०२२

२. 'कर्मयोग और भक्तियोग' स्वामी विवेकानन्द, न्यूयार्क १९५५ पृ.सं. १३

३.तैत्तरीय उपनिषद्, २/६/३ संपादक- डॉ. आनन्दकुमार श्रीवास्तव भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी- प्रथम संस्करण-२०२३

४.कठोपनिषद्, डॉ. लग्नेश जोशी परम्परा प्रकाशन अहमदाबाद प्रथम संस्करण- २०१२ १/२/२०

५.पातंजल योगसूत्र, ४/७

६.उपनिषद् सार संग्रह, मनोज बिश्नोई विरचित ईशो. मन्त्र.-२ पृ, १६,३३ किताब महल पब्लिसर्श नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-२०१९

७.संस्कृत वाडमय का परिदर्शन, आचार्य मुनीश्वर झा, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-२००४

---०---

अष्टांग योग में नियम वैशिष्ट्य

प्रा. डॉ. सोलंकी मंजुलाबेन नाथाभाई
आर्ट्स कॉलेज, मोडासा

योग शब्द युज् धातु से बना है जिसका अर्थ है मिलना, जुड़ना। यह माना जाता है कि योग वह क्रियाकलाप है जिससे जीवात्मा परमात्मा से मिलता है। अतः योगी वह व्यक्ति है जिसका आत्मा परमात्मा से मिल चुका है या मिलने का प्रयास कर रहा है। साधारण व्यक्ति तो इन बारीकियों को जानता व समझता नहीं परंतु जो लोग सिद्धांततः योग को जीवात्मा और परमात्मा के मिलने का साधन मानते हैं, वह जीव और ईश्वर के विषय में विभिन्न मत रखते हैं। किसी के मत में वे दोनों विजातीय हैं। एक दूसरे से भिन्न है और रहेंगे। इनके मिलने का अर्थ यही है कि जीव अपने दोषों के ऊपर उठकर ईश्वर के अनंत तेज, अनंत सौंदर्य, अनंत माधुर्य का नित्य अनंत आनंद लेता रहे। दूसरों के अनुसार जीव और ईश्वर सजातीय है, जीव ईश्वर का अंश है। वस्तुतः ईश्वर टुकड़ों में बांटने वाला कोई पदार्थ नहीं है। अज्ञानवशात् यह अंश-अंशी का भाव उत्पन्न हो गया है। योग के द्वारा यह अविद्या दूर हो जाती है और जीव को ईश्वर से अपने अभेद का अनुभव हो जाता है और वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है।

योग का द्वितीय अंग नियम-

योग के आठ अंग है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। यम और नियम का अभ्यास वह दृढ़ पीठिका है जिसके ऊपर योग का दुर्ग खड़ा किया जा सकता है। प्राचीन आचार्यों की सम्मति में इन दोनों अंगों का स्थान अनिवार्य है। योग का द्वितीय अंग नियम है। नियम भी पांच है- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान।

शौच

शौच का अर्थ पवित्रता हैं। यह पवित्रता बाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार की अभीष्ट है। योग दर्शन में शौच का क्षेत्र अति विस्तृत है।

बाह्य पवित्रता- व्यास जी ने इसके भी दो भेद किए हैं- (१) मिट्टी, जल आदि के द्वारा शरीर की शुद्धि (२) भक्ष्य पदार्थ का सेवन। योगी को इन दोनों ही प्रकार पवित्रता पर ध्यान रखना होगा। अभक्ष्य पदार्थ निम्न प्रकार के हो सकते हैं।

1. शराब, तंबाकू, चरस आदि मादक द्रव्य।
2. प्याज, लहसुन, मिर्च आदि तामसिक पदार्थ।
3. हिंसा से प्राप्त मांस आदि पदार्थ।
4. भक्ष्य पदार्थ में अभक्ष्य पदार्थ मिला देना।

अनेक साधु महात्मा ऐसे देखे जाते हैं कि सामान्य जनता में भी अपने आप को ऊंचा महात्मा सिद्ध करने के लिए आवश्यक पदार्थ का सेवन करने लगते हैं। लेखक ने स्वयं एक ऐसे साधु को देखा है जो अपनी थाली में कुत्तों को भी अपने साथ खिला लिया करते थे। एक अन्य साधु ने निमंत्रण में प्राप्त खीर में पहले तो लघु शंका कर दी तथा फिर उसे ही खाने लगा। यह साधु अघोरी कहलाता था अर्थात् भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं करता था। लोगों में इसका भेद खुलने पर उसे अपमान का पात्र बनना पड़ा।१

योगी के लिए मांस-मदिरादि तथा अन्य तामसिक पदार्थ का सेवन भी वर्जित है क्योंकि इनसे वृत्ति भी वैसी ही बनेगी। जैसा भी भोजन हम करते हैं उसका प्रभाव शरीर मन तथा बुद्धि पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

बाह्य शौच का फल-

स्वांग जुगुप्सा- बाह्य शौच का फल यह है कि योगी अपने शरीर को नित्य प्रति गंदगी से युक्त देखता हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव- मुख, नाक, त्वचा, नेत्र, पायु, उपस्थ आदि से नित्य प्रति गंदगी निकल रही है।

शरीर के अंदर भी रक्त, मांस के रूप में गंदगी ही भरी हैं। यदि शरीर की त्वचा को अलग कर दिया जाए तो अंदर से जो कुछ निकलेगा उस व्यक्ति को एकदम घृणा हो जाएगी। कहा भी है-

यदिनामास्य कायस्यान्तस्थो बहिर्भवेत्।
लगुडमादाय लोकोऽयं श्वाशकुनीं निवारयेत्।।

अर्थात् यदि शरीर के अंदर की गंदगी बाहर आ जाए तो वह इतनी वीभत्स होगी कि उस पर चारों ओर से पशु-पक्षी टूट पड़ेंगे। व्यास जी ने एक श्लोक द्वारा शरीर की अशुद्धता को इस प्रकार प्रकट किया है कि शरीर की उत्पत्ति माता के उदर से होती है जो गंदगी पूर्ण हैं। खाए-पिए पदार्थ से जो रस, रक्त मांस, मेद, मज्जा आदि सात धातुएं बनती है शरीर इन पर ही आधारित रहता है। ये भी गंदगी युक्त हैं। पसीना, मल, मूत्र आदि के द्वारा भी शरीर के विभिन्न अंगों से पर्याप्त गंदगी निकलती है। मृत्यु के उपरांत सभी का शरीर अपवित्र हो जाता है। एक अतिपवित्र याज्ञिक पंडित के मृत शरीर को भी कोई छूना नहीं चाहता इसप्रकार बुद्धिमान व्यक्ति इस शरीर को अपवित्र ही समझते हैं।२

(२) परैरसंसर्ग- दूसरों के साथ संसर्ग न होना यह बाह्य शौच का दूसरा फल है। योगाभिलाषी जिस प्रकार अपने शरीर को गंदगी से परिपूर्ण देखकर उससे विरत होता है उसी प्रकार अन्य व्यक्तियों के शरीरों को भी देखता है। इससे अन्य शरीरों के प्रति उसका आकर्षण (राग) समाप्त हो जाएगा। किसी के शरीर को सुंदर लावण्यमय देखकर ही उसके प्रति आकर्षण एवं उसकी प्राप्ति की अभिलाषा उत्पन्न होती है। योग दृष्टि से सभी शरीरों को गंदगी से परिपूर्ण जानकर योगी उनसे उपरत हो जाता है।

आंतरिक शौच का फल-

पतंजलि ने आंतरिक शौच के पांच फल बतलाये है।३

(१)सत्वशुद्धि (२) सौमनस्य (३) एकाग्रता (४) इंद्रियजय (५)आत्म दर्शन की योग्यता।

सत्व का अर्थ बुद्धि है। आंतरिक शौच से बुद्धि निर्मल बनती हैं। सौमनस्य का अर्थ मन की प्रसन्नता हैं। भोज देव ने इसका अर्थ किया है कि ऐसा योगी किसी दुःख का अनुभव नहीं करता, अतः मन प्रसन्न रहता हैं। इस शौच का तृतीय फल चित्तकी एकाग्रता है। नाना वासनाएं तथा चित्त के मल ही उसे चंचल एवं दूषित करते हैं। उनके शांत होने पर चित्त एकाग्र होने लगता है। यही एकाग्रता समाधि के लिए अपेक्षित है इसके साथ ही ऐसे व्यक्ति का अपनी इंद्रियों पर अधिकार हो जाता है। वह इंद्रियों के वश में नहीं रहता अपितु इंद्रिय उसके वश में हो जाती है। आंतरिक शौच का अंतिम लाभ है कि योगी आत्म दर्शन की योग्यता प्राप्त कर लेता है। यही तो योग का अंतिम उद्देश्य है जिसके लिए तृतीय सूत्र में कहा गया है-

तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

इस प्रकार आंतरिक शौच के महान फल हैं। ये ऐसे फल है कि जो समाधि सिद्धि के लिए आवश्यक भी हैं। बिना इनके समाधि सिद्ध हो ही नहीं सकती। इस दृष्टि से शौच रूपी नियम अष्टांग योग का अनिवार्य एवं अपरिहार्य अंग है।

सन्तोष- नियम का दूसरा अंग संतोष हैं। संतोष का अर्थ पुरुषार्थहीन अथवा निष्क्रिय होकर बैठना नहीं है अपितु जितने भी साधन अपने पास है उनके आधार पर पदार्थ का उपयोग करना संतोष हैं। उन साधनों से अधिक सुख की इच्छा करना असंतोष हैं।

आज समाज में सर्वत्र यही असंतोष व्याप्त हैं। जिसके पास जितने भी साधन हैं वह उनसे भी अधिक सुखोपभोग करना चाहता हैं। फलत: वह अपनी इच्छा पूर्ति के लिए अनुचित साधन अपनाता हैं। बस यहीं से भ्रष्टाचार प्रारम्भ हो जाता है। इस असंतोष से सभी ग्रस्त है चाहे निर्धन हो या धनवान हो। धनवान भी प्राप्त साधनों की अपेक्षा और अधिक साधन

जुटाना चाहता हैं। यही कारण है कि बड़े- बड़े धनपति तथा उच्च पदासीन व्यक्ति भी भ्रष्टाचार में लिप्त पाए जाते हैं।

धन होने से ही कोई धनपति नहीं बन जाता। जो तृष्णा की जाल में फंसा है वह धनपति होने पर भी दरिद्र हैं। भर्तृहरि कहते हैं-

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान्को दरिद्रः।।४

अर्थात् मन में संतोष होने पर कौन धनवान है तथा कौन दरिद्र है यह भेद नहीं किया जा सकता।

तप- मुख्यतः तो चित्त का निग्रह कुप्रवृत्तियों का दमन तथा विषयो से परांगमुख होना तप हैं। परंतु इसके साथ कुछ शारीरिक तप भी आवश्यक है। तप का नाम लेने वाले हमारे देश में बहुत है और इस नाम से शरीर को बहुत कष्ट भी दिया जाता है। परंतु इसका बहुत सा अंश श्री कृष्ण के शब्दों में तामस है। लोग बर्फ में बैठने का अभ्यास करते हैं, नदियों के जल में घंटो खड़े रहते हैं, घंटो पंचांग्नि करते हैं, महीनों तक केवल जल पीकर उपवास करते हैं। इन सब बातों से भी कुछ ना कुछ लाभ होता होगा परंतु जहां मानस तप योगी के लिए सर्वथा करणीय है वहां इस प्रकार का शारीरिक तप प्रायः वर्जित है। योगाभ्यास में उनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं। इस प्रकार के आघातों से नाडियों की बहुत क्षति होती है परंतु सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास और नींद को सहन करने की शक्ति का संचय करना ही चाहिए। जिस-जिस अभ्यास में सफलता प्राप्त होती है शक्ति धीरे-धीरे अपने आप बढ़ जाती हैं। फिर भी अपनी ओर से प्रयास करना ही है।५

स्वाध्याय- अभ्यासी के लिए स्वाध्याय भी बहुत आवश्यक है। स्वाध्याय का अर्थ है वेद, दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराणग्रंथ, तथा महात्माओं की रचनाओं को पढ़ना और उन पर विचार करना। वस्तुतः

स्वाध्याय सत्संग का प्रकारांतर हैं। इससे शंकाओं के उच्छेदन में सहायता मिलती है।

ईश्वर प्रणिधान- इस शब्द का अर्थ भाष्यकार के अनुसार है-

तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।

उस परम गुरु को सब कर्मों को अर्पण कर देता है। परंतु इस संबंध में उतना ही कह देना आवश्यक नहीं है। पहली बात तो यह है कि ईश्वर की सत्ता स्वीकार की जाए और यह बात मानी जाए कि वह परम गुरु है तथा इस योग्य है कि सब कर्म उसको अर्पित किया जाए। जैसा कि बौद्ध मतावलम्बी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करते परंतु उनमें कई बहुत ख्यातनाम योगी हो गए हैं। ऐसी ही बातों को देखकर नियमों को वह अनिवार्यता नहीं दी गई है जो यमों को प्राप्त है।

ईश्वर- योग दर्शन में पतंजलि ने ईश्वर को पुरुष विशेष माना है, ऐसा पुरुष जो सब बातों में दूसरे सब पुरुषों से भिन्न है। वह अविद्या आदि क्लेशों से वशीभूत नहीं होता। इस कारण उस पर कर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जहां दूसरों के लिए आदर्श होने की बात है तो ऐसा आदर्श तो कैवल्य प्राप्त पुरुष भी उपस्थित करते हैं। इसीलिए ईश्वर को प्रसिद्ध ठहराते हुए कपिल ने कैवल्य प्राप्त पुरुष के संबंध में कहा है-

ईदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा।

ऐसे ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है। उनकी दृष्टि में ईश्वर किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं किंतु कैवल्य प्राप्त पुरुषों के वर्ग का नाम है। वह पतंजलि से आगे बढ़कर ईश्वर वर्ग के पुरुषों के संबंध में कहते हैं-

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता।

अर्थात् वह सर्वज्ञ है और सर्व कर्ता है। इस विषय में वेदांत के आचार्य कहते हैं कि आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद मुक्त पुरुष परमात्मा से हर बात में अभिन्न हो जाता है परंतु उसकी शक्ति पर एक रुकावट है।

उसको जगत् के उत्पादन और संहार की शक्ति नहीं होती। इसके पक्ष में कोई तर्क नहीं दिया जा सकता।

ईश्वर के संबंध में एक विचार वह भी है जिसको तंत्र की चर्चा करते हुए संकेत किया गया है। केवल वेद बाह्य तंत्र ही नहीं वर्ना कई वेद मूलक संप्रदाय भी मानते हैं कि यह जगत् परमात्मा से अभिन्न है और उसकी लीला है। इस संबंध में प्रश्न होता है- परमात्मा में लीला की प्रवृत्ति क्यों होती है? लीला एक प्रकार का कर्म है। कर्म किसी अपूर्ति को दूर करने के लिए किया जाता है। ईश्वर को अपने में किसी अपूर्ति की अनुभूति हो रही थी जिसके कारण उसने जगत् रूप में अपना प्रसार और विस्तार किया? इस विषय में कहा है-

प्रयोजनमनुद्दिश्य मूढोऽपि न प्रवर्तते।६

प्रयोजन के बिना पागल भी काम में प्रवृत्त नहीं होता। पतंजलि के ईश्वर प्रणिधान के प्रसंग में ईश्वर का वही वर्णन उपयुक्त है। वह ईश्वर न तो पतंजलि का पुरुष विशेष है, नैयायिक का आरंभक और न जगत् रूपी नाटक का सूत्रधार। वह ब्रह्म का सक्रिय रूप है, वह रूप जिसमें ब्रह्म को अपना ज्ञान होता है। यह विश्व ब्रह्म का विलास है। किसी भी अवस्था में ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं है। परंतु अज्ञान के कारण जगत की प्रतीति होती है और यह जगत असंख्य चेतन, अचेतन पदार्थों से परिपूर्ण है। इसी अज्ञान के कारण जीव अपने को परमात्मा से भिन्न समझता है।

प्रत्येक जीव में, प्रत्येक अजीव पदार्थ में, पूर्ण परमात्मा विद्यमान है, प्रत्येक चेतन और जड़ प्रतीत होने वाला पदार्थ पूर्ण परमात्मा है। जैसा कि-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।७

वह परमात्मा पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उस पूर्णतत्त्व से ही पूर्ण जगत उत्पन्न हुआ है। उस पूर्ण में से पूर्ण हटा भी दिया जाए तो भी शेष पूर्ण ही रहता है ।

जीव बराबर अपने वास्तविक रूप में स्थित होने के लिए प्रयत्नशील रहता है और जब अपने पुण्य संस्कारों के उदय होने से वह मोक्ष की ओर अभिमुख होता है तो परमात्मा के दर्शन की इच्छा और बढ़ जाती हैं। ईश्वर के दर्शन का अर्थ है आत्म साक्षात्कार का न होना। अभी आत्मा और परमात्मा के अभेद का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हुआ है, इसलिए यह तीव्र इच्छा इसी रूप में प्रकट होती है कि परमात्मा का दर्शन करना है। यह परमात्म दर्शन का आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।८

जिस प्रकार आकाश को लपेटना असंभव है इस प्रकार ईश्वर को जाने बिना मोक्ष पाना असंभव हैं। जब ईश्वर के मिलने की भावना तीव्र हो जाती है तब फिर चित्त सहज ही एक प्रकार से ईश्वरमय हो जाता है। जैसा कि श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।९

अर्थात् अर्जुन अपना मन मुझको दे दो। तुम्हारे मन में केवल में रहूं, केवल मेरा निवास हो, केवल मेरा चिंतन हो। कबीर के शब्दों में-

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समाहिं।।

ऐसी अवस्था में उसका सारा काम स्वत: ईश्वरार्पण हो जाता है। जैसा कि किसी शिव भक्त ने कहा है-

आत्मा त्वम् गिरिजामतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजाते विषयोपभोग रचना निद्रां समाधि स्थितिः।

इसी बात को उपदेश के रूप में श्री कृष्ण ने भगवद् गीता में कहा है-

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसिकौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।१०

हे अर्जुन तुम जो कुछ भी करते हो, जो कुछ भी विषयों को भोगते हो, जो यज्ञ करते हो, जो दान करते हो, जो तप करते हो वह सब मुझको अर्पण कर दो।

स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है की उपासना करने वाला पहले सोचता है तस्यैवाहम्। फिर जब उसकी बुद्धि परिष्कृत होती है तो वह कहता है तवैवाहम्। अंत में उसका भाव हो जाता है त्वमेवाहम्। तस्यैवाहम्का अर्थ है मैं उसका ही। यह उस अवस्था का द्योतक है जब उपासक अपने उपास्य से दूरी का अनुभव करता है। तवैवाहम् का अर्थ है मैं तेरा ही हूँ। यह निकटता का अपनेपन का सूचक है। भक्त की यही भावना होती है। क्रमशः चित्त के शुद्ध होने पर जब भेदभाव मिट जाता है और अभेद की अनुभूति होती है उस अवस्था का परिचायक यह वाक्य है- त्वमेवाहम्- मैं तू ही हूँ।११

जो व्यक्ति ईश्वर का अनन्य उपासक होता है उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर सर्वज्ञ-सर्वदा मेरे साथ है। इससे वह न केवल बहुत सी बुराइयों से बच जाता है अपितु अपने में बड़ी शक्ति और आत्मविश्वास का अनुभव करता है। वह न केवल संसार के कष्टों को हंसते-हंसते झेलने में समर्थ होता है वरन् लोकसंग्रह के भाव से संसार के दु:खियों को सेवा का बहुत साबोझ अपने ऊपर उठा लेता है, क्योंकि उसको इस बात का भरोसा रहता है कि मेरी सहायता करने को ईश्वर मेरे साथ है।

बिना इस प्रकार के ईश्वर प्रणिधान बुद्धि के भी व्यक्ति को योग में सिद्धि हो सकती है इसमें कोई संदेह नहीं। परंतु भक्ति योग से संबंधित योगी को निःसंदेह सुविधा होगी। उसका मार्ग सरल हो जाता है। इसलिए श्री कृष्ण ने गीता में कहा है–

तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योऽपिमतोअधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माध्धोगोभवार्जुन।।
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजतेयोमां समेयुक्ततमोमतः।।१२

प्रयत्न से योग का अभ्यास करते हुए और चित् के मलों को दूर करते हुए कई जन्मों में योगी सिद्धि को प्राप्त करता है और फिर मोक्ष रूपी परम पद तक पहुंचता है। योगी तपस्वियों से, ज्ञानियों से, कर्म करने वालों से ऊंचा है। इसलिए हे अर्जुन तुम योगी बनो। जो मुझे अंतरात्मा में लगाकर श्रद्धा के साथ मेरा भजन करता है वह सब योगियों में मुझको प्रिय है और एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है-

चतुर्विधाभजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ।।
प्रियोहिज्ञानिनोऽत्यर्थमहंसः चममप्रियः।
उदाराः:सर्वं एवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम्।।१३

हे अर्जुन चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरा भजन करते हैं- आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, धन आदि संपत्ति के चाहने वाले और ज्ञानी। इन सब में ज्ञानी जो नित्य योग में लगा होता है और केवल मेरी भक्ति करता है वह सबसे बढ़कर है। यह सब उदार है इसमें संदेह नहीं पर ज्ञानी मुझको सबसे प्रिय है और ज्ञानी को मैं सबसे अधिक प्रिय हूँ। ज्ञानी मेरी आत्मा है ऐसा मैं मानता हूँ।

यम और नियम मनुष्य मात्र के लिए हितकर है। योग में इनके प्रसंग में कोई विशेषता नहीं है। यम और नियम मनुष्य मात्र के लिए

अनिवार्यतया मान्य हो परंतु ओर कोई उनका पालन करें या न करें योगी को तो दृढ़ता के साथ उनका अनुसरण करना ही चाहिए। यदि योगी इन यम और नियमों से स्खलित हो गया तो योग के पथ पर इसकी समुचित उन्नति भी नहीं हो सकती। इस प्रकार यम-नियम ही योग की आधारशिला है। इनके बिना योग में गति हो ही नहीं सकती।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची-

(१) पातञ्जल योगदर्शन, पृ.- ७७, डॉ. रघुवीर वेदालंकार
ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली प्रथम संस्करण- २००३

(२) स्थानात्बीजादुपष्टम्भान्नि:स्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिताह्यशुचिंविदुः।। योगसूत्र १/५

(३) सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रयेन्द्रियजात्मदर्शनयोग्यत्वानि च। योगसूत्र २/४१

(४) त्रिशतक, पृ. २१७ , अनुवादक- मनसुख लाल सावलिया
प्रवीण पुस्तक भंडार, राजकोट, प्रथम संस्करण- १९८९

(५) योग दर्शन- पृ.- ११५, डॉ. संपूर्णानंद, हिंदी समिति- उत्तर प्रदेश शासन राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन हिंदी भवन, लखनऊ, द्वितीय संस्करण- १९७४

(६) योग दर्शन, पृ.- ११८

(७) ईशावास्य उपनिषद् पृ. ३६, १०८ उपनिषद्, युग निर्माण योजना गायत्री तपोभूमि मथुरा

(८) श्वेताश्वतर उपनिषद्, पृ.- ४४३, १०८ उपनिषद्

(९) श्रीमद्भगवद्गीता ९/३४ पृ.- १५१ गीता प्रेस गोरखपुर

(१०) वहीं- १२ / ८, ९पृ.- १९४

(११) योग दर्शनपृ. - १२१

(१२) वहीं- ६/४६, ४७ पृ.- ११८

(१३) श्रीमद्भगवद्गीता ७/१६, १७ पृ.- १२४

---o---

अष्टांग योग में यम वैशिष्टय

Dr. Narender Kumar
Assistant Professor
Department of Sanskrit, NIILM University

भूमिका- प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने क्लेश, अतृप्ति, वासना, ईर्ष्या आदि को दूर करने के लिए जप, तप, भक्ति, कर्मकाण्ड आदि मानव जीवन मार्ग बतलाये। इन सभी साधनों को अपने जीवन में अपनाकर व्यक्ति सुख, सफलता एवं अपने मुकाम को प्राप्त कर सांसारिक जीवन को सुखमय बनाकर ही स्वर्ग की अभिलाषा रख सकता है परन्तु परमानन्द, सच्चा ज्ञान, कैवल्य, मोक्ष को प्राप्त करने के लिए इन सभी साधनों (अष्टांग योग आदि) की आवश्यकता है। इन उच्च साधनों को हम योग विद्या से प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि योग विद्या पूर्णतः क्रियात्मक है। योग एक दर्शन कला और विज्ञान है। योग एक व्यवहारिक पद्धति है। योग के द्वारा मानव शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है। योग द्वारा मानव इस संसार को अन्दर तथा बाहर से देख और अनुभव करने योग्य बनता है। इन सभी महत्त्वपूर्ण विद्याओं का वर्णन महर्षि पतंजलि द्वारा किया गया है। योगसूत्र आज से दो हजार वर्ष पूर्व महर्षि पतंजलि द्वारा निर्मित सूत्रो का संग्रह है जिसकी प्रमाणिकता आज भी सिद्ध है। अन्य सभी प्रकार के योग भी योगसूत्र पर आधारित है। इन सूत्रो से ज्ञानवर्धन के साथ-साथ साधक स्वयं में परिवर्तन कैसे करे, मन को नियन्त्रण में कैसे लाये? बन्धनों पर विजय प्राप्त कर योग के लक्ष्य कैवल्य" को प्राप्त करता है। मानव के जीवन में समस्त दुःखों को दूर करने के लिए महृषि पतंजलि ने अष्टांग योग का एक मार्ग दिया है जिस पर चलकर आधुनिक मानव अपने जीवन को सुखमय एवं आनन्दमय बना सकते हैं। योग के सभी अंग बहुत ही आवश्यक अंग है, जिनका पालन कर मानव अपने जीवन को सुखमय और आनन्दमय बना सकता है। मानव ने अपना

जीवन बहुत ही कठोर बना लिया है उसके पास समय बहुत ही कम रहता है, वह हर समय मानसिक तनाव से ग्रस्त जीवन जीता है और वह अपने लिए समय भी नहीं निकाल पाता है। इसीलिए मानव को अपना जीवन यदि आनंदमय बनाना है तो योग को जीवन में जगह देनी पड़ेगी।

योग की सामान्य अवधारणा- योग के शाब्दिक अर्थ को समझ लेने के बाद अब हम योग की सामान्य धारणा इन ऋषियों एवं मुनियों के अनुसार इस प्रकार है-

1. **महर्षि पतंजलि के अनुसार-** योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् महर्षि पतंजलि इस विषय में कहते है कि 'चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का निरोध ही योग है।"

2. **महर्षि व्यास के अनुसार-** "योगः समाधि स च सार्वभौमिश्चित्तस्य धर्मः।"

अर्थात् "योग का अर्थ है- समाधि, जो चित्त का सार्वभौम धर्म है।"

3. **महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार-** संयोग योग इत्युक्तो जीवात्मः परमात्मनो"

अर्थात्- जीवात्मा एवं परमात्मा के मिलन का नाम योग है।"

4. **श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार-**

योगस्थः कुरु कर्माणि, संगव्यक्त्त्वा धनन्जय।
सिद्धयसिद्धयों समो भूत्वा,समत्वं योग उच्चते।।"

अर्थात्- हे अर्जुन! तुम आसक्ति का परित्याग करके सफलता असफलता में समान होकर योग में स्थित होकर कर्म करो, क्योंकि समत्व ही योग है।"

'योगः कर्मसुकौशलम'

अर्थात्- कर्मों में कुशलता का नाम ही योग है। यहाँ कर्मों में कुशलता का अर्थ है- कर्मफल की कामना का परित्याग करके कर्म करना अर्थात्- निष्काम कर्म ही योग है।

5. अग्निपुराण के अनुसार- ज्ञान का प्रकाश पड़ने पर चित्त ब्रह्म में एकाग्र हो जाता है, जिससे जीव का ब्रह्म में मिलन हो जाता है। ब्रह्म में चित्त की यह एकाग्रता ही योग है।

6. श्री श्री रविशंकर के अनुसार- ''योग सिर्फ व्यायाम और आसन ही है। यह भावनात्मक एकीकरण और रहस्यवादी तत्त्व का स्पर्श लिये हुए एक आध्यात्मिक ऊँचाई है, जो आपको सभी कल्पनाओं से परे की एक झलक देता है।

7. बाबा रामदेव के अनुसार- ''मन को भटकने न देना और एक जगह स्थिर रखना ही योग है।''

योग के अंग- महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है (योगश्चितवृत्तिनिरोधः)। इसकी स्थिति और सिद्धि के निमित्त कतिपय उपाय आवश्यक होते हैं जिन्हें 'अंग' कहते हैं और जो संख्या में आठ माने जाते हैं। योग के आठ अंगों को अष्टांग कहते हैं जिससे आठों आयामों का अभ्यास एक साथ किया जाता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार, समाधि को योग के आठ अंग माना जाता है। अष्टांग योग के अंतर्गत प्रथम पांच अंग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार) 'बहिरंग' और शेष तीन अंग (धारणा, ध्यान, समाधि) 'अंतरंग' नाम से प्रसिद्ध हैं। बहिरंग साधना यथार्थ रूप से अनुष्ठित होने पर ही साधक को अंतरंग साधना का अधिकार प्राप्त होता है। योग के आठ अंगों से जीवन में कई फायदे हैं। ये आठ प्रमुख योगिक आधार हैं जो योगी को मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति में मदद करते हैं। योग के इन आठ अंगों में महत्त्वपूर्ण तो सभी अंग है परन्तु हम यम के फायदे और जीवन में आने वाले सुख को लेकर ही इसका वर्णन करते है।

यम- यम का अर्थ होता है नियम। यम मानव को व्यवहार में सदाचार और समृद्ध जीवन के लिए नियमित और नैतिक रहने की शिक्षा

देता है। यम को पांच भागो में बांटा गया है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

सत्य- जो जैसा सुना और देखा जाता है उसको वैसे ही कहना सत्य कहलाता है। कबीर जी ने सत्य के विषय में कहा है कि सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाको हृदय सांच है, ताको हृदय आप।। सत्य के पालन से व्यक्ति का आत्मविश्वास मजबूत होता है। वह अपने विचारों और कार्यों में स्पष्टता और सही दिशा में चलता है, जिससे उसका स्वाभिमान और सम्मान बढ़ता है। सत्य का पालन करने से व्यक्ति का विश्वास योग्यता समाज में बढ़ती है। दूसरों को विश्वास मिलता है और उसके सामाजिक संबंध मजबूत होते हैं। सत्य का पालन करने से व्यक्ति अपने विचारों और वचनों में सामजस्य बनाता है। उसे समाज में समर्थन और सहयोग का माहौल मिलता है। सत्य का पालन करने से व्यक्ति की आत्मा में शांति और ऊर्जा का अनुभव होता है। वह अपने कार्यों में संतुलित और शांतिपूर्ण रहता है।

इस प्रकार, सत्य का पालन व्यक्ति को सच्चाई, ईमानदारी और सद्भावना के पथ पर ले जाता है। यह उसके जीवन में स्थिरता, सम्मान और समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है।

अहिंसा- मन, वचन और कर्म से किसी मानव को हानि न पहुंचाना ही अहिंसा है और दुसरो की बुराई, चुगली, निंदा करना हिंसा का नाम दिया गया है। योगासन और प्राणायाम के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य का संरक्षण करने में अहिंसा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अहिंसा का पालन करने से व्यक्ति की मानसिक शांति और संतुलन में सुधार होता है। यह उसे अपने विचारों को शुद्ध करने में मदद करता है और उसकी आत्मा में शांति का अनुभव होता है। अहिंसा का पालन करने से व्यक्ति समाज में सद्भावना और सहयोग की भावना बढ़ाता है। यह समाज के भीतर विश्वास और एकता को बढ़ाता है और सामाजिक संगठन को समृद्धि और उत्थान

की दिशा में प्रेरित करता है। अहिंसा योग में आध्यात्मिक विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह व्यक्ति को अपने आत्मा के साथ संवाद स्थापित करने में मदद करता है और उसे अपने अंतर्मन के गहराईयों को समझने में सहायक होता है।

इस प्रकार, अहिंसा योग का एक महत्त्वपूर्ण और आधारभूत अंग होता है जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्तर पर समृद्ध और समग्र विकास में मदद करता है।

अस्तेय- इसका अर्थ है, चोरी न करना। किसी दूसरे मनुष्य की वस्तु को जबरदस्ती अपना बनाना ही चोरी है। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति नैतिकता में स्थिर होता है। वह दूसरों की संपत्ति और सम्पत्ति का सम्मान करता है और अपने व्यवहार में समर्थ होता है। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति का जीवन समृद्धि की दिशा में बढ़ता है। अन्यों की संपत्ति का अन्याय पूर्वक अपहरण न करने से उसे समृद्धि की प्राप्ति में रुकावट नहीं आती है। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति की आत्मिक शुद्धता और सांत्वना में सुधार होता है। वह अपने कार्यों में स्पष्टता और ईमानदारी बनाए रखता है। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति के सामाजिक संबंध मजबूत होते हैं। वह अपने समाज में विश्वास योग्यता का संदेश प्रदर्शित करता है और समृद्धि और सहयोग केप्रदान में सक्षम होता है। अस्तेय का पालन करने से व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति होती है। वह अपने आत्मा के साथ संवाद स्थापित करता है और अपने जीवन को नैतिकता और सत्य के मार्ग पर चलता है।

इस प्रकार, अस्तेय योग में एक महत्वपूर्ण आधारभूत अवस्था है जो व्यक्ति को समृद्धि, आत्मिक शांति और समृद्ध सामाजिक संबंध प्राप्त करने में सहायक होती है।

ब्रह्मचर्य- यह दो शब्दों से मिलकर बना है- ब्रह्म+चर्य। ब्रह्म का अर्थ है महान और चर्य का अर्थ है आचरण। इसलिए महान है आचरण

जिसका वह होता है- ब्रह्मचारी। यह योग मार्ग में इंद्रियों के संयम को बताता है और इसे एक ऊच्चतम आदर्श में लेने की प्रेरणा देता है। ब्रह्मचर्य योग में अपनी ऊर्जा को संचित रखने का महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसका मतलब होता है इंद्रियों की ऊर्जा को अनावश्यक व्यय से बचाकर उसे उच्च आदर्शों और समर्थन के लिए उपयोगी बनाना। यह व्यक्ति को दुर्बलता और अस्थिरता से बचाता है और उसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताओं का उपयोग करने में मदद करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से व्यक्ति की मानसिक शांति और समर्थता में सुधार होता है। इससे उसकी मानसिक स्थिरता और स्वास्थ्य बढ़ती है, जिससे वह अपने दैनिक जीवन के चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से व्यक्ति के सामाजिक संबंध और सहयोग में सुधार होता है। यह उसे अपने समाज में विश्वास योग्यता का संदेश देता है और समृद्धि और सहयोग के आदाप्रदान में सक्षम होता है। यह विवाहित जीवन में भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे व्यक्ति अपने जीवन साथी के प्रति सम्मान और विश्वास का प्रदर्शन करता है। इससे पारिवारिक संबंधों में स्थिरता बनी रहती है और व्यक्ति के जीवन का हार्मोनियस विकास होता है।

इसप्रकार ब्रह्मचर्य योग में व्यक्ति को अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं में समृद्धि, स्वास्थ्य और आध्यात्मिक उन्नति के लिए मार्गदर्शन प्राप्त होता है। यह उसे अपने पुरुषार्थ के उच्चतम आदर्शों की ओर ले जाता है और उसके जीवन को सामर्थ्यपूर्ण बनाता है।

अपरिग्रह- इसका अर्थ है त्यागना अर्थात ग्रहण न करना। मानव को किसी वस्तु अर्थात धन का संग्रह नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य का मन सदा दु:खी रहता है अपरिग्रह का पालन करने से व्यक्ति मानसिक शांति और स्थिरता प्राप्त करता है। वह भोगों और संपत्तियों के लिए अत्यधिक आसक्ति और चिन्ता से मुक्त होता है। अपरिग्रह का पालन करने से व्यक्ति अपनी आत्मिक स्वतंत्रता का अनुभव करता है। वह अपने

आप में स्थित और पूर्ण महसूस करता है, बिना किसी भी भौतिक वस्तु या संपत्ति के आधार पर। अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति के ध्यान और योगाभ्यास में समर्थता बढ़ती है। वह अपनी ऊर्जा को योगिक अभ्यास में लगा सकता है और आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में अग्रसर हो सकता है। अपरिग्रह का पालन करने से व्यक्ति के सामाजिक संबंध मजबूत होते हैं। वह संपत्तियों की आवश्यकता से परे होता है और समाज में समर्थन और सहयोग की भावना को विकसित करता है।

इस प्रकार, अपरिग्रह योग में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक समृद्धि की दिशा में अग्रसर करता है। यह उसे एक संतुलित और सामर्थ्यपूर्ण जीवन जीने में मदद करता है और उसे अपने उच्चतम आदर्शों की ओर ले जाता है।

यम का जीवन में महत्त्व-

1.**नैतिकता-** यम का पालन करने से व्यक्ति नैतिकता में सुधार होता है और वह अपने व्यवहार में सच्चाई, ईमानदारी और न्याय का पालन करता है। इससे समाज में विश्वास और सहयोग का पूरा-पूरा माहौल बनता है।

2. **मानसिक स्थिरता-** यम का अनुसरण करने से व्यक्ति का आत्मविश्वास मजबूत होता है और उसका मानसिक स्थिरता में सुधार होता है। वह अपने विचारों और क्रियाओं में संतुलन और एकाग्रता बनाए रखता है।

3.**सामाजिक समर्थन और सहयोग-** यम का पालन करने से व्यक्ति अपने समाज में समर्थन और सहयोग की भावना बढ़ाता है। इससे समाज में विश्वास और सद्भावना का माहौल बनता है।

4.**शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार-** यम के माध्यम से व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य भी सुधरता है। यह अविश्रामित मानसिक और शारीरिक शांति को लाता है और उसके जीवन में ऊर्जा की वृद्धि होती है।

5.अध्यात्मिक उन्नति- यम का पालन करने से व्यक्ति अपने आत्मा के साथ संवाद स्थापित करता है और अध्यात्मिक उन्नति की दिशा में आगे बढ़ता है। इससे उसकी जीवन में सार्थकता और उद्दीपना आती है।

6.समाजिक सहयोग- यम का पालन समाज में समर्थन और सहयोग की भावना को बढ़ाता है। इससे संवाद और सहमति का अच्छा माहौल बनता है और समाज का विकास होता है।

7.व्यक्तिगत स्वास्थ्य का संरक्षण- यम का पालन करने से व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है। यह उसके जीवन में स्थिरता और समृद्धि लाता है।

8.आत्मविश्वास और अन्तर्निर्णय- यम के पालन से व्यक्ति का आत्मविश्वास मजबूत होता है और उसे अपने विचारों और कार्यों में स्पष्टता और निर्णय की क्षमता मिलती है।

9.आत्मिक उन्नति- यम योग के अंगों का अनुसरण व्यक्ति को आत्मिक उन्नति और की दिशा में आगे बढ़ाता है। यह उसे अपने स्वार्थ के परे की दिशा में ले जाता है और उसे उच्चतम आदर्शों की ओर ले जाता है।

यम के ये गुण व्यक्ति को संतुलित, सहज और संतुलित जीवन जीने में मदद करते हैं और उसे एक संवेदनशील और धार्मिक व्यक्ति बनाते हैं। इसके अलावा यम के अनुसरण से समग्र समाज में सद्भावना, शांति और समृद्धि की भावना फैलती है।

निष्कर्ष- योग ने मानव जीवन में कई शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभों के कारण दुनिया भर में बहुत लोकप्रियता हासिल की है। इस प्रकार योग में विभिन्न शारीरिक मुद्राएं, ध्यान और सांस लेने के व्यायाम शामिल है। प्रतिदिन एवं नियमित रूप से योग का अभ्यास करने से मानव को उनके शरीर के लचीलेपन, ताकत और संतुलन को बढ़ाने में मदद मिलती है। इसके अलावा यह तनाव, चिंता और अवसाद को कम

करके मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर एवं फायदेमंद बनाने में सहायता करता है। मन, शरीर और आत्मा को जोड़कर, योग आत्म-जागरूकता बढ़ाने में मदद करता है और आंतरिक खुशी और शांति को बढ़ावा देता है। इसलिए, आधुनिक दुनिया में, अधिक से अधिक लोग अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को अच्छा और बेहतर बनाने के लिए योग को अपना रहे हैं। योग बहुत सुरक्षित गतिविधि है और इसका अभ्यास कोई भी कभी भी कर सकता है, यहां तक कि बच्चे, युवा, महिलायें एवं बुजुर्ग भी इसका पूरा लाभ उठा सकते हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. श्रीमद्भगवद्गीता- श्री परमहंस स्वामी अड़ंगड़ानन्द, न्यू अपोलो स्टेट गली न.- 5, मोगरा लेन, अंधेरी (पूर्व), मुम्बई- 400069
2. Sinha, H. P. (2006). Bharatiya Darshan Ki Rooprekha. Motilal Banarsidass Publishe.
2. पतंजलि योगदर्शन, व्यास भाष्य, व्याख्या रमाशंकर त्रिपाठी, चौ.प्र.वाराणसी
3. स्वामी प्रभावानंद, पतंजलि योग सूत्र, श्री रामकृष्ण मठ, मद्रास, भारत
4. राम प्रसाद- पतंजलि योग सूत्र
5. पातंजल योग सूत्र- 1/2
6. याज्ञवल्क्य स्मृति
7. श्रीमद्भगवद्गीता- 2/48
8. श्रीमद्भागवद्गीता- 2/50
9. Chaturvedi, S. (2007), Jyotish Shastra Mein Rog Vichar, Motilal Banarsidass Publishe.
10. Sharma, C. D. (1998), Bharatiya Darshan Aalochan Aur Anusheelan, Motilal Banarsidass Publishe.
11. Radhakrishnan, S. (2019), Bhagwadgita. Penguin Random House India Private Limited. https://en.wikipedia.org/wiki/Yoga_Sutras_of_Patanjali
12. https://yoga.ayush.gov.in/blog?q=73
13. Lal, B. K. (2009), Samkaaleen Bharatiya Darshan Swami Vivekanand, Sri Aurobindo, Radhakrishnan. Motilal Banarsidass Publishe.

----o----

अष्टाङ्गयोगः

देवज्योति-कुण्डुः, शोधच्छात्रः

वैदिकदर्शनविभागः, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायः काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालयः

उपक्रमः

वर्तमानसमये योगशास्त्रस्य महत्त्वं वयं सर्वे जानीमः। योगशब्दश्रवणेनैव प्राणायामाद्यासनकरणेन स्वास्थोन्नतिमवगच्छामः। सर्वेषामप्यासनानां यथा तत्तन्नामानि उपयोगिताश्च वर्तन्ते, तथैव तत्र केचन योगविषयाः शास्त्रेषूल्लिखिताः सन्ति, ये त्वस्माभिरवश्यं ज्ञातव्याः। पातञ्जलयोगदर्शने "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"[1] इति सूत्रेण योगलक्षणमुक्तम्। चित्ते स्वभावत एव बहुधा वृत्तयः जायन्ते। तेषां निवारणद्वारैव योगमार्गो भवति प्रशस्तः। पातञ्जलयोगदर्शने विविधसूत्रैः चित्तभूमिः, चित्तवृत्तिः, तन्निरोधोपायः, तदङ्गानि इत्यादिषु विषयेषु विस्तरेण आलोचितमस्ति। योगस्याष्टावङ्गानि। तद्विषयकं हि सूत्रम्- **"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि"**[2] इति। एतेषामष्टविधानामपि भेदानां केचन उपभेदाः सम्भवन्ति। एतेषामनुष्ठानेन निरन्तराभ्यासेन चाशुद्ध्यादिक्लेशरूपमिथ्याज्ञानादिनां नाशो भवति, तदशुद्धिनाशेन च तत्त्वशुद्धिनाशेन च तत्त्वज्ञानाभिव्यक्तिः सम्भवति। महर्षिः पतञ्जलिः सूत्रानुसारेण सर्वं वर्णितवान्। सूत्राणां च भाष्यरूपं व्याख्यानं व्यासमहर्षिणा यथायथं कृतमस्ति। सम्प्रति अत्र पातञ्जलयोगसूत्रानुसारं व्यासभाष्यानुसारं च अष्टाङ्गयोगविषये निरूप्यते।

अष्टाङ्गयोगस्य स्वरूपम्-

चित्तवृत्तीनां निरोधाय मनो वा नियन्त्रणाय अष्टाङ्गयोगस्य उपयोगो भवति। अष्टाङ्गयोगाभ्यासेन जनानां न केवलं शारीरकचेष्टानामपि च मनसो

विविधवृत्तीनां नियन्त्रणं सम्भवति। मनसो बुद्धेर्वा मलविक्षेपावरणाद्यपगमनेन आध्यात्मिकी उपलब्धिर्जायते। योगशास्त्रे वर्णितेषु अष्टासु अङ्गेषु यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहाराः बहिरङ्गसाधनानि, धारणाध्यानसमाधयश्च अन्तरङ्गसाधनानि। बहिरङ्गसाधनानि शरीरसमाजादिविषयेषु भवन्ति, अन्तरङ्गानि त्वात्मचिन्तनमूलकानि। पतञ्जलिमहर्षिः "यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गान[3] इति सूत्रेण अष्टविधाङ्गानामुल्लेखं कृतवान्। सम्प्रति तदनुसारमेकैकमुच्यते।

यमः-

"यम उपरमे" इति, "यम बन्धने" इति च धातोः यमशब्दो निष्पद्यते। उपरमोऽभावः। बन्धनं हि व्रतनियमादिषु परिशीलनम्। अर्थात् स्वाभाविकहिंसायाः, मिथ्यायाः, मैथुनस्य चाभाव एव यम उच्यते। एतेषामभावानां केचन भेदाः भवन्ति- अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, ब्रह्मचर्यम्, अपरिग्रहश्चेति। वस्तुत आत्मानुशासनमेव यम उच्यते। यमानुष्ठानेन अहंभावनाशो भवति, तेन च चित्तशुद्धिर्जायते। महर्षिः पतञ्जलिः यमविषये सूत्रमाह- "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः"[4] इति। तथा च श्रूयते यमविषये- "यम्यते निम्यते चित्तम अनेन इति यम" इति। अर्थात् येन चित्तस्य नियन्त्रणं सम्भवति, स एव यम इति। अन्यत्रापि एवंविधं वर्णनं समुपलभ्यते-

"सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादिन्द्रियग्रामसंयमः।
यमोऽयमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहुः॥"[5] इति।

अर्थात् सर्वमेव ब्रह्मेति ज्ञानेन इन्द्रियसंयम एव यम उच्यते। तस्याभ्यासः पौनःपुन्येन करणीय इति तात्पर्यम्। सम्प्रति यमाङ्गानां विषये संक्षेपेणोच्यते।

अहिंसा-

अहिंसनमेव अहिंसायाः सामान्यार्थः। कस्मैचिदपि मनसा वचसा कर्मणा वा क्षतिर्न करणीया। महर्षिः व्यास आह- "तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा

सर्वभूतानामनभिद्रोहः"[6] इति। आयुर्वेदग्रन्थानुसारं हिंसा तमोद्योतकम्। सा च अभिघातं प्रतिरोधं च उत्पादयति। अतः सा त्यज्या इति अष्टाङ्गहृदयादिग्रन्थेषु वर्ण्यते। योगसूत्रे एव अहिंसाविषये उक्तम्- "अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"[7] इति।

सत्यम्-

वयं सर्वेऽपि सत्यविषये श्रुतवन्तः-

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥"[8] इति।

न्यायपूर्वकं सत्यकथनमेवोचितम्। सत्यं प्रियं च वक्तव्यम्। अप्रियकथनेन सर्वेषामेवाहितं भवति। सत्यसिद्धौ साधकानां वाणी फलप्रदायिनी भवति। योगसूत्रे सत्यपरिणामविषये उच्यते- "सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्"[9] इति। किं हि सत्यमिति व्यास एवाह- "सत्यं यथार्थे वाङ्मनसे। यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति"[10] इति। सदा सर्वदा सत्यवचनकथनेन अन्तःकरणस्यापि नैर्मल्यं जायते। अत एव साधकानां मुखनिःसृता वाक् क्रियारूपिणी भवति।

अस्तेयम्-

चौरकार्यं स्तेयं, तदभावो हि अस्तेयम्। व्यासेनोक्तम्- "स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं, तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्तेयम्"[11] इति। अशास्त्रपूर्वमन्यस्य वस्तुस्वीकरणमेव स्तेयत्वेनोच्यते। तद्विपरीतमस्तेयत्वेनोच्यते। अस्तेयसिद्धौ धनसम्पत्तिप्राप्तिः स्वतो भवति। अस्तेयपरिणामत्वेन पतञ्जलिनोक्तम्- "अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्"[12] इति।

ब्रह्मचर्यम्-

ब्रह्मणि रमणमेव वस्तुतो ब्रह्मचर्यशब्दार्थः। इन्द्रियसंयमेन उपासनाद्याचरणेन नैर्मल्यभावेन कार्यकरणमेव ब्रह्मचर्यम्। एतेन आत्मिकी भौतिकी आध्यात्मिकी वा उन्नतिः सम्भवति। महर्षिव्यासानुसारं "ब्रह्मचर्यं

गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः"[13]। अन्यत्र चोक्तं- "ब्रह्मचर्यं नाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वत्र मैथुनत्यागः"[14] इति। ब्रह्मचर्येण सर्वविधोन्नतिः सम्भवति। योगसूत्रेणोच्यते- "ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः"[15] इति।

अपरिग्रहः-

परिग्रहः सञ्चयः, तदभावोऽपरिग्रहः। इच्छानुसारं द्रव्याणां संग्रहो न कर्तव्यः। अर्थात् सर्वविधसञ्चयत्यागेन निष्कामतया भवितव्यम्। तेनैव चित्तशुद्धिर्भवति। योगसूत्रे उक्तम्- "अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः"[16] इति। अपरिग्रहस्थितौ पूर्वजन्मकथा ज्ञायते इत्यभिप्रायः। अनेन भूतभविष्ययोः ज्ञानं भवतीत्यतः अस्यानुष्ठानमावश्यकम्। एवमत्र यमभेदा उक्ताः।

नियमः-

अष्टाङ्गयोगस्य द्वितीयं महत्त्वपूर्णमङ्गं नियमः। कैश्चन नियमितानुष्ठानैः मनसोऽनुशासनमेव नियम उच्यते। एकाग्रता, नियमनं, सात्त्विकभावोद्रेकः इत्यादिकं सर्वं नियमानुष्ठानेनैव सम्भवति। महर्षिः पतञ्जलिः कैश्चनानुष्ठानैः नियमं प्रतिपादितवान्। तद्विषयकं हि सूत्रं- "शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः"[17] इति। एवमन्येपि आचार्याः केषाञ्चन अनुष्ठानानामुल्लेखेन नियमं प्रतिपादितवन्तः। यथा विज्ञानभिक्षुमतेन तपः, स्वाध्यायः, सन्तोषः, पवित्रता, ईश्वरपूजनमिति पञ्चविधो नियमः। अन्यत्र च श्रूयते- "अनुरक्ति परमतत्त्वे सततं नियमः स्मृतः"[18] इति। अर्थात् निरन्तरं परमशक्तौ अनुरक्तिरेव नियम उच्यते। एवञ्च-

"सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः।
नियमो हि परमानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः॥"[19]

इति वचनेनापि नियमार्थ उच्यते। अत एवात्मानुशासनमेव नियमशब्दार्थ इति वक्तुं शक्यते। सम्प्रति नियमाङ्गानां विषये संक्षेपेणालोच्यते।

शौचः-

शुद्धिकरणमेव शौच उच्यते। शारीरकं मानसिकम् आन्तःकरणं च तद्भवति। चित्तस्य मालिन्यं शौचेनैव दूरीभूतं भवति। योगिनो हि बाह्यशुद्धिपालनेन स्वशरीरस्य अशुद्ध्यादिनां नाशेन वैराग्यमुत्पादयन्ति। तदा देहभावं परित्यज्य आत्मभावेन तिष्ठन्ति ते। पुनरन्यविषयेषु आसक्त्यभावात् तेषां प्रसन्नता-एकाग्रता-इन्द्रियविजयादिगुणानां प्राप्तिर्भवति। शौचपरिणामत्वेन महर्षिः पतञ्जलिराह- "शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः"[20] इति। अर्थात् शौचपालनेन स्वाङ्गेषु वैराग्यं जायते, परैश्च असंसर्गो भवति। महर्षिः व्यासः बाह्याभ्यन्तरभेदेन शौचस्य द्विविधतामुक्तवान्- "तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्। आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्"[21] इति। अन्तःकरणस्य शुद्धिः, मनसः प्रसन्नता, चित्तस्य एकाग्रता, इन्द्रियाणां च वशे स्थितिः शौचानुष्ठानेन जायते। तेन च आत्मयोग्यत्वसिद्धिर्भवति। अत एव उक्तं पुनः- "सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च"[22] इति।

सन्तोषः-

नियमेषु द्वितीयो हि सन्तोषः। कर्तव्यकर्मानुसारं कार्यसिद्धेरनन्तरं प्राप्तफलेषु एव सन्तुष्टिः सन्तोष उच्यते। प्राप्तफलं व्यतिरिच्य अन्यफलेषु कामना न कर्तव्या इति भावः। सन्तोषादेव सुखप्राप्तिर्भवति। पतञ्जलिना एवोक्तम्- "सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः"[23] इति। महर्षिः व्यासः सन्तोषपरिभाषामेवमाह- "सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा"[24] इति। अर्थात् सन्तोषाचरणेन हि श्रेष्ठसुखप्राप्तिर्भवति। स्वसमीपे कस्यापि वस्तुनोऽवर्तमानत्वेऽपि सुखशान्तिप्राप्तिर्भवतीति तात्पर्यम्।

तपः-

कष्टसहनादिव्यापार एव तपःशब्दार्थः। तपश्शब्देनैव पवित्रता, आत्मसंयमः, तपस्या इत्याद्यर्था अपि अवगम्यन्ते। उचितरीत्या अभ्यासेन च स्वशरीरं, मनः, इन्द्रियाणि च स्ववशे स्थापनीयानि। व्यासेनोक्तं- "तपो

द्वन्द्वसहनम्”[25] इति। एवमन्यत्रापि श्रूयते- “तितिक्षा शोतोष्णादिद्वन्द्वसहिष्णुता”[26] इति। स्मृतिष्वपि उक्तम्-

“देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥”[27] इति।

तपसः परिणामविषये योगसूत्रे एवोक्तम्- “कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः”[28] इति। तपसः प्रभावादेव अशुद्धेः नाशो भवति। एवञ्च शरीरेन्द्रियसिद्धिः तेषु संयमप्राप्तिर्वा भवतीत्यभिप्रायः।

स्वाध्यायः-

इदमस्ति नियमस्य चतुर्थमङ्गम्। स्वस्य नैर्मल्यभावसिद्ध्यर्थम् आत्मोत्थानाय च स्वाध्यायोऽत्यतावश्यकः। आत्माध्यापनमिति स्वाध्यायशब्दस्याक्षरिकोऽर्थः। अनेन हि ज्ञानविज्ञानप्राप्तिर्भवति। ज्ञानमतिरिच्य पवित्रं किमपि संसारेऽस्मिन् न विद्यते। अत एवोक्तं- “न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते”[29] इति। अन्यत्रापि स्वाध्यायेषु एव यत्नः कर्तव्य इत्युक्तम्- “स्वाध्यायान्मा प्रमदः”[30] इत्यादिना। महर्षिः पतञ्जलिः इष्टदेवतायाः उपलब्धिरेव स्वाध्यायपरिणामत्वेनोक्तवा। तथा चोक्तं योगसूत्रे- “स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः”[31] इति। महर्षिः व्यासः स्वाध्यायपरिभाषामेवमाह- “स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा”[32] इति। स्वकार्येषु एव संलग्नो भवितव्यः। तेनैव स्वास्थोन्नतिः सम्भवतीति तात्पर्यम्। अत एवोक्तं- “देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति कार्ये चास्य वर्तन्ते”[33] इति।

ईश्वरप्रणिधानम्-

प्रणिधानं धारणं स्थापनं वा। ईश्वरस्य धारणमेव ईश्वरप्रणिधानत्वेन उच्यते। व्यासानुसारं परमगुरौ सर्वकर्मार्पणमिति ईश्वरप्रणिधानम्। वस्तुतो भक्तिपूर्वकं स्वात्मसमर्पणमेव ईश्वरप्रणिधानम्। तथाविधया उपासनया चित्तशुद्धिर्भवति। चित्तशुद्ध्या स्वाभीष्टसिद्धिः, तया च संसारे वैराग्यमुपजायते। ईश्वरे सर्वसमर्पणेनान्तःकरणस्य चञ्चलवृत्तीनां नाशो

भवति। अत ईश्वरप्रणिधानमत्यन्तमुपकारकमिति महर्षयो बहुधा ऊचुः। योगसूत्रे एवोक्तम्- "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्"[34] इति। अर्थात् ईश्वरप्रणिधानेनैव समाधिर्जायते। तथा चोक्तं व्यासेन- "ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यथा सर्वमीप्सितमवितथं जानाति देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च। ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानाति"[35] इति। एवमत्र नियमाङ्गानि संक्षेपेण आलोचितानि।

आसनम्-

स्थिरीभूता सुखकरी च शारीरकस्थितिः आसनमुच्यते। आसनेन यथा मानसिकशान्तिः प्राप्यते, तथैव मनसः चञ्चलतापि विनश्यति। अस्-धातोः निष्पन्नोऽयमासनशब्दः। योगसूत्रे "स्थिरसुखमासनम्"[36] इति सूत्रेण आसनं वर्णितम्। यत् स्थिरं सुखदायकं च, तदेवासनमुच्यते। यस्याः कस्याश्चित् साधनायाः कृते अभ्यास आवश्यकः। आसनस्याप्यभ्यासः करणीयो भवति। आसनविषये बहुत्र विविधाः परिभाषाः प्राप्यन्ते। यथा-

"सुखेनैव भवेद्यस्मिन् अजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्।
आसनं तद्विजानीयात् नेतरत्सुखनाशनम्॥"[37] इति।

"समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥"[38] इत्यादिः।

कानि च आसनानि इत्यस्मिन् विषये व्यासाचार्य आह- "तद्यथा पद्मासनं, वीरासनं, भद्रासनं, स्वस्तिकं, दण्डासनं, सोपाश्रयं, पर्यङ्कं, क्रौञ्चनिषदनं, हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं, समसंस्थानं, स्थिरसुखं यथासुखं चेत्येवमादीनि"[39] इति। आसनसिद्धिर्हि प्रयत्नशैथिल्याद् अनन्तसमापत्त्या च भवतीति सूत्रेणैवोच्यते- "प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्"[40] इति। आसनाभ्यासेन यदा स्थिरतायाः प्राप्तिर्भवति, तदा किमपि दुःखम् अस्मान् विचालयितुं समर्थं न भवति। आसनफलेन पतञ्जलिराह - "ततो द्वन्द्वानभिघातः"[41] इति। अस्याभिप्रायेण "शीतोष्णादिभिर्द्वन्द्वैरासनजयान्नाभिभूयते"[42] इति व्यास उवाच।

प्राणायामः-

प्राणायामेऽपि योगस्य किञ्चित् विशिष्टमङ्गम्। श्वासक्रियासम्बद्धोऽयं प्राणायामः। प्राणो नाम श्वसनं, जीवनम्, ओजस्विता वा। आयामो नाम विस्तारः, प्रसारः, अवरोधो नियन्त्रणं वा। प्रपूर्वकाद् अन्-धातोः प्राणशब्दः निष्पन्नः। विस्तारणमेव प्राणशब्दस्याक्षरिकोऽर्थः। एवञ्च संयमनमित्यपि कश्चिदन्योऽर्थः शब्दस्यास्य श्रूयते। योगसूत्रे उच्यते- "तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः"[43] इति। अर्थात् आसनस्य स्थिरतायां श्वासप्रश्वासयोः गत्यवरोध एव प्राणायाम उच्यते। कः श्वासःक, कश्च प्रश्वासः, ताभ्यां च प्राणायामः कथं भवतीत्युच्यते- "सत्यासनजये बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः। कौष्ठ्यस्य वायोर्निःसरणं प्रश्वासः। तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायाम"[44] इति। याज्ञवल्क्यानुसारं-

"प्राणापानसमायोगः प्राणायाम इतीरितः।

प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरककुम्भकैः॥"[45] इति।

एवञ्च सर्वविधवृत्तीनां निरोध एव प्राणायाम इत्युक्तम्- "निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः"[46] इति।

महर्षिः पतञ्जलिः प्राणायामस्य भेदत्रयमाह- बाह्यः, आभ्यन्तरः, स्तम्भश्च। तद्विषयकं सूत्रं हि- "बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः"[47] इति। एते भेदाः रेचक-पूरक-कुम्भकनाम्नाऽपि परिचिताः। यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः। यत्र श्वासपूर्वको गत्यभावः स आभ्यन्तरः। यत्र उभयाभावः सकृत्प्रयत्नाद्भवति, स स्तम्भः। देश-काल-संख्याभेदेन प्रत्येकं प्राणायामः पुनस्त्रिधा। महर्षिः पतञ्जलिः अन्यैः सूत्रैः, महर्षिः व्यासश्च तदर्थविस्तारेण प्राणायामविषये योगशास्त्रे विस्तरेण वर्णितवान्।

प्रत्याहारः-

इन्द्रियाणां गतिः विषयेभ्यः विपरीतकरणमिति प्रत्याहारशब्दस्यार्थः। अत्र पञ्च तन्मात्राणि विषयः। इन्द्रियाणां

बहिर्मुखतायाः अन्तर्मुखताकरणमेव प्रत्याहार उच्यते। महर्षिः पतञ्जलिराह- "स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार"[48] इति। विषयसम्बन्धं व्यतिरिच्य चित्तस्वरूपे तदाकारभवनमेव प्रत्याहार इति भावार्थः। महर्षिः व्यास उदाहरणपुरःसरं प्रत्याहारं विवृणोति- "स्वविषयसंप्रयोगाभावे चित्तस्वरूपानुकार इवेति चित्तनिरोधे चित्तवन्निरुद्धानीन्द्रियाणि नेतरेन्द्रिजयवदुपायान्तरमपेक्षन्ते। यथा मधुकरराजं मक्षिका उत्पतन्तमनूत्पतन्ति निविशमानमनुनिविशन्ते तथेन्द्रियाणि चित्तनिरोधे निरुद्धानीत्येष प्रत्याहार"[49] इति। अन्यत्र च श्रूयते-

"इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरगलम्।
बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते॥"[50] इति।

भगवद्गीतायां च-

"यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥"[51] इति।

एवञ्च-

"शब्दादिष्वनुषक्तानि निगृह्याक्षणि योगवित्।
कुर्याच्चित्तानुकारिणी प्रत्याहारपरायणाः॥"[52] इति।

प्रत्याहारेण इन्द्रियाणां वश्यता भवति। अर्थात् प्रत्याहारेण इन्द्रियाणि स्ववशे तिष्ठन्ति। योगसूत्रे एवोक्तं- "ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्"[53] इति। शब्दादिषु अव्यसनमिन्द्रियजय इति केचिद् वदन्ति। महर्षिः व्यासोऽस्मिन् विषये विस्तरेण निरूपितवान्।

धारणा-

अन्तरङ्गयोगेषु प्रथमो हि धारणा। वस्तुतो ध्यानस्य पूर्वावस्था धारणा। ध्यानात् पूर्वं धारणा आवश्यकी। मनसः एकाग्रतासिद्धये धारणा अत्यन्तमावश्यकी। प्रत्याहारेण चित्तस्य अन्तर्मुखता सिध्यति, धारणया च चित्तस्यैव स्थितेः पूर्वावस्था। कस्मिंश्चित् विषये मनसः एकाग्रतासिद्धिरेव धारणायाः भावार्थः। महर्षिः पतञ्जलिः धारणायाः परिभाषामाह-

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"[54] इत। देशविशेषे चित्तस्य स्थिरीकरणमिति तदर्थः। शरीरस्यैव देशविशेषे मनसः स्थिरता सम्भवतीति नैके महर्षयो विविधानि तत्त्वानि प्रतिपादितवन्तः। तथा च श्रूयते-

"पञ्चभूतमये देहे भूतेष्वेतेषु पञ्चसु।

मनसो धारणं यत्यद्युक्तस्य च यमादिभिः॥"[55] इति।

धारणाविषये अन्यत्रापि श्रूयते- "तं योगमिति मन्यते स्थिरमिन्द्रियधारणम्"[56] इति। अर्थात् मनसः इन्द्रियाणां च दृढतया नियन्त्रणमेव धारणा। विविधग्रन्थेषु पुनः धारणायाः भेदा अपि वर्णिताः सन्ति। "नाभिचक्रे, हृदयपुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे, जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्धः इति धारणा"[57] इति महर्षिः व्यासः। एवमन्येऽपि आचार्याः धारणायाः महत्त्वं बहुधा व्याख्यातवन्तः।

ध्यानम्-

ध्यानात् पूर्वावस्था धारणा इत्युक्तम्। धारणायाः पश्चादेव ध्यानप्रक्रिया भवति। यदा धारणाभ्यासी देशविदेशेषु ध्येयविषयेषु मनः संलग्नयति, साऽवस्था ध्यानमुच्यते। समाधेः पूर्वावस्था ध्यानम्। एतेन आत्मसाक्षात्कारो भवति। अतो ध्यानस्य मुक्तिद्वारमित्यपि अपरं नाम। सर्वेष्वपि दर्शनेषु, धर्मेषु, सम्प्रदायेषु ध्यानमङ्गीक्रियते। किन्तु भिन्नाः भिन्नाः योगिनो ध्यानस्य विविधविधीन् प्रतिपादयन्ति। अन्ततश्च ध्यानप्रक्रिया समाना एव। कस्मिंश्चिदपि विषये चित्तं स्थिरीकृत्य तद्विषयकमनवरतमनुचिन्तनमेव ध्यानमुच्यते। तथाहि पातञ्जलसूत्रम्- "तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्"[58] इति। महर्षिः व्यासः सूत्रस्यास्यार्थमेवं प्रतिपादितवान्- "तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानतासदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो ध्यानम्"[59] इति। सांख्यसूत्रानुसारं- "ध्यानं निर्विषयं मनः"[60] इत्युक्तम्। एवमन्यत्रापि "ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः"[61], "उत्तमसघनस्येकाग्राचिन्ता निरोधो ध्यानगन्तमुहुर्वाति"[62], "ब्रह्मात्मचिन्ता

ध्यानं स्यात्”[63], “सोऽहं चिन्मात्रमेवेति चिन्तनं ध्यानमुच्यते”[64], “सर्वशरीरेषु चैतन्येकतानता ध्यानम्”[65] इत्याद्युक्तयः प्राप्यन्ते। मनसः विषयराहित्येन अविरततैलधारावत् अनवरतमनुचिन्तनमेव ध्यानमिति भावार्थः।

समाधिः-

ध्यानस्य परिपक्वावस्था समाधिः। यदा दीर्घकालं यावद् ध्यानाभ्यासेन परिपूर्णता आगच्छति, तदा तदेव ध्यानं समाधिरूपेण परिणतं भवति। अतो ध्यानावस्थानन्तरं समाध्यवस्था आगच्छति। वस्तुतस्तु समाधिः ध्यानस्यैव उत्तरं रूपं पूर्णावस्था वा। महर्षिः पतञ्जलिः समाधिविषये सूत्रं विरचितवान्- “तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः”[66] इति। अर्थात् ध्यानेन यदा चित्तं ध्येयाकाररूपेण परिणतं भवति, स्वस्वरूपस्य चाभावो भवति, तदा ध्येयवस्तु व्यतिरिच्य अन्यस्य कस्यापि वस्तुनः प्रतीतिर्न भवति। स एवावस्था समाध्यवस्था। ध्यानावस्थायां ध्याता, ध्यानं, ध्येयश्चेति त्रयं पृथक् पृथक् तिष्ठति। तत्र ध्याता ध्येयस्य ध्यानं करोति। किन्तु समाध्यवस्थायां ध्यानमेव ध्येयं भवति। ध्यानध्येययोर्मध्ये भेदो न तिष्ठति, ध्याता च अहंत्वप्रतीतिं विस्मृत्य ध्येयेन सह एकीभूतं भवति। एवं समाधौ ध्येयमेव शेषत्वेन तिष्ठति। तत्र ध्याता ध्यानं च ध्येयाकारेण तिष्ठति। अवस्थायामस्यां समस्तचित्तवृत्तीनां निरोधो भवति। योगस्य परिभाषायां महर्षिः पतञ्जलिः एतमेव योगार्थमाह- “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः”[67] इति। समाधिः क इति व्यासः सम्यक् प्रतिपादितवान्- “ध्यानमेव ध्येयाकारनिर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिव यदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधिरित्युच्यते”[68] इति। अन्यत्र समाधेः परिभाषा एवं प्राप्यते-

“तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्।
मनसा ध्यानं निष्पाद्य समाधिः सोऽभिधीयते॥”[69] इति।

अन्यत्र च श्रूयते- "तदेव स्वच्छचित्तस्य वृत्तिप्रवाहरूपं ध्यानमेव अर्थमात्रनिर्भासम्। अर्थमात्रस्य प्रत्ययादिवर्जितस्य ध्येयस्य निःशेषेण सन्दिग्धसर्वात्मना भासो भानं यत्र तथाभूतमहमिदं चिन्तयामीत्येवंविधाकारशून्यम्। तादृशं ध्यानं भावनाविशेषः समाधिपदार्थः"[70] इति। अपि च "निर्वातदीपवच्चित्तं समाधिरित्यभिधीयते"[71] इत्युक्तिः प्रसिद्धा एव। समाधिरेव ज्ञानसंज्ञक इत्युच्यते-

"निर्विकारतया वृत्त्या ब्रह्माकारं तथा पुनः।
वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञानसंज्ञकः॥"[72] इति।

निर्विकारया ब्रह्माकारकवृत्त्या यदा चित्तं पूर्णतया वृत्तिहीनं भवति, तदा समाधिः भवतीति अर्थः।

विविधग्रन्थेषु समाधेः केचन भेदाः उपभेदाः चोक्ताः। पातञ्जलयोगदर्शने एव सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञातभेदेन समाधेः भेदद्वयमुक्तम्। सम्प्रज्ञातसमाधौ केवलं ध्येयविषयस्यैव ज्ञानं भवति, तद्भिन्नविषयाणां चाभावो भवति। अयमेव सबीजसमाधिरित्युच्यते। योगसूत्रेणैव सम्प्रज्ञातसमाधेः उपभेदाः उक्ताः- "वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात् सम्प्रज्ञात"[73] इति। एवञ्च असम्प्रज्ञातसमाधिः निर्बीजसमाधिरित्याख्यायते। अस्यामवस्थायां चित्तस्य सर्वा अपि वृत्तयः विनश्यन्ति। अस्यामेव स्थितौ परमवैराग्यप्राप्तिर्भवति। अयमपि समाधिः भवप्रत्यय-उपायप्रत्ययभेदेन द्विधा। भवप्रत्ययविषये सूत्रं- "भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्"[74] इति, उपायप्रत्ययविषये च सूत्रं- "श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्"[75] इति। योगसूत्रेणैव प्रज्ञादिविषयेऽपि वर्णनं लभ्यते, व्यासश्च तेषां यथायथं व्याख्यानमकरोत्।

अष्टाङ्गयोगस्य महत्त्वम्-

अष्टाङ्गयोगस्य अभ्यासेन शारीरिकी, मानसिकी, आध्यात्मिकी चोन्नतिर्भवति। तदुन्नत्या च क्रमेण अविद्याया अपि नाशो भवति। तेन च

अन्तःकरणस्यापि नैर्मल्यं सिध्यति। अपवित्रताक्षयेण चात्मज्ञानप्राप्तिर्जायते। आदरपूर्वकानुष्ठानेन चित्तस्य मालिन्यं नश्यतीति नैके महर्षयो विविधतत्त्वोपदेशपुरःसरमुक्तवन्तः। तथा चोक्तं पातञ्जलयोगदर्शने एव- "योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः"[76] इति। अर्थात् योगाङ्गानामनुष्ठानेन अशुद्धिक्षयेण च ज्ञानस्य प्रकाशो भवति, तेन च क्रमेण विवेकख्यातिर्जायते। तथा चोक्तं महर्षिणा व्यासेन- "योगाङ्गान्यष्टावधिधायिष्यमाणानि। तेषामनुष्ठानात् पञ्चपर्वणो विपर्ययस्याशुद्धिरूपस्य क्षयो नाशः। तत्क्षये सम्यग्ज्ञानस्याभिव्यक्तिः। यथा यथा च साधनान्यनुष्ठीयन्ते तथा तथा तनुत्वमशुद्धिरापद्यते। यथा यथा च क्षीयते तथा तथा क्षयक्रमानुरोधिनी ज्ञानस्यापि दीप्तिर्विवर्धते। सा खल्वेषा विवृद्धिः प्रकर्षमनुभवत्या विवेकख्यातेः। आगुणपुरुषस्वरूपविज्ञानादित्यर्थः"[77] इति। यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयः योगस्य अष्टावङ्गानि। एतेषां यथायथमनुष्ठानं कर्तव्यम्। योगस्यान्तिमं फलं समाधिः। स च एतेषामङ्गानां यथायथानुष्ठानेनैव भवति। पातञ्जलयोगसूत्रे एतेषां विषये सम्यक्तया सर्वं वर्णितम्। एवमन्यत्रापि योगसिद्धान्तेषु योगविषयिकी चर्चा दरीदृश्यते।

उपसंहारः-

चित्तवृत्तीनां निरोध एव योगः। क्लिष्टाक्लिष्टभेदेन वृत्तयः पञ्चविधाः। ताः हि "प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः"[78] इति। योगदर्शनस्य मुख्यमुद्देश्यं समाधिप्राप्तिः। पातञ्जलयोगदर्शने महर्षिः पतञ्जलिः विविधसूत्रैः योगविषये विस्तृततया चर्चां विहितवान्। सूत्राणां तेषामर्थान् पुनरपि यथायथं व्याख्यातवान् महर्षिः व्यासः। तत्र योगस्याष्टावङ्गानि निरूपितानि। तद्विषयकं हि सूत्रं- "यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि"[79] इति। यमाः पुनः केषुचिद् भेदेषु विभक्ताः। तथा ह्युक्तम्- "अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः"[80] इति। नियमविषये उच्यते-

"शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः"[81] इति। योगसूत्रे एतेषां सर्वेषामपि विषये विस्तरेण आलोचितमस्ति। सर्वाण्यपीमानि अष्टावङ्गानि अनुष्ठेयानि। साधका अपि एतेषामनुष्ठानेनैव समाधिं प्रति सरन्ति। चित्तस्य निर्मलतासिद्धिः, एकाग्रता, इष्टप्राप्तिरिति सर्वं योगाङ्गानामनुष्ठानेनैव भवति। अत्र योगाङ्गानां सामान्यपरिचयमुक्त्वा एकैकाङ्गविषये विस्तरेणालोचितमस्ति। ततश्च अष्टाङ्गयोगस्य महत्त्वमुक्तम्। अत्र पातञ्जलयोगदर्शनानुसारं व्यासभाष्यानुसारं च योगस्य अष्टाङ्गविषये निरूपितम्। मध्ये मध्ये अन्या अपि उक्तयः तत्तत्सन्दर्भे प्रदत्ताः। एवमत्र अष्टाङ्गयोग इति विषयो निरूपित इति शिवम्।

सन्दर्भाः-

1. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.2)
2. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.29)
3. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.29)
4. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.30)
5. अपरोक्षानुभूतिः (104)
6. व्यासभाष्यम् (2.30)
7. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.35)
8. मनुस्मृतिः
9. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.36)
10. व्यासभाष्यम् (2.30)
11. व्यासभाष्यम् (2.30)
12. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.37)
13. व्यासभाष्यम् (2.30)
14. शाण्डिल्योपनिषद्
15. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.38)
16. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.39)
17. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.32)
18. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् (2.29)

19. तेजोबिन्दूपनिषद् (2.18)
20. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.40)
21. व्यासभाष्यम् (2.40)
22. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.41)
23. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.42)
24. व्यासभाष्यम् (2.40)
25. व्यासभाष्यम् (2.32)
26. वेदान्तसारः
27. श्रीमद्भगवद्गीता (17.14)
28. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.43)
29. श्रीमद्भगवद्गीता (4.38)
30. तैत्तरियोपनिषद् (1.11.1)
31. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.44)
32. व्यासभाष्यम् (2.32)
33. व्यासभाष्यम् (2.44)
34. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.45)
35. व्यासभाष्यम् (2.45)
36. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.46)
37. अपरोक्षानुभूतिः
38. श्रीमद्भगवद्गीता (6.13)
39. व्यासभाष्यम् (2.46)
40. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.47)
41. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.48)
42. व्यासभाष्यम् (2.48)
43. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.49)
44. व्यासभाष्यम् (2.49)
45. याज्ञवल्क्यस्मृतिः (6.2)
46. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् (2.30)
47. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.50)

48. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.54)
49. व्यासभाष्यम् (2.54)
50. शारदातिलकम् (25.23)
51. श्रीमद्भगवद्गीता (6.26)
52. विष्णुपुराणम्
53. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.55)
54. पातञ्जलयोगदर्शनम् (3.1)
55. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्
56. कठोपनिषद् (2.3.11)
57. व्यासभाष्यम् (3.1)
58. पातञ्जलयोगदर्शनम् (3.2)
59. व्यासभाष्यम् (3.2)
60. सांख्यसूत्रम् (6.25)
61. घेरण्डसंहिता
62. तत्त्वार्थसूत्रम् (9.27)
63. गरुडपुराणम् (18 अध्यायः)
64. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्
65. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्
66. पातञ्जलयोगदर्शनम् (3.3)
67. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.2)
68. व्यासभाष्यम् (3.3)
69. विष्णुपुराणम् (6.7.92)
70. योगसिद्धान्तचन्द्रिका
71. विद्यारण्यस्वामी
72. अपरोक्षानुभूतिः (124)
73. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.17)
74. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.19)
75. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.20)
76. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.28)

77. व्यासभाष्यम् (2.28)
78. पातञ्जलयोगदर्शनम् (1.7)
79. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.29)
80. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.30)
81. पातञ्जलयोगदर्शनम् (2.32)

आश्रितग्रन्थतालिका-

1. श्रीवास्तवः, सुरेशचन्द्रः (व्याख्याकार), व्यासभाष्य-संवलितं पातञ्जलयोगदर्शनम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
2. दशोरा, नन्दलाल (व्याख्याकार), पातंजल योग सूत्र, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार
3. पातञ्जलयोगप्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. योग-दर्शन (हिन्दी व्याख्यासहित), गीताप्रेस, गोरखपुर
5. पारीक, हनुमान शर्मा, नवीन कुमार, NTA UGC नेट/जेआरएफ/सेट संस्कृत पेपर- 2, अरिहन्त पब्लिकेशन्स
6. सर्वज्ञभूषण, भारतीयदर्शनसार, संस्कृतगङ्गा, दारागञ्ज, प्रयाग।, 21 जून, 2021 (द्वितीय संस्करण), जनवरी 2019 (प्रथम संस्करण)
7. मिश्रः, आचार्यः श्रीरामचन्द्रः, संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा वि., वाराणसी, 2017
8. दाहालः, आचार्यः लोकमणिः, संस्कृतसाहित्येतिहासः, चौखम्बा कृ.अ., वाराणसी, 2016
9. पंडा, गंगाधर (प्रकाशक), संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उ.प्र.संस्कृत संस्थान, लखनऊ
10. पाण्डेयः, मिथिलेशः, यू.जी.सी. नेट, जे.आर.एफ., सेट संस्कृत, उपकार प्रकाशन, आगरा
11. भट्टः, नागराजः, स्वामि-वेदतत्त्वानन्दः (सम्पादकौ),भारतीयदर्शनम्- (1 भागः), राष्ट्रीय-मुक्त-विद्यालयी-शिक्षा-संस्थानम्, नोएडा- 2017 (प्रथमं संस्करणम्)।
12. epg-pathshala (https://epgp.inflibnet.ac.in/Home

----०----

RELEVANCE OF ĀṢṬĀŇGAYOGA IN THE STRESS-AFFLICTED SOCIETY

Dr. Sapna O. P.
Assistant Professor of Sanskrit
Govt. Brennen College, Dharmadam, Kannur, Kerala

In the present scenario, humankind faces different types of stresses. The very changes that held in the journey of humankind like industrialisation, globalisation and the development in the field of science and technology, completely redefined the goals and perspectives of life itself. The various natural disasters and pandemics changed the priority of the human being and changed the nature of the stress that they undergo. Conflict of hierarchy of priorities and rebound of experience compel man to make worth for living.

A meaningful life is possible only with a pleasant mind. Here philosophies that arouse the human urge to resurrect deserve new readings. This article is intended to study how Āṣṭāňgayoga of Yogaśāstra helps to meet with this stress.

Indian philosophical systems aimed at the betterment and upliftment of humans, and hence they are relevant after centuries. Yoga philosophy, being one of the oldest philosophies, occupies a very important role in the philosophical systems in India, and it is relevant in almost all walks of life. Yoga philosophy is applying as a preventive as well as remedial tool for well-being.

It is an interesting fact that every living thing in nature faces stress during their life time, which proves that stress is the very foundation of life, and it is not harmful and can be called positive. But when it affects the well-being of the individual and society, the stress becomes negative, which is destructive, which means stress cannot be avoided; it can be managed and successfully over come. Successful management of stress is the mantra of a successful and meaningful life. In a close examination, it is visible that it is not only the situation or the circumstances that make stress positive or negative but also the human being who passes through it that makes it worse. In other words, the person who passes through with the stress can make it

positive. How is it possible? It is possible only through exercises of both mental and physical togetherness. Through these exercises, one can control his or her stress, which will result in a strong person and a strong society too. That is the importance of Aṣṭāňgayoga of Yogaśāstra.

It is very interesting how a very ancient system of knowledge assures solutions for the day-to-day affairs of the human beings of the 21st century. Even though Yoga philosophy emphasizes samadhi, it speaks about kriyayoga, which is suitable for the practice of common man. Aṣṭāňgayoga belongs to kriyayoga and enables to achieve a peaceful life.

The modern man always looks outward and finds happiness in the glory of the outer world. They are always comparing each other and have a competitive mentality and feel victorious only by beating others. They fail to know the meaning of achievement and lack the wonderful, his own inner world. Aṣṭāňgayoga prepares a common man to find out the glory of our own happiness. But it should be noted that it is not something narcissistic in nature but a process of self-realization. It is never a subjective addiction but a stimulus to lead a moral and ethical life.

MANAGING STRESS THROUGH THE PRINCIPLE OF AṢṬĀŇGAYOGA-

The Yoga Sutra introduces the Aṣṭāňga by saying that by practicing Aṣṭāňga, impurity is reduced and wisdom is enlightened up to Vivekakhyāti**.**

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः[1]

The Aṣṭāňga methods are Yama, Niyama, Āsana, Prānāyāma, Pratyāhāra, Dhārana, Dhyāna and Samādhi[[2]. Yama and Niyama are different aspects of moral life. Āsana, Prānāyāma and Pratyāhāra are the physical and mental aspects, while Dhāraṇa, Dhyāna, and Samādhi are the spiritual aspects. And hence, Aṣṭāňga is the holistic approach of the yoga

---

1 . Yogasutra, II.28

2 . Ibid, II.29

philosophy that enables meeting with the day-to-day complexities of human experience.

Yama contains moral and ethical principles. Yama is non-violence, truthfulness, non-stealing, continence, and non-receiving[1]. These are common and universal human values. Yama teaches man not to torment any insect, not to lie, not to desire and possess another's property, not to abuse power, and not to be addicted to any object with addiction. Here are some tips to help you get started:

Niyama puts forward individual trainings. Purity, happiness, mortification, Swādhyāya, and Iśvarapraṇidhāna[2] are bring in. There are two types of Śauca : external and internal. Happiness is contentment. Tapas is self-control. It is a convenient way to make order in daily life. Swādhyāya is the study of liberating books. It means introspection. Devotion to God is Iśvarapraṇidhānam. The practice of Yama leads to the bliss of the individual and thus the society. Deviation from this can have psychological stress and physical and social consequences for the individual.

When analyzing stress, it can be seen that human life is so conflicted by the outside world and the urge to face the temptations of that competitive world. Those who compete to make their living on social media not only indulge in external temptations but also fall prey to conceptual pollution. In this case, it is necessary to consider the mirror that opens to everyone. Yama and Niyama provide a mature and competent mindset that understands one's needs and necessities and recognizes the realities of the outside world. It envisions a brotherhood of faith that must be done for the good of oneself and those around oneself.

Niyama commands him to be satisfied with the benefits he has received and to maintain a balanced way of life. Many diseases of this period are caused by lifestyle. Beyond the stylistic change that takes place suddenly, Niyama puts forward a system that is possible through constant training. Exercise and concentration are the most important steps that can be taken to

1. Ibid, II, 30
2. Ibid, II.32

reduce stress. Āsana- Prāṇāyāma, Pratyāhāra, Dhārana, Dhyāna, and Samādhi refer to this one spiritual part. Āsana is known as स्थिरसुखमासनम्[1]. Often the only temporary comfort or convenience at the time is our physical posture, which causes physical discomfort. It's stressful. Physical condition and stress can be seen to work in conjunction with each other. The sitting, standing, or lying posture ideal for the body can be described as asana. It essentially helps the joints and organs of the body. Many diseases are caused by a lack of oxygen and blood in the body as well as a malfunction in the circulatory system. Āsana and Prāṇāyāma are the best remedies for this. Compared to other forms of exercise, the Āsana provides healing to the body and mind at the same time. It causes essential postures in the body, facilitates the functioning of the circulatory system, and facilitates oxygen circulation.

Concentration of the mind removes worries and anxieties. Yoga teaches many ways to concentrate the mind. It's all creative and enlightening. Yoga allows one to meditate on anything that appeals to one as good. Swami Vivekananda says

This does not mean any wicked subject, but anything good that you

like, any place that you like best, any scenery that you like best, any idea that you like best, anything that will concentrate the mind.[2]

The practice of Āsanas is rhythmic. In fact, it creates a tension in the yoga pose and leads to calm. Pranayama consists of three stages: Pūraka, Kumbhaka, and Recaka. Pūraka puts a lot of stress on the body. It is released very slowly through the lungs. It takes about twice as long to complete. It is also a way of life and training. Yoga enables man to deal with conflicts. Yoga thus enables man to overcome the daily stresses of practical life. It makes the response to stress balanced. The pressures of living conditions do not have a major impact on individ uals. In an article in Harvard Health Publishing, it says-

---

1. Ibid, II.46
2. The complete works of Sami Vivekananda, p.244

By reducing perceived stress and anxiety, yoga appears to

Modulate stress response systems. This, in turn, decreases

physiological arousal for example, reducing the heart rate, lowering blood pressure, and easing respiration. There is also evidence that yoga practices help increase heart rate variability, an indicator of the body's ability to respond to stress more flexibly[1]

Stress is an indispensable presence in human life. It is important to know how to cope with stress. The only way out is to understand the situation in front of the swamped man and get away with it in a balanced way. Similarly, it is necessary to manage in a balanced way under stress. It requires physical, mental, and emotional codification. This synchronization is possible through the practice of regular Āṣṭāňga yoga. Understanding the principle and making yoga a way of life, one can transform any stressful situation into a cohesive pleasure.

YOGA PHILOSOPHY- BRIDGING ANCIENT WISDOM AND MODERN LIVING

In the modern world, yoga philosophy has earned a wonderful as well as a popular place, which indicates how much our ancient heritage of knowledge has a close connection with the life of human beings. Yoga practices and philosophies are today an important tool for reducing human tension and stressful situations in the IT sector, hospitals, schools, and more.

---

1. https://www.health.harvard.edu/mind-and-mood/yoga-for-anxiety-and-depression

Selected Bibliography

Prasad Madhu, Learn all about hypertension, Tiny Tot Publications, Delhi, 2004.

Ranganathan Shyam, Patanjalis Yogasutra, Penguin Books, New Delhi, 2008.

Vivekananda, The Complete Works of Swami Vivekananda (Vol. 1), Advaita Asrama Publication, Kolkata, 2013.

PatanjalanYogasutrani, Anandasrama Press, 1984.

https://www.health.harvard.edu/mind-and-mood/yoga-for-anxiety-and-depression

The scopes and the challenges of the new age are different from what we are expecting, and that makes life so complex. Usually almost all of the exercises are intended to perform as a physical exercise but yoga physical as well as mental also and hence it is self-centred. Self-centeredness is not a form of narcissism; rather, it is a mindset that enables people to know themselves in greater detail. Knowing oneself is the key to knowing the world. The ability to know the whole world will make a person a better human being and a better social being. Today the whole world is understanding the importance of yoga and October 21st is celebrating the international yoga day. This fact expresses the importance and the universality of yoga philosophy.

---o---

भारत के विशिष्ट योगाचार्य: शिवानंद सरस्वती

डॉ. ऋषिका वर्मा, सहायक आचार्य
दर्शन विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविध्यालय, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखंड

शोध-सार: स्वाति शिवानंद सरस्वती सनातन धर्म के विख्यात नेता थे। इन्होने योग, अध्यात्म, वेदान्त, दर्शन और अन्य विषयों पर बहुत सी पुस्तकें लिखी। स्वामी शिवानंद का जीवन आध्यात्मिकता के साथ सरलता का उदाहरण है। कहा जाता है कि शिवानन्द सरस्वती को एक साधु ने एक आध्यात्मिक पुस्तक दी। उन्होंने इस पुस्तक को पूरा पढ़ा और इसका असर यह हुआ कि उनके मन में वैराग्य का भाव उदय हुआ। हालांकि इससे पहले वे श्री शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद के साहित्य भी पढ़ा करते थे और नियमित पूजा-पाठ भी करते थे। लेकिन इस किताब को पढ़ने के बाद अचानक इनके मन में साधना का भाव उदय हो गया और वे 1922 में अपनी नौकरी छोड़कर मलाया से भारत वापस आ गए, घर पर अपना सामान रखा और घर के भीतर प्रवेश किए बिना ही तीर्थ स्थानों के भ्रमण पर निकल पड़े। शिवानंद ने 1936 में गंगा नदी के तट पर दिव्य जीवन सोसाइटी की स्थापना की, जो मुफ्त में आध्यात्मिक साहित्य वितरित करती थी।

बीज शब्द: स्वामी शिवानंद, योग, दिव्य सोसाइटी, जीवन

प्रस्तावना: तमिलनाडु में जन्में स्वामी शिवानन्द सरस्वती सनातन धर्म के विख्यात नेता थे। इन्होंने योग, अध्यात्म, वेदांत, दर्शन और अन्य विषयों पर लगभग 300 से अधिक पुस्तकें लिखी। स्वामी शिवानन्द का जीवन आध्यात्मिकता के साथ सरलता का उदाहरण है। इन्होंने डॉक्टरी

छोड़ आध्यात्म की राह चुनी और संन्यास लेने के बाद ऋषिकेष में अपना जीवन व्यतीत किया।[1]

स्वामी शिवानन्द सरस्वती का जन्म दक्षिण भारत में ताम्रपर्णी नदी के पास पट्टामड़ाई नाम के गांव में 1887 को हुआ था। इनके बचपन का नाम कुप्पु स्वामी था। कुप्पु स्वामी के पिता का नाम श्री पी.एस. गहवर था जोकि एक तहसीलदार थे। माता का नाम पार्वती अम्मा था। माता-पिता दोनों ही धार्मिक प्रवृति के थे और ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखते थे। इसका प्रभाव शिवानन्द स्वामी पर भी पड़ा। बचपन से ही उन्होंने वेदांत का अध्ययन और अभ्यास किया और बाद में चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन भी किया। इसके बाद वे 1913 में मलाया में डॉक्टर के रूप में लोगों की सेवा करने लगे।[2]

कहा जाता है कि शिवानन्द सरस्वती को एक साधु ने एक आध्यात्मिक पुस्तक दी। उन्होंने इस पुस्तक को पूरा पढ़ा और इसका असर यह हुआ कि उनके मन में वैराग्य का भाव उदय हुआ। हालांकि इससे पहले वे श्री शंकराचार्य, स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद के साहित्य भी पढ़ा करते थे और नियमित पूजा-पाठ भी करते थे। लेकिन इस किताब को पढ़ने के बाद अचानक इनके मन में साधना का भाव उदय हो गया और वे 1922 में अपनी नौकरी छोड़कर मलाया से भारत वापस आ गए। घर पर अपना सामान रखा और घर के भीतर प्रवेश किए बिना ही तीर्थ स्थानों के भ्रमण पर निकल पड़े।[3]

तीर्थ भ्रमण करते हुए स्वामी शिवानन्द ऋषिकेश पहुंचे। यहां वे कैलाशाश्रम के महंत स्वामी विश्वानन्द सरस्वती से मिले और इनके शिष्य बन गए। स्वामी विश्वानन्द ने इन्हें सन्यास की दीक्षा दी और इस तरह कुप्पु स्वामी का नाम बदलकर स्वामी शिवानन्द सरस्वती रखा।

ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द ने कठिन आध्यात्मिक साधना की। वर्षा और धूप में बैठना, मौन धारण करना, व्रत करना और तपस्या जैसे

कई साधना करने लगे। सन् 1932 में उन्होने शिवानन्दाश्रम और 1936 में दिव्य जीवन संघ (Divine Life Society) संस्था की स्थापना की। आध्यात्म, दर्शन और योग पर उन्होने लगभग 300 पुस्तकों की रचना की। 14 जुलाई 1963 को स्वामी शिवानन्द सरस्वती ने महासमाधि ले ली।[4]

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के अनमोल सुविचार

- यदि मन को नियंत्रित किया जाता है, तो यह चमत्कार कर सकता है। यदि इसे वश में नहीं किया जाता है, तो यह अंतहीन दर्द और पीड़ा पैदा करता है।
- छोटे-छोटे कामों में भी दिल, दिमाग और आत्मा सब कुछ लगा दो यही सफलता का राज है।
- आज आप जो कुछ भी हैं वह सब आपकी सोच का परिणाम है, आप आपके विचारों से बने है।
- अपनी पिछली गलतियों और असफलताओं पर बिल्कुल भी न उलझे क्योंकि यह केवल आपके मन को दुःख, खेद और अवसाद से भर देगी, बस भविष्य में उन्हें दोहराएं नहीं।
- यह संसार तुम्हारा शरीर है। यह संसार एक महान विद्यालय है, यह संसार आपका मूक शिक्षक है।
- स्वामी शिवानंद सरस्वती; 8 सितंबर 1887- 14 जुलाई 1963 एक योग गुरु, एक हिंदू आध्यात्मिक शिक्षक और वेदांत के समर्थक थे। शिवानंद का जन्म तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के पट्टामदई में हुआ था और उनका नाम कुप्पुस्वामी था। उन्होंने चिकित्सा का अध्ययन किया और मठवासी धर्म अपनाने से पहले कई वर्षों तक ब्रिटिश मलाया में एक चिकित्सक के रूप में सेवा की ।[5]

वे 1936 में डिवाइन लाइफ सोसाइटी (डीएलएस) के संस्थापक, योग-वेदांत वन अकादमी (1948) के संस्थापक और योग, वेदांत और विभिन्न विषयों पर 200 से अधिक पुस्तकों के लेखक थे। उन्होंने ऋषिकेश से 3 किलोमीटर (1.9 मील) दूर मुनि की रेती में गंगा के तट पर डीएलएस का मुख्यालय शिवानंद आश्रम स्थापित किया और अपना अधिकांश जीवन वहीं बिताया। शिवानंद योग उनके शिष्य विष्णुदेवानंद द्वारा प्रचारित योग रूप, अब शिवानंद योग वेदांत केंद्रों के माध्यम से दुनिया के कई हिस्सों में फैल गया है। ये केंद्र शिवानंद के आश्रमों से संबद्ध नहीं हैं, जो दिव्य जीवन सोसायटी द्वारा संचालित हैं।

स्वामी शिवानंद का जन्म कुप्पुस्वामी के रूप में 8 सितंबर 1887 को एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका जन्म सुबह के शुरुआती घंटों में हुआ था जब तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले में ताम्रपर्णी नदी के तट पर पट्टामदई गाँव में भरणी तारा उदय हो रहा था। उनके पिता श्री पीएस वेंगु अय्यर एक राजस्व अधिकारी के रूप में काम करते थे और स्वयं एक महान शिव भक्त (भक्ति) थे। उनकी माँ श्रीमती पार्वती अम्मल धार्मिक थीं। कुप्पुस्वामी अपने माता-पिता की तीसरी और आखिरी संतान थे।

बचपन में वे पढ़ाई और जिमनास्टिक में बहुत सक्रिय और होनहार थे। उन्होंने तंजौर में मेडिकल स्कूल में पढ़ाई की, जहाँ उन्होंने उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। इस दौरान उन्होंने एम्ब्रोसिया नामक एक मेडिकल जर्नल चलाया। स्नातक होने के बाद, उन्होंने चिकित्सा का अभ्यास किया और दस साल तक ब्रिटिश मलाया में एक डॉक्टर के रूप में काम किया, जहाँ गरीब रोगियों को मुफ्त उपचार प्रदान करने की प्रतिष्ठा थी। समय के साथ, डॉ. कुप्पुस्वामी में यह भावना विकसित हुई कि चिकित्सा सतही स्तर पर ही उपचार कर रही है, जिससे उन्हें इस कमी को पूरा करने के

लिए कहीं और देखने का आग्रह किया गया और 1923 में वे मलाया छोड़कर अपनी आध्यात्मिक खोज को आगे बढ़ाने के लिए भारत लौट आए।

1924 में भारत लौटने पर वे ऋषिकेश गए जहाँ उनकी मुलाक़ात उनके गुरु विश्वानंद सरस्वती से हुई, जिन्होंने उन्हें संन्यास की दीक्षा दी और उन्हें अपना मठवासी नाम दिया। पूरा समारोह श्री कैलास आश्रम के महंत (मठाधीश) विष्णुदेवानंद ने करवाया था। शिवानंद ऋषिकेश में बस गए और गहन आध्यात्मिक साधना में डूब गए। शिवानंद ने कई वर्षों तक तपस्या की और बीमारों की सेवा करना जारी रखा। 1927 में, एक बीमा पॉलिसी से मिले कुछ पैसों से उन्होंने लक्ष्मण झूला में एक धर्मार्थ औषधालय चलाया।

दिव्य जीवन सोसाइटी की स्थापना-

शिवानंद ने 1936 में गंगा नदी के तट पर दिव्य जीवन सोसाइटी की स्थापना की, जो मुफ्त में आध्यात्मिक साहित्य वितरित करती थी।[6] शुरुआती शिष्यों में सत्यानंद योग के संस्थापक सत्यानंद सरस्वती शामिल थे। 1945 में उन्होंने शिवानंद आयुर्वेदिक फार्मेसी बनाई और अखिल विश्व धर्म महासंघ का आयोजन किया।[7] उन्होंने 1947 में अखिल विश्व साधु महासंघ और 1948 में योग-वेदांत वन अकादमी की स्थापना की।[8] उन्होंने हिंदू धर्म के चार योगों (कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, राज योग) को मिलाकर अपने योग को संश्लेषण का योग कहा, क्रमशः क्रिया, भक्ति, ज्ञान और ध्यान के लिए।[9]

शिवानंद ने 1950 में एक बड़े दौरे पर व्यापक यात्रा की और पूरे भारत में दिव्य जीवन सोसायटी की शाखाएँ स्थापित कीं। उन्होंने योग के अपने दृष्टिकोण को जोरदार तरीके से प्रचारित और प्रसारित किया।[10] उनके बेल्जियम के भक्त आंद्रे वान लिसेबेथ ने लिखा कि उनके

आलोचकों ने "उनके प्रसार के आधुनिक तरीकों और आम जनता के बीच इतने बड़े पैमाने पर योग के प्रचार-प्रसार दोनों को अस्वीकार कर दिया", उन्होंने समझाया कि शिवानंद एक ऐसे अभ्यास की वकालत कर रहे थे जिसे हर कोई कर सकता था, जिसमें "कुछ आसन, थोड़ा प्राणायाम, थोड़ा ध्यान और भक्ति; ठीक है, थोड़ा सब कुछ" शामिल था।[11] शिवानंद ने नैतिक और आध्यात्मिक कारणों से सख्त लैक्टो-शाकाहारी आहार पर जोर दिया, यह तर्क देते हुए कि "मांस खाना स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक है"।[12] इस प्रकार डिवाइन लाइफ सोसाइटी शाकाहारी आहार की वकालत करती है।[13]

शिवानंद के दो मुख्य कार्यकारी संगठनात्मक शिष्य चिदानंद सरस्वती और कृष्णानंद सरस्वती थे।[14] चिदानंद सरस्वती को 1963 में शिवानंद ने डीएलएस का अध्यक्ष नियुक्त किया था और 2008 में अपनी मृत्यु तक इस पद पर कार्यरत रहे। कृष्णानंद सरस्वती को 1958 में शिवानंद ने महासचिव नियुक्त किया था और 2001 में अपनी मृत्यु तक इस पद पर कार्यरत रहे।[15]

जिन शिष्यों ने आगे चलकर नए संगठन विकसित किए उनमें शामिल हैं:

- चिन्मयानंद सरस्वती, चिन्मय मिशन के संस्थापक।
- ज्योतिर्मयानंद सरस्वती, योग रिसर्च फाउंडेशन के संस्थापक, मियामी, फ्लोरिडा, अमेरिका।[16]
- करुणानंद सरस्वती, टैमवर्थ, न्यू साउथ वेल्स, ऑस्ट्रेलिया के उत्तर में मूनबी पर्वतमाला में द वैली ऑफ पीस योग आश्रम के संस्थापक।
- सहजानंद सरस्वती, दक्षिण अफ्रीका के डिवाइन लाइफ सोसाइटी के आध्यात्मिक प्रमुख।

- सच्चिदानंद सरस्वती, इंटीग्रल योग संस्थानों के संस्थापक, दुनिया भर में। [17]
- सत्यानंद सरस्वती, बिहार योग विद्यालय के संस्थापक।[18]
- शांतानन्द सरस्वती, टेम्पल ऑफ फाइन आर्ट्स (मलेशिया और सिंगापुर) के संस्थापक।
- शिवानंद राधा सरस्वती, यशोधरा आश्रम, ब्रिटिश कोलंबिया, कनाडा के संस्थापक।
- वेंकटेशानंद सरस्वती, दक्षिण अफ्रीका में आनंद कुटीर आश्रम और ऑस्ट्रेलिया के फ्रेमैंटल में शिवानंद आश्रम के प्रेरक।
- विष्णुदेवानंद सरस्वती, शिवानंद योग वेदांत केंद्र के संस्थापक, मुख्यालय कनाडा।[19]

निष्कर्ष: अंत में कहा जा सकता है कि स्वामी शिवानंद सरस्वती भारत के प्रमुख योगिओं में से एक है, जिन्हे हम में से बहुत ही कम लोग जानते है, उन्होने योग पर बहुत सी पुस्तके लिखी है और अपना पूरा जीवन उन्होने योग करते हुए व्यतीत कर दिया। इस शोध-पत्र को लिखने का मेरा उद्देश्य यही है कि लोग स्वामी शिवानंद सरस्वती के बारे में जाने। उनकी कृतियों को जाने और पढ़ें। स्वामी शिवानंद सरस्वती की एक लंबी शिष्य परंपरा भी है। शिवानंद योगी एक महान विचारक और समाज सेवी भी थे। उनकी पुस्तकें उनके शिष्यों द्वारा बिना किसी खर्च के लोगों तक पहुचाया जाता है। बहुत कुछ सीखा जा सकता है शिवानंद सरस्वती की पुस्तकों को पढ़कर।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. अनंतनारायण, श्री एन. (1965), मैं सेवा करने के लिए जीता हूँ- एक वादा और एक पूर्ति (पीडीएफ), शिवानंदनगर, टिहरी-गढ़वाल, यूए इंडिया: डिवाइन लाइफ

सोसाइटी। गुरुदेव शिवानंद के अंतिम दिनों की अंतरंग झलकियाँ- कैसे पवित्र गुरु ने अंत तक निरंतर सेवा का जीवन जिया।

2. चेतन, महेश (5 मार्च 2017), "भारत के 10 सबसे प्रेरक योग गुरु"। भारतीय योग संघ। 16 अगस्त 2021 को लिया गया।

3. डिवाइन लाइफ सोसाइटी ब्रिटानिका.कॉम।

4. मैककेन, लिसे (1996), दिव्य उद्यम: गुरु और हिंदू राष्ट्रवादी आंदोलन, शिकागो: शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, पीपी, 164-165, आईएसबीएन 978-0-226-56009-0 ओसीएलसी 32859823

5. मॉरिस, ब्रायन (2006), धर्म और नृविज्ञान: एक महत्वपूर्ण परिचय, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पी. 144, आईएसबीएन 978-0-521-85241-8 ओसीएलसी 252536951

6. परम पूज्य श्री स्वामी शिवानंद सरस्वती महाराज", डिवाइन लाइफ सोसाइटी, 16 जनवरी 2022 को लिया गया

7. डिवाइन लाइफ सोसाइटी, 2011, 25 अगस्त 2019 लिया गया

8. "स्वामी शिवानंद", योग पत्रिका (अंक 18), 25 अगस्त 2019 को लिया गया

9. शिवानंद (29 मई 2017), "संश्लेषण का योग"

10. गोल्डबर्ग, इलियट (2016), आधुनिक योग का मार्ग: एक मूर्त आध्यात्मिक अभ्यास का इतिहास, रोचेस्टर, वर्मोंट:इनर ट्रेडिशन, पीपी. 326-335, आईएसबीएन 978-1-62055-567-5 ओसीएलसी 926062252

11. वैन लिसेबेथ, आंद्रे (1981), "द योगिक डायनमो", योग (सितंबर 1981)

12. रोसेन स्टीवन, (2011), आत्मा के लिए भोजन: शाकाहार और योग परंपराएँ , प्रेगर. पी. 22. आईएसबीएन 978-0313397035

13. मैकगोनिगल, एंड्रयू; ह्यू, मैथ्यू, (2022), योग का फिजियोलॉजी, ह्यूमन काइनेटिक्स, पी. 169. आईएसबीएन 978-1492599838

14. "मांस खाने वाला", sivanandaonline.org. 22 जनवरी 2023 को लिया गया

15. "शाकाहारवाद", dlshq.org. 22 जनवरी 2023 को पुनः प्राप्त

16. "परम पूज्य श्री स्वामी ज्योतिर्मयानंद सरस्वती महाराज- द डिवाइन लाइफ सोसाइटी", 3 जून 2024 को लिया गया

17. मार्टिन, डगलस (21 अगस्त 2002), द न्यूयॉर्क टाइम्स

18. मेल्टन, जे. गॉर्डन (2010), "इंटरनेशनल योग फ़ेलोशिप मूवमेंट", मेल्टन, जे. गॉर्डन में; बाउमन, मार्टिन (संपादक), विश्व के धर्म: विश्वासों और प्रथाओं का एक व्यापक विश्वकोश, खंड 4 (दूसरा संस्करण), एबीसी-क्लियो पृष्ठ 1483, आईएसबीएन 978-1-59884-204-3

19. कृष्णा, गोपाला (1995), द योगी: पोर्ट्रेट्स ऑफ़ स्वामी विष्णु-देवानंद, यस इंटरनेशनल पब्लिशर्स. पीपी. 15-17, आईएसबीएन 978-0-936663-12-8

----o----

विशिष्टयोगीश्यामाचरणलाहिरीमहाभागानां क्रियायोगसाधना

सुफलमोदकः (अनुसन्धाता)
सीतारामवैदिकादर्शसंस्कृतमहाविद्यालयः

साङ्केतिकशब्दाः - श्यामाचरणलहिरी, क्रियायोगः, समाधिः, प्राणायामः

भारतीयज्ञानपरम्परा जगति सुप्राचीना प्रसिद्धाश्च अस्ति। तस्यामेव परम्परायां योगमार्गस्य महती भूमिका वर्तते। पातञ्जलयोगसूत्रे कैवल्यादि चतुष्पादेषु तस्यैव अनुशासनम् **"योगानुशासनम्"** इत्युच्यते। चित्तवृत्तीनां निरोधाय, परमपुरुषस्य चरणारविन्दयोर्प्राप्तये साधनाभूतयोगस्य आवश्यकता नूनमेव अस्ति। भारतीययोगस्य आचार्यपरम्परायां श्यामाचरणपादाः प्रमुखाः आसन्। वङ्गदेशस्य नदीयामण्डलान्तर्गते घुर्णीग्रामे ब्राह्मणकुले गौरमोहनात्मजाः देवशिशुकल्पाः एते योगीपुरुषाः जन्मिमलभन्। आशैशवात् एव गुरुचरणानां शास्त्रपाठे, धर्माचरणे मतिरासन्। वेदपठनम्, पूजनम्, गीतासम्भाषणम्, आकण्ठगङ्गायां धान्ययोगम् एतेषां नित्यकर्म आसन्। केवलं पञ्चमवयसि काश्यां निवासकाले गुरुपादाः भारतीयशास्त्रम् विहाय नैके वैदेशिकभाषाः अधीतवान्। १८४६ ख्रिस्टाव्दे श्रीमतिकाशीमनिदेव्या सह तस्य विवाहः अभूत्। अचिरेण तस्यैव साहचर्येण योगशिक्षां प्रदाय समाजे सा गुरुमातारूपेण परिचिता आसन्। ब्रिटिशसर्वकारस्य सामरिकविभागस्य व्यायरक्षकत्वेन श्यामाचरणपादाः समग्रं भारतवर्षं दृष्टवन्तः। १८३१ ख्रिस्टाव्दे हिमालयस्य पाददेशे रानिक्षेत्रे तस्य सक्रियक्रियायोगस्य दीक्षा अभूत्। महावतारवावाजीमहाराजस्य मार्गदर्शनेन अतीन्द्रिययोगस्य क्रियात्मकविद्यां गुरूचरणाः सूक्ष्मतया उपलब्धवन्तः। पश्चात् गुरोपदेशेन समग्रजीवनं अखण्डभारतस्य योगशिक्षाप्रदाने अतिवाहितः। अवसरजीवने राजा-संन्यासी-भारवाहक-गृहस्थ-निम्नवर्गान्निर्विशेषेण योगशिक्षां प्रदत्तवान्। एतेषां सान्निध्ये

युक्तेश्वरगिरिमहाराजः, पञ्चाननभट्टाचार्यः, प्रणवानन्दः, केशवानन्दब्रह्मचारी, भूपेन्द्रनाथसान्यालः प्रभृतयः मुख्यभूताः आसन्। वाराणस्यां भास्करानन्दसरस्वती, देयोगडस्य वालानन्दब्रह्मचारी, तत्रत्यः महाराजईश्वरीनारायणसिंहचरणापि श्यामाचरणपादानां शिष्यत्वेन प्रसिद्धम् आसन्।

"क्रियायोगः" इत्यत्र **युज् समाधौ (धातुपाठे) घञ्** प्रत्ययेन योगशब्दः निष्पद्यते। योगस्यार्थः संयोजनम् सम्बन्धस्थापनम् चेति। सम्वन्धं नाम प्राणायामेन षड्चक्राणां मुद्राविशेषेण (इन्द्रियाणां प्रवृत्तिः) एकाग्रस्थितिः। कुण्डलिनीविद्यायाः प्रकारविशेषः अस्ति क्रियायोगः। श्रीमद्भगवद्गीतायाम् अस्ति-

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीः अपरिग्रहः।।[1]

अर्थात् योगी सततं आत्मचित्तं निरन्तरं युञ्जीत क्षिप्तमूढ़विक्षिप्तभूमिपरित्यागेनैकाग्रनिरोधभूमिभ्यां समाहितं कुर्यात् रहसि गिरिगुहादौ योगः, तथा प्रतिबन्धकदुर्जनादिवर्जितदेशे स्थितः एकाकी त्यक्तसर्वगृहपरिजनः सन्यासी चित्तमनः करुणामात्मादेहश्च संयतौ योगप्रतिबन्धकव्यापारश्युनौ यस्य स चितात्मा, शास्त्राभ्यनुज्ञाते नापि योगप्रतिबन्धकेन परिग्रहेण श्युन्यः भवति। पतञ्जलिः योगभाष्ये मनुष्याणां चित्तवृत्तेः क्षिप्तावस्थापञ्चकानां वर्णयन् तत्र एकाग्रतया समाधौ स्थितस्य जीवात्मापरमात्मनयोः मेलनं एव योगस्य प्राप्तफलमिति वर्णितम्। तत्रैव अष्टांगयोगमार्गे यमनियमादि साधनभूतानां सोपानानां निरन्तरम् अभ्यासः करणीयः। आसने उपविश्य योगी सततं ईश्वरप्रणिधानेन श्वासप्रश्वासादि शारीरिकचेष्टापूर्वकम् इन्द्रियसंयम्य सक्रियक्रियायोगस्य अनुशीलनम् आचरेत्। क्रियायोगस्य मूलभूतसाधनायां तत्र **"क्रिया"** इति प्रक्रियाविशेषः, पुनश्च तदङ्गीभूतसाधकः **क्रियावानपुरुषः** इत्युच्यते। लहिरीपादनये क्रिया तु

---

[1] ध्यानयोगः ४/१०

सम्पूर्णा भिन्ना काचित् विद्या। तत्तु सत्यक्रेतदि युगान्तेरेषु विलुप्तम् जातम् ,पुनश्च परापराविद्यारूपेण उपनिषद्षु वर्णितम् अस्ति-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूयः इव ते य उ विद्यायां रताः।।[1]

अव्याकृतस्य परब्रह्मणः एव परमात्मनः प्रकाशः, तस्मात् स्थूलभूतजगतः विसृष्टिः। परमहंसयोगानन्दपादाः अमेरिकादेशात् समागत्य "Biography of a Yogi" इति पुस्तके भारतीययोगीपुरुषाणां विषये सम्यक् व्याख्यानं कृतवन्तः। तत्र ॐकारब्रह्मणः साक्षात्भूतत्वेन तत्र क्रियायोगस्य महती भूमिका वर्तते। योगभाष्यस्य साधनपादेऽस्ति- **"तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"**। योगीचरणनये तु विद्याबिद्ययोर्मध्ये सदसदरूपेण ब्रह्मणः प्रकाशभूतं जगत् दृश्यमानं भवति। परन्तु आत्मनः परिशुद्धये सक्रियक्रिया योगेन **जडशुद्धिः, भूतशुद्धिः, नाडीशुद्धिः** इत्यादीनां सोपानभूतानां देहयन्त्रिनां ब्रह्मभावप्राप्तये आवश्यकगुणाः इत्युपपद्यते। लहिरीचरणनये क्रियास्तु १०८ प्रकारभूताः सन्ति। तेषु सोपानेषु क्रियायोगस्य मूलत्वत्तं निहितमस्ति।

"महामुद्रा"३ नाम तन्त्रशास्त्रस्य अङ्गीभूतः मुद्राविशेषः। अनया मुद्रया शरीरस्थानस्य पादस्थित स्नायुपेशीनाञ्च सञ्चालनं, पुनश्च अस्थिग्रन्थिनां शिथिलता जायते। वातकर्मादिनां निरसनाय मुद्रायोगस्य अनुष्ठानः विधेयः। पातञ्जलदर्शने यम-नियम-आसनादि अष्टांगयोग माध्यमेन समाधियोगं समुद्दिश्य तत्र आत्महितये इन्द्रियादिनां निरोधपूर्वकं एकाग्रध्यानवस्थानं एव यज्ञादौ अग्निहवनक्रियारूपेण वर्णितम् अस्ति। तथा गीतामृतेऽस्ति-

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।

आत्मसंयोगयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।।[2]

---

[1] इशोपनिषद्- ९

[2] गीता, ४/२७

तदेवं पातञ्जलमतानुसारेण लयपूर्वकसमाधिं ततो च यज्ञद्वयमुक्त्वा ब्रह्मवादि मतानुसारेण वाधपूर्वकं समाधिं कारणोच्छेदेन व्युत्थानश्युन्यं सर्वफलभूतं समाधिर्भवति **लयपूर्वको, वाधपूर्वकश्च**। तत्र **"तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः"**५ न्यायेन कारणव्यतिरेकेण कार्यसत्वात् पञ्चीकृतपञ्चभूतकार्यं व्याष्टिरूपं समष्टिरूपविराड्कार्यत्वात् द्व्यातिरेकेण नास्ति। तथा समष्टिरूपमपि पञ्चीकृतपञ्च भूतात्मकं कार्यम् पञ्चीकृतमहाभूतकार्यत्वात् व्यातिरेकेण नास्ति। तत्रापि पृथिवी शब्दस्पर्श रूपरसगन्ध्याख्यपञ्चगुणाः गन्धेतर चतुर्गुणापकार्यत्वात् व्यतिरेकेण नास्ति। एवञ्च आपो गन्धरसेतर त्रिगुणात्मकतेजः कार्यत्वात् व्यातिरेकेण न सन्ति। शब्दगुणात्मकाशादौ तथैव। तदपि मायाख्यं कारणं जडत्वेन चैतन्येऽध्यस्तत्वात्तद्व्यतिरेकेण नास्तीत्यनुसंधानेन विद्यमानेपि कार्यकरणात्मके प्रपञ्चे चैतन्यमात्रगोचरो यः समाधिः **सलयपूर्वकम्**, पुनश्च त्वत्त्मसि महावाक्यादि वाक्यादिसाक्षात्कारेण विद्याया निवृत्तौ सर्गक्रमेण तत्कार्यनिवृत्ते रनाद्यविद्यायाश्च पुनरुत्त्था नाभावेन तत्कार्यस्यापि पुनरुत्त्थानाभावान्निवीजो **वाधपूर्वकः** समाधिः। एवञ्च प्राणकर्माणि च प्राणानां प्राणाव्यानोदानसमानाख्यानां पञ्चानां कर्माणि बहिर्नयन मधोनयनमाकुप्रसारणादि अशितपीतसमनयनम्मूर्ध्वनयनमित्यादीनि पञ्चज्ञानेन्द्रयाणि, पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चप्राणाः, मनो, बुद्धिश्चेति सप्तदशात्मकं लिङ्गंमुक्तम्। क्षिप्तमूढविक्षिप्तम् भूमित्रयं तत् संस्काराः समाधिविरोधिनस्ते योगिना प्रयत्नेन प्रतिदिनं प्रतिक्षणं चाभिभूयन्ते।

योगसूत्रे पतञ्जलिना क्रियायोगस्य भागत्रयं वर्णितम्, यथा- तापस-स्वाध्याय-प्राणायामश्चेति। साधनपादेऽस्ति- **"तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः**६"(**योगसूत्रम्** २/४९) अर्थात् युक्तासनम् भूत्वा एकाग्रतया वाह्यान्तकुम्भकयोर्मध्ये (गृहीतश्वास-निसृतप्रश्वासयोः व्यावधानम्) दीर्घविरामपूर्वकम् स्थितिस्तथा आध्यात्मिकचेतनायाः अग्रगतिः। योगीचरणनये ईश्वरप्राप्तिरेव मानवजीवनस्य मूलम्। तस्मात् नियमपूर्वकम् योगसाधनया अस्थिमज्जादिसर्वस्वं शरीरं

विहाय व्योमयानमारुह्य निरवच्छिन्नतया साधनेन जीवात्मनः परमप्राप्तिर्भवति। तत्तु गुरुशिष्यपरम्परया सिद्धति। तेषान्नये मनुष्याः खलु परमात्मनः स्थुलप्रकाशभूतं जरशरीरमेव।

गुरुपरम्परा	वंशतालिका
महवतारवावाजि	पुर्वपुरुषः
श्यामाचरणलहिरी	राधावल्लभलाहिरी
युक्तेश्वरगिरिराजः	शिवचरण
परमहंसयोगानन्दः	राममोहन,गोरमोहन,जगमोहन

इत्यादयः

सत्यानन्दगिरिः

चन्द्रकान्त,सारदाप्रसाद,श्यामाचरण,सुलक्षणा

तत्र भगवद्गीतायाम् उच्यते-

"अपाने जुह्वति प्राणांपानं तथापरे।

प्राणापानगतो रुद्धा प्राणायाम परायणः"।।[1]

प्राणेऽपानम् तथाऽपरे जुह्वति शारीरिकवायो: निर्गमनेन रेचकाख्यां प्राणायामं कुवन्तीत्यर्थः। पूरकरेचककथनेन च तद्विनाभूतौ द्विविधः कुम्भकोऽपि कथित एव। यथाशक्ति वायुमापूर्यानन्तरं श्वासप्रश्वासनिरोधः क्रियमाणेऽन्तकुम्भकः, यथाशक्ति सर्ववायुविरेच्यानन्तरं क्रियमाणो वहि: कुम्भक: एवञ्च प्राणापानगती मुखनासिकाभ्यामान्तरस्य वायोर्वहिर्निर्गमः श्वास: प्राणस्य गतिः, बहिर्निर्गतस्यान्त: प्रवेश: प्रश्वासोऽपानस्य गतिः। तत्तु आहारनियमादियोगसाधनविशिष्टा: नियताहाराः विलापयन्तीत्यर्थः।

पुनश्च कीदृशः इति? श्वासप्रश्वासगतिविच्छेदलक्ष्मण श्वासप्रश्वासयोः प्राणापानधर्मयोर्गतिः पुरुषप्रयत्नमन्तरेण स्वाभाविकप्रवहणं क्रमेण युगपच्च पुरुषप्रयत्नविशेषेण तस्या विच्छेदो निरोध एव लक्षणं स्वरूपं यस्य स

---

[1] भगवद्गीतायाम्, ७. ४/२९

तथेति। यथा- **“वाह्याभ्य न्तरस्त्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः”**।८ यथा घनीभूतस्थूलपिण्ड: प्रसार्यमाणो विरलतया दीर्घः सुक्ष्मश्च भवति तथा प्राणोपिदेशकालसंख्याधिक्यक्येनाभ्यस्यमानो दीर्घो दुर्लक्ष्यतया सुक्ष्मोऽपि सम्पद्यते। तथाहि हृदयन्निर्गत्य नासाग्रसंमुख्ये द्वादशाङ्गुलपर्येन्ते देशे श्वास: आप्नोति। तदेव परावृत्य हृदयपर्यन्तं प्रवेशनम् इति प्राणपानर्योर्गतिः। केवलमभ्यासेन तु क्रमेण नाभेराधारद्वारा निर्गच्छति। स्वजानुमण्डलं पाणिना त्रि:परामृश्य छोटिकावच्छिन्न: कालो मात्रा। नाभिः षड्त्रिंशतमात्राभि: प्रथमोध्वातो मन्दः। स एव द्विगुणीकृतो द्वितीयो मध्यः। स त्रिगुणीकृत: इति तृतीयतीव्रः। नभिमुलात् प्रेरितस्त वायोः विरच्यमानस्य शिरसयस्या भिहननमुध्वात् इति प्रतीयते। सेयं कालपरीक्षा,यद्यपि कुम्भके देशर्व्याप्तिर्नावगम्यते तथापि कालसंख्याव्याप्तिरवगम्यत एव। स तु अभ्यासतया दिनपक्षमासदिक्रमेण देशकालप्रचयव्याप्तितया दीर्घः। परमनैपुण्यसमाधि गमनीयतया च सूक्ष्म इति निरूपितस्त्रिविध: प्राणायामः। सूत्रयति यथा- **“वाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः”**। तत्र शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-सङ्कल्प- विकल्पादि परित्यज्य प्राणवायो: अवरुध्वनम् प्राणायामस्य चतुर्थस्तम्भविशेषः।

तत्रैव योगस्य प्रसङ्गः। यस्मिन् अवस्थाविशेषे आत्यन्तिकमनन्तं निरतिशयं ब्रह्म स्वरूप मतीन्द्रियं विषये इन्द्रियादि संप्रयोगान भि व्याङ्गयं बुद्धिग्राह्यं बुद्यैव रजस्तम मलरहितया सत्वमात्रवाहिन्या ग्राह्यं सुखं योगी अनुभवति,तत्र ब्रह्मस्वरूपसुखं उपन्यस्तं भवति। तदुक्तं गौडपादै: " लीयते तु सुषुप्तौ तन्निगृहीतं न लीयते" ।तथा च श्रूयते **"समाधिनिर्धुतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्मुखं भवेत् , न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा यदेतदन्त: करणेन गृह्यते११"** इति अन्तःकरणेन निरुद्धसर्ववृत्ति केनेत्यर्थः। वृत्त्या तु सुखस्वादनं गौडाचार्यै: प्रतिषिध्वम्। निवृत्तिकेन तु चित्तेन स्वरूपसुखानुभवस्तै: प्रतिपादितः। **"स्वस्थं शान्तं सनिर्वाणमकथ्यं सुखमुत्तमम्"**१२ इति। स्पष्टं चैतदुपरिष्टात्करिष्यते। "मूलाधारचक्रे

पराभूतवाक् शब्दब्रम्भरूपेण विद्यते। तत्तु पुरुषाधिष्ठितं शब्दरूपं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम् अस्ति। परमलघुमन्जुषायाम् अस्ति-

पर वाङ् मूलचक्रस्थाः।

पश्यन्ती नाभिसंस्थिताः।।

हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया।

वैखरी कण्ठदेशगाः।।[1]

शब्दभूतं परावाक् ज्योतिरूपस्वरूपा संविद्रुपा स्वप्रकाशेति महाभारते लिखितमस्ति। मुलाधारस्थपवनसंस्कारीभूता मूलाधारस्था शब्दब्रह्मरूपा स्पन्दशून्या बिन्दुरूपिणी सेति नागेशेन प्रतिपादितम्। चैतन्याभासविशिष्टतया प्रकाशिका माया निष्पन्दा परावागिति स्फोटब्रह्म । सैव ब्रह्म कुण्डलिनीशक्त्यजागरितं भवति।१० योगीचरणानां स्वगतोक्ति:-

"The dazzling sun of the sky, whose brilliance has made this macrocosm radiant, that sun's form,fire,resplendence, heat are all Me.When there is nothing barring Me in this universe then along with the sun of the sky I only prevail amidst the total creation. Without My Immanence the resplendent sun of the sky will be absent, thus I have created and am maintaining the totality.

डॉ. अशोककुमारचट्टोपाध्याय: तस्य **"पुराणपुरुषः"** ग्रन्थे लाहिरीचरणानां २६ दैनन्दिनीमुदाहृत्य गुह्यसाधनात्वत्तम् विविधाषु भाषासु अनुदितवान्। तत्र शिष्यरूपेण सिरीडीसाईंपुरुषोत्तमस्यापि उल्लेखः अस्ति। गुरुचरणानां योगसिद्धान्ताः "आर्यमिशन institution" मध्ये तथा हिन्द्यां मुद्रितरूपेण उपलभ्यते। १८९५ खिस्टाब्दे सेप्टेम्बरमासस्य २६ दिनाङ्के एते योगीपुरुषाः समाधिर्भूत्वा स्वेच्छया दिव्यलोकं प्राप्तवान्।

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवजं विभुम्।।[2]

---

[1] परमलघुमन्जुषायाम् ९

[2] गीता २०/१२

संदर्भाः-

१ ध्यानयोगः, ४/१०

२ इशोपनिषद्, ९

३ पुराणपुरुषः

४ गीता, ४/२७

५ पुराणपुरुषः

६ योगसूत्रम्, २/४९

७ गीता, ४/२९

८ योगसूत्रम्

९ परमलघुमन्जुषा

१० गुढार्थदीपिका

११ गौडपादभाष्यम्

१२योगभाष्यम्

---०---

आधुनिकससंस्कृतसाहित्ये पण्डितमूर्धन्य सीतानाथाचार्यस्य अवदानम्

सुमना साँतरा, शोधार्थिणी
भाषाभवनम्, गुजरातविश्वविद्यालयः

शोधसारः

संस्कृतेर्मानवीयाया लग्ने पुण्यतमे पुरा।
कवेमानसजन्मासि कविते विश्ववन्दिते॥

आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य विश्ववन्दितकविः सीतानाथाचार्यः १९३९ क्रेस्ताव्दे डिसेम्वरमासस्य प्रथमदिवसे पश्चिमवङ्गे मेदिनीपुरमण्डलान्तर्गतं रासनग्रामभूवं स्वजनुषा पावितवान्। तस्य पितासीत् प्रख्यातसंस्कृतपण्डितः जयनारायणाचार्यः माता च स्वर्णकुमारी देवी। आवाल्यात् आचार्यः सीतानाथः संस्कृतानुरागी आसीत्। वाल्ये एव काव्यव्याकरणन्यायादिशास्त्रेषु व्युत्पत्तिं प्राप्तवान्। संस्कृत-आङ्गल-वङ्गभाषासु शताधिकप्रवन्धानां प्रणेता, विविधगीतिकाव्य-शोककाव्य-वन्दना-स्तोत्रानूदितकाव्यानां रचयिता सीतानाथाचार्यो महोदयः संस्कृतसाहित्यस्य भाण्डागारं प्रतिदिनं पूरयति। अस्य रचनासंसारः एवमस्ति-

काव्यानि- भावविलसितम्, शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्, का त्वं शुभे, काव्यनिर्झरी, गौरीनाथचरितम्।

सम्पादितग्रन्थाः- दशरूपकम्, उत्तररामचरितम्, विकमोर्वशीयम्, मुद्राराक्षसम्।

पत्रिका- जाह्नवी

अनूदितग्रन्थः- व्रह्माण्डपुराणम्।

आङ्गल १९६६ ख्रीः कलिकातास्थ संस्कृतमहाविद्यालयात् आचार्यमहोदयः साम्मानिक-स्नातकोऽभवत्। आङ्गल १९६८ ख्रीः

कलिकाताविश्वविद्यालयात् प्रभमश्रेण्या सह M.A. परीक्षायामुत्तीर्णमभवत्।ईशवीय १९८३ ख्रीः “भारवि-माघ-कृतकाव्ययोः समीक्षा “इति विषये यादवपुरविशद्यालयात् Ph.D. नामकोपाधिम् लव्धवान्। इदमन्तरेण महानयं पण्डितः व्याकरणतीर्थ, न्यायतीर्थ, तर्कतीर्थ प्रभृतीन् उपाधिम् प्राप्तवान्। तत्र भवान् आचार्यमहोदयः आङ्गल १९६९ ख्रीः तस्य कर्मजीवनं वाजकुल मिलनी महाविद्यालये संस्कृत-लेकचाराररूपेण सूचनामकरोत्। आङ्गल १९८१ ख्रीः स कलिकाताविश्वविद्यालये अध्यापकपदमलङ्कृतवान्। ईशवीय १९९८ ख्रीः महानयं अध्यापकः कलिकाताविश्वविद्यालयस्य गोपीनाथकविराज इति चेयारप्रफेसर पदमलङ्कृतवान्। आमरणात् सः नानाविधशिक्षाक्षेत्रे विद्यां वितरति स्म। तस्य लिखितस्य नानाविधविषयात् कतिपयं लघुरूपेण अस्मिन् शोधपत्रे उपस्थापितं मया।

भूमिका

‘संस्कृतं नाम देवी वाक् अन्वाख्याता महर्षिभिः’ काव्यादर्शे दण्डिनः वचनमिदं प्रमाणीकरोति यत् इयं भाषा न सामान्या भाषा। देवानामृषीणाञ्च भाषा। ततः लब्धवन्तः मानवाः। अस्यां भाषायां प्रथमं यच्च वर्णनक्रमरूपं विद्यते तद्भवति वेदराशिरूपम्। प्रोक्तञ्च मनुना वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।वेदात् सर्वं निर्बभौ इत्यादि। ततः आरभ्य नाना शास्त्राणि, स्मृतयः, नाटकानि, महाकाव्यानि काव्यानि ललितकाव्यानि च रचितानि। परिवर्तक्रमे यथायथं लोके नवीनानां प्रयोगः तथा तथा तेषां वस्तूनामप्युपयोगो दृश्यते। तस्मिन्नेव क्रमे प्रारम्भकालः वैदिककालः, द्वितीयतश्च मध्यकालः, तृतीयश्च आधुनिककाल इति विभाजनं सामान्येन प्राप्यते। तत्र आधुनिकत्वं कीदृशं विवक्षितमिति जिज्ञासायां नाना मतानि सन्ति। स्वातन्त्र्यपूर्वकालः, स्वातन्त्र्योत्तरकालश्च। संस्कृतसाहित्यस्य स्वरूपे निर्माणविकासस्योपरि च भारतीयत्त्वज्ञानस्य विशेषः प्रभावः दृग्गोचरी भवति। विषयेऽस्मिन् जगन्नाथपाठकः लिखति यत्-

संस्कृतसाहित्यस्येतिहासस्याधुनिकः कालः कस्मात् कालविशेषादारब्ध इति प्रश्नः। आधुनिकेषु विचारकेष्वस्मिन् विषये निश्चयेन यः कश्चन मतभेदः संलक्ष्यते। अथ च किन्तावदाधुनिकत्वं संस्कृतसाहित्यस्य, इत्यापिविचारणीयः प्रश्नः। यद् विगतं तत् प्राचीनम्, यच्च प्रवर्तमानम् तदाधुनिकमितीदृग् विचार आधुनिकत्वस्य निर्भयास्त्रिषु नैव मान्यः। कालिदासेनापि स्वपूर्ववर्तिकाव्यपुराणमिति तदपेक्षया स्वकाव्यं नवमिति अभिहितम्। किन्तु नाधारः साहित्येतिहासस्य सन्दर्भे व्यवहार्य इति प्रतीयते।

पश्चिमवङ्गमध्यस्थे मेदिनीपुरमण्डले।
कृष्णात्रेयसगोत्रे च विद्याचर्चासमुज्वले॥
आचार्य्योपपदे वंशे सुधीभिर्वन्दितेऽमले।
ख्यातिमान् पण्डितो जातो जयनारायणाभिधः॥
गुणाकरेत्येव गुरुप्रदत्तां संज्ञां महार्घैः स्वगुणैर्महात्मा।
ब्राह्मण्यवैदुष्यकवित्वमुख्यैश्चकार साफल्ययुतां सुधी सः॥

आचार्यः सीतानाथः १९३९ क्रैस्ताव्दे डिसेम्वरमासस्य प्रथमदिवसे पश्चिमवङ्गे मेदिनीपुरमण्डलान्तर्गतं रासनग्रामभूवं स्वजनुषा पावितवान्।संस्कृतपण्डित आसीत् पिता जयनारायणाचार्यः। माता च स्वर्णकुमारी देवी। आ बाल्यात् सीतानाथः संस्कृतानुरागी आसीत्। बाल्ये एव काव्यव्याकरणन्यायादिशास्त्रेषु व्युत्पत्तिं प्राप्तवान्। अन्ततो गत्वा कलिकातासंस्कृतमहाविद्यालयतः वी.ए.- परीक्षायामुत्तीर्य कलिकाताविश्वविद्यालयतः ससम्मानं प्रथमश्रेण्याम् एम्. ए.-परीक्षापि तेनोत्तीर्णा। अनन्तरं विविधशास्त्रेषु लब्धप्रतिष्ठः स संस्कृतमहाविद्यालयेन 'शास्त्री'त्युपाधिना भूषितः।न केवलमेतदेव अपि तु 'सारस्वतरत्नम्' ईत्युपाधिनापि स सम्मानितो जातः।

एतेन 'भारविमाघकृतकाव्ययोः समीक्षा'इति विषयमवलम्ब्य यादवपुरविश्वविद्यालयतः १९८३ क्रैस्ताव्दे मेदिनीपुरस्य

वाजकुलमिलनीमहाविद्यालयेऽध्यापकपदेन सह एतस्य कर्मजीवनमारब्धम्। ततः परं कलिकाताविश्वविद्यालये पाठनसमये 'रीडार' तथा गोपीनाथकविराजाध्यापकपदमपि एतेनालङ्कृतम्। न केवलमेतदेव, अपि तु वर्षद्वयमेष विद्यासागरविश्वविद्यालये अतिथ्यध्यापकरूपेण नियुक्त आसीत्। इदानीन्तनकाले अयं पश्चिमवङ्गराज्यविश्वविद्यालये तथा गोलपार्करामकृष्णमिशनस्य 'Indological Studies and Research' विभागेऽतिथ्यध्यापकरूपेण नियुक्तोऽस्ति।

आधुनिकससंस्कृतसाहित्ये पण्डितमूर्धन्य सीतानाथाचार्यस्य अवदानम्

संस्कृत-आङ्गल-वङ्गभाषासु शताधिकप्रबन्धानां रचयिता आचार्यो महोदयः संस्कृतसाहित्यस्य भाण्डागारं प्रतिदिनं पूरयति।अस्य रचनासंसार एवमस्ति-

●**काव्यानि**-१.भावविलसितम्, २.शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्,३.का त्वं शुभे, ४.काव्यनिर्झरी,५.गौरीनाथचरितम्।

●**सम्पादितग्रन्थाः पत्रिकाश्च**- १.दशरूपकम्, २.उत्तररामचरितम्, ३.विक्रमोर्वशीयम्, ४.मुद्राराक्षसम्, ५.जाह्नवी (पत्रिका)

●**अनूदितग्रन्थः**–१. ब्रह्माण्डपुराणम्।

न केवलमेतदेव अपि तु, नैकानि संस्मरणानि वन्दनानि चास्य विलसन्ति। यथा–वाणीवन्दना, ईश्वरचन्द्र-विद्यासागरप्रशास्तिः, रवीन्द्रप्रशास्तिः, शास्त्रिस्मरणम्,सज्जनसम्पूजनम्, सम्बर्धनाज्ञापनकाव्यम्, नवागतविद्यार्थिवरणकाव्यम्, विजयाशुभेच्छाज्ञापनम्, शोकगाथा, व्यक्तिविशेषस्य सम्मानज्ञापनम्। अस्य केषुचिच्छ्लोकेष्वपि एतेषां काव्यमूल्यमस्माभिरस्वीकर्तुं नैव शक्यते। एतान् विहाय सीतानाथप्रतिभाया मूल्यायनमसम्पूर्णं प्रतिभाति।

भावविलसितम्- इत्याचार्यस्य कवितासङ्कलनग्रन्थः। अत्र विद्यन्ते पञ्चविंशतिसङ्ख्यकाः स्वरचिताः संस्कृतभाषोपनिबद्धाः कविताः

वङ्गभाषानिबद्धाः षट् कविताः, अनुवादकविताद्वितयी- एका आङ्गलभाषातः अपरा वङ्गभाषातः संस्कृतभाषायाम् अनूदितकविता। प्रायेण सर्वासां संस्कृतकवितानां वङ्गभाषायां गद्यैः पद्यैर्वा अनुवादोऽपि वर्तते।

शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्- पश्चिमवङ्गे नदियाजनपदे ४/४/१९९५ दिनाङ्के देवग्रामस्वास्थ्यकेन्द्रे 'पलस्पोलिओ' इत्यस्य दुष्प्रभावात् नैक शिशवो मृताः। अनेन मनुष्यकृतदुःखेन दुःखितः कविः स्वोद्धारं प्रथमतः "निखिलवङ्गसंस्कृतसेविसमितेः"मासिकपत्रिकायां जाह्नव्यां १९९५ संवत्सरे प्राकाशयत्। १९९९ ईशवीये संवत्सरे अस्य परिवर्धितं संस्करणं "शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्"इति नाम्ना सहृदयानां नेत्रातिथ्यं नीतम्। उपर्युक्तविषयेन सह अत्र शिशूनां यूनां च समस्याः कविना लक्ष्यीकृता इति विशेषः। घटनामिमामाधारीकृत्य एव काव्यस्यास्योत्पत्तिः। अस्य विषये कविना स्वयमेवोक्तं–समाजाश्रयं गीतिकाव्यम् इति। साकल्येन काव्येऽस्मिन् १२७ श्लोकैः कविः सष्टतया सामाजिकदुर्गुणान् प्रकटीकरोति। यथा परस्परं दोषारोपणं खलु मुख्यः सामाजिको गुणः-

कश्चिद्दोषान् वदति नितरां सर्वकारीयवृत्तेः
कश्चिद्दोषानभिलपति वा भेषजस्य प्रदातुः।
कश्चिद्दोषान्निगदति तथा जायुसंरक्षणस्य
पङ्क्तापङ्क्ति प्रचलितितरां सर्वनाशे प्रपूर्णे॥[1]

वाल्मीकिहृदयोत्थितशोकगाथातः श्लोकस्याविर्भावः। अत्रापि काव्यमिदं करुणरसप्रधानम्। देवग्रामे सङ्घटिताया घटनाया वर्णनेनैव काव्यस्यास्यारम्भः। प्रातरेव जनन्यः स्वापत्येभ्यः पोलिओ-औषधं दातुं गतवत्यः। परन्तु तदानीमपि ता न जानन्ति स्म यद्रात्रौ यमौ दूतान् प्रेषयिष्यति प्राणान् हर्तुम्। यदा कालरात्रिः समागता तदा एकैकशः कुसुमकलिसदृशः, शतपत्रसदृशशिशुः मातृक्रोड़ं परित्यज्य भगवत्पादं गृह्णाति। उपक्रमश्लोकत्रयात्परं प्रायः त्रिंशता श्लोकैः कविना अयं विषयो वर्णितः। ज्वरपीडितायाः सोमाया अन्तिमा परिणतिरित्थं वर्णिता कविना-

सोढुं ज्वरं क्षमवला नहि कोमलाङ्गी,
मा मेति रोदनपरा सुचिराय सोमा।
मातुः प्रियाङ्कशयने सुखसुप्तिमाप्ता,
पाषाणमूर्तिरभवज्जननी च शोकात्॥[2]

न केवलं शोकोन्मत्ता जननी प्रस्तरप्रतिमा सञ्जाता अपि तु काव्यपाठेन करुणार्द्रहृदया भवन्त्येव सहृदयाः। रामराज्ये शिशोरपमृत्युना श्रीरामः स्वीयमुत्तरदायित्वं स्वीकरोति स्म। अद्य राजपुरुषाणां कर्मचारिणां दायित्वहीनता एवास्य मूलकारणं स्वीकरोति कविः।

भ्रूणा विनश्यन्ति च केऽपि गर्भगा
नश्यन्ति एकेऽनभिवाञ्छिता इति।
केचित् प्रजाता अपि पुष्टिवञ्चिताः
म्रियन्त एवार्भकरोगतोऽपरे ॥[3]

का त्वं शुभे– इति प्रेमोपजीव्यमिदमेकं गीतिकाव्यम्, यस्मिन् उच्चकोटिकस्य प्रेम्णो विविधं चित्रं चित्रितमस्ति १२१ श्लोकैः। तदनु चतुर्द्दशश्लोकैः कविपरिचयः प्रदत्तः। कृतेरस्या अत्र कविकृत आङ्गलभाषानुवादोऽपि संयोजितोऽस्ति। श्रृङ्गाररसप्रधाने अस्मिन् काव्ये प्रायेण देहाद् देहान्तरं यावत् परिस्फुरति कदा स्वकीया कदा परकीया, कदा देहधारिणी कदा वा विदेहरूपा शून्या काचित् सम्बुद्धा कवेः सम्बोधनेषु-

का त्वं शुभे रजनिगन्धप्रसूनकल्पा
प्रीणास्यकुण्ठमखिलैः प्रसृतैः स्वगन्धैः।
आत्मानमुत्सृजसि चाविरतं परार्थे
धूपावलिर्दहनसङ्गमधूपितेव॥

का त्वं शुभे श्रुतिसमुच्चयसञ्चिताया-
स्तागस्य वेदिवलये समधिष्ठितायाः।
मैत्रीतितिक्षितरसैरभिसिञ्चिताया-
मूर्त्तिर्विभाति हृदि भारतसंस्कृतेर्या॥

अस्य काव्यसंग्रहस्य- समीक्षावसरे तन्मयकुमारभट्टाचार्येण उक्तं यदजगतोऽस्य सृष्टौ स्थितौ च प्रेम्णोऽपरिहार्यता अवश्यमेवाभ्युपगन्तव्या। मानवानाम् उत्पत्तौ विकाशे प्रकाशे च प्रेम्णो गतिमत्ता सुतरामेव नेत्रपथमायाति। कवेरस्य दृष्टौ प्रेम्णो द्वैविध्यं परिस्फुरति–एकं सोपाधिकमपरं निरुपाधिकम्। पितृ-मातृ-सुत-सुता-प्रिय-प्रियतमादिषु परिलक्ष्यमाणं प्रेम सोपाधिकम्। आध्यात्मिकम् ईश्वरविषयकं वा प्रेम निरुपाधिकं प्रेम। "का त्वं शुभे"इति काव्यस्य समर्पणावसरे रच्यमानेषु श्लोकेषु कवेरस्य प्रेमविषयिणी दृष्टिरियं प्रतिभासमाना विलोक्यते। काव्येऽस्मिन् कवेः प्रेमाभिसारिणी चित्तधारा शुभामुद्दिश्य तरङ्गिता वर्तते। तथा चोक्तं कविना-

गच्छत्सु कालेषु सुतीव्रतागुणे वैधुर्यवह्नेः शमिते कथञ्चन।
शनैः शनैर्भावमाधिमग्नता काचिन्मदीये हृदये समागता॥
समाधिना तेन विमुक्तदृष्टिर्द्रष्टुं क्रमे तां नवप्रत्ययेन।
सान्निध्यमस्याश्च लभे समन्तान्निवर्तितो नैव तु
विस्मयो मे॥[4]

काव्यनिर्झरी- अयमपि कश्चन कवितासङ्कलनात्मको ग्रन्थोऽस्ति। अत्र सङ्कलिता विद्यन्ते द्विचत्वारिंशत् कविरचिताः कविताः, बङ्गभाषातः अनूदिताः तिस्रः कविताश्च। साकल्येन पञ्चचत्वारिंशत् कविताः सन्त्यत्र कृतौ सङ्कलिताः। अत्र देववन्दनात्मिकासु कवितासु विद्यन्ते वाणीवन्दना, दशमहाविद्यारूपाया दुर्गाया वन्दना, महादेवमहिमपञ्चकम्, सन्तोषीमातृकास्तोत्रम्, वेदवाणीवन्दना चेति। क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमरूपाणां पञ्चानां भूतानां वन्दनात्मिकाः कविताश्चापि अनेन रचिताः। सिद्धसाधकानां महापुरुषाणां वन्दनापि कृतानेन संस्कृतभाषया। एतादृशीषु कृतिषु ओङ्कारनाथवन्दना, अनुकूलचन्द्रवन्दना, निगमानन्दवन्दनम्, रामकृष्णस्तवनम्, सारदास्तवनम्, विवेकानन्दवन्दनम्, लोकनाथस्तोत्रम्, अरविन्दवन्दनम्, चैतन्यस्तोत्रम् इत्यादीनि स्तोत्राणि विशेषतः समुल्लेखमर्हन्ति। विश्वकवेः रवीन्द्रनाथस्य तथा वङ्गीयौपन्यासिकस्य

शरच्चन्द्रस्य प्रशस्तिरपि कविना कृता। एतादृशीषु कवितासु गुरोः सुखमयस्य सपर्या, आचार्य विवन्दे रमारञ्जनं, सीतानाथगुरुं वन्दामहे, नमामि नलिनीकान्तम् इत्यादयः प्राधान्यं लभन्ते। देशमातृकाया वन्दनात्मिकाः काश्चन कविता अपि पर्यायेऽस्मिन् अन्तर्भवन्ति। अभिनन्दनात्मिकासु कवितासु जयति मानवेन्दुः, कुलपतेः राधावल्लभस्याभिनन्दनम्, करुणासिन्धुवर्धापना इति त्रयं समुल्लेखनीयम्। देवतावन्दनात्मिकाः स्तुतयो यद्यपि ऐतिह्यानुसारिण्या रीत्या विनिर्मितास्तथापि कविप्रतिभायाः काचिन्नवीनोद्भावनशीलता क्वचित् क्वचिन् नयनचोर्नावतरतीति न। वाणीवन्दनात एकः श्लोकः समुद्धियते-

हर्षादागमजात् स्रुताक्षिसलिलं पाद्याय ते कल्प्यतां
चित्तं दत्तमिदं तवासनतया तस्मिन् सुखं स्वास्यताम्॥
भक्त्या त्वत्परया मरालगमने! पुष्पाञ्जलिर्दीयते
साष्टाङ्गं प्रणिपत्य भूमिवलये पादञ्च ते वन्द्यते॥[5]

गौरीनाथचरितम्- आन्तर्जातिकख्यातिभाजः प्राच्यतत्त्वविदुषो गौरीनाथशास्त्रिणो जीवनचरितमस्ति काव्यस्यास्योपजीव्यम्। संस्कृतप्रतिभापत्रिकायां ५१ तमे उन्मेषे काव्यमिदं प्रकाशितमभूत्। अत्र अनुष्टुब्बहुलैः २४८ श्लोकैः श्रीशास्त्रिणो वंशपरिचयो, बाल्यकालः,अध्ययनाध्यापनप्रगतिः, संस्कृतसेवा च सुवर्णिताः सन्ति।

वाग्वजारस्थिते गेहे गङ्गोर्मिकलनादिते।
गौरीनाथः शिशुः सौम्यदर्शनः समजायत॥[6]

अनूदितं साहित्यम्- सीतानाथाचार्यस्य अनूदितकविताः संस्कृतपरिषत्पत्रिका-जाह्नवी-लोकसुश्रीत्यादिपत्रिकासु देवनागरीलिप्या वङ्गलिप्या च प्रकाशिताः। मूलतो मौलिककाव्यसर्जकस्यास्य मौलिकरचनापेक्षया अनूदितरचना विरलतया एव सन्ति। तथापि तत्र परिस्फुरन्ति मौलिकसौन्दर्यच्छटाः, शब्दविन्यासचारुता भङ्गिभणितिवक्रिमा

च। तेन चतुर्णां कवीनां पञ्चषाः कविता अनूदिताः सन्ति। तेषां सविस्तरमालोचनार्थमत्र कश्चन प्रयासो विधीयते।

आत्मविलापः- वङ्गीयकाव्यसंस्कारे नवयुगस्य प्रतिष्ठातुः माइकेलमधुसूदनदत्तस्य काव्यानामनुवादः कृष्णात्रेयकविना अधिकाधिकतया विहितः। तस्यैव कवेः 'आत्मविलापः'इति किञ्चिद् गीतिकाव्यमनेनानूदितं यत् न 'भावविलसित'ग्रन्थे ७९-८० पुटयोः प्रकाशितम्। केवलमत्र छन्दः प्रयोगे वैचित्र्यं परिलक्ष्यते। कुत्रापि इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा,उपजातिर्वा,कुत्रापि पुनः अनुष्टप,शार्दूलविक्रीडितं वा, अन्यत्र पुनः 'blank verse' नाम मुक्तच्छन्दः।

विविधसंस्कृतच्छन्दोभिरनूदितायामस्यामात्मविलाप इति कवितायां सर्वमाहत्य अष्टादश (१८)श्लोकाः सन्ति।तेषु सप्त त्रिपाद्यः अनुष्टुभः। तस्मिन् विषये कविरयं स्वयं मन्त्रयते पुरोवाचि-'आत्मविलापः इत्यनुवादात्मिकायां कवितायामनुवादसौकर्याय क्वचित् क्वचिदनुष्टुभः पादत्रयमवलम्ब्य एकैकः श्लोको विनिर्मितः। प्रथमपङ्क्तिचतुष्टयस्य दीर्घतरेण शार्दूलविक्रीडितच्छन्दसा अनुवादकरणात् मूलेऽविद्मानानां केषाञ्चित्पदानां योजना आवश्यकी जाता। परवर्तिपङ्क्तिद्वयमुपेन्द्रवज्रावृत्तेन अनूदितमिति अधिकपदयोजनाया आवश्यकता नानुभूता।'

रसालस्वर्णलतिका च- नीतिगर्भकवितासु माइकेलमधुसूदनदत्तस्य 'रसाल', 'स्वर्णलतिका' चेति कविताद्वयमापतति। कविताद्वयं 'ला फाँतेन' इति फरासिकवेरनुकृतम्। तस्मादेव स्वमित्रं गौरदास लिखितवान्- 'I have not been doing much in poetical line, of late, beyond imitating a few Italian and Freench things.' इति। एतादृशनीतिगर्भकवितानां सङ्कलने भावस्य, छन्दसश्च प्रयोगः सावलीलः। एतासामेव कवितानामनुवादः सीतानाथेन कृतः, यः खलु 'काव्यनिर्झरी' ग्रन्थे ७२-७३ पुटयोः प्रकाशितः। अनेन ये खलु अवङ्गीयाः संस्कृतज्ञाः तेषां कृते माइकेलमधुसूदनदत्तस्य काव्यानां ज्ञानं सम्यक्तया

भवेदिति निश्चप्रचम्। 'रसाल-स्वर्णलतिके' इति कवितेयमनुष्टुब्बहुलैः त्रयोविंशत्या श्लोकैरनूदिता अनुवादकेन। अत्र एका उपजातिरन्या अनुष्टुभ एव। काश्चन अर्धपङ्क्तयः। अत्र रसाल-स्वर्णलतिकयोरुक्तिप्रत्युक्तिं निरूपयन् अनुवादको मूलकवेः भावराज्याद् बहुदूरे तिष्ठति।

वहति मलये हन्त शिरस्ते जायते नतम्।
मधुकरभारेणापि नम्रतां त्वं प्रपद्यसे॥
विभूतिं मे पश्य त्वं भाग्यञ्चितः।
वनवृक्षकुलस्वामी हिमाद्रिसदृशोऽस्म्यहम्॥7

कर्णधारावधीयताम्- विप्लविनः कवेः नजरुलइसलामस्य 'काण्डारी हुँशियार्'इति कविता अनेन शीर्षकेण अनूदितास्ति अनेनैव कविना एकविंशति श्लोकैः या खलु 'काव्यनिर्झरी'ग्रन्थे ६९-७०पुटयोः प्रकाशिता। पूर्ववदत्रापि त्रिपाद्या,अनुष्टुभो दश प्रयोगाः, द्विपाद्या अनुष्टुभो द्वौ प्रयोगौ च सन्ति। ततः एका इन्द्रवज्रा, शिष्टाः अनुष्टुभ एव। एषा कविता संस्कृतपरिषत्पत्रिकायां २००५-६ईशवीयवर्षयोः ८८अङ्के प्रकाशितास्ति वाङ्लामूलसहिता।

रवीन्द्रसङ्गीतम्- रवीन्द्रनाथठाकुरविरचितगानानां केषाञ्चनानुवादः सीतानाथाचार्येण कृतः। यथा-

শুধু তোমার বাণী নয়গো হে বন্ধু হে প্রিয়
মাঝে মাঝে প্রাণে তোমার পরশখানি দিও। इत्यस्य
केवलं तब वाणी नहि भो, हे बन्धो है प्रिय।
मध्ये मध्ये प्राणेषु तव स्पर्शमात्रं दीयताम्॥

रवीन्द्रसङ्गीतं खलु वङ्गीयानां प्राणस्वरूपम्। चिरपरिचितगीतविषयेऽधिकं किमपि नैव वक्तव्यम्। अत्र केवलं कवेरनुवादविषये कथनीयमस्ति। 'গো' इत्येतत्सम्बोधनसूचकमव्ययम्। '**নয়** গো' इत्यस्यानुवादः 'न हि भो' इति। 'হৃদয় আমার চায় যে দিতে কেবল নিতে **নয়**' इत्यस्यानुवादः कृतः आचार्येण 'हृदयं मम

काङ्क्षति प्रदातुं न केवलमादातुम्' इति। 'একলা পথে চলা আমার করব রমণীয়' इत्यस्यानुवादः 'एकलं पथि चलनं मदीयम्, करिष्ये रमणीयम्।' इत्यादिषु आकाङ्क्षितानुवादोऽपि अस्ति। तेनैव सह मूलभावोऽपि न परित्यक्तः।

एतद्व्यतिरेकेणापि प्रकाशिता अप्रकाशिताश्च अनेकाः कविताः कविनानेन रचिता वर्तन्ते। तासु कासाञ्चन कवितानां प्रकाशनं भवत्येव। कवेरस्य काव्यकृतिषु विषयवैचित्र्यं सुतरामेव लक्षणीयम्। कविनानेन वन्दनात्मिकाः सङ्ख्याधिकाः कविता रचिताः। काश्चन कथा (बान्धवी रक्षिता, स.सा.प.प.,९०)इत्यादयः अस्य प्रकाशिताः नैकासु पत्रिकासु। महानयं कविः करोनाकरालग्रासे अस्मान् परित्यज्य स्वर्गलोकं प्राप्तवान्।

सूत्रनिर्देशः

1. शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्- श्लोकः -१९
2. Ibid- श्लोकः -१३
3. Ibid- श्लोकः -३२
4. का त्वं शुभे- श्लोकः -३६,३७
5. काव्यनिर्झरी- श्लोकः -९
6. गौरीनाथचरितम्- श्लोकः-४७
7. रसालस्वर्णलतिका च- श्लोकः-७,८

निर्वाचितग्रन्थसूची-

1. आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये पश्चिमवङ्गस्यावदानम्- नारायणदाशः, तुहिना प्रकाशिनी, कलिकाता, 2020
2. काव्य-कौतुक, श्री विष्णुपद भट्टाचार्य, कलकाता, 1956
3. चट्टोपाध्याय ऋता, आधुनिक संस्कृत साहित्य, प्रग्रेसिभ पावलिशार्स, कलिकाता, प्रथम प्रकाश, 2012

4. चट्टोपाध्याय ऋता, सीतानाथ आचार्य, कवि ओ प्रावन्धिक, संस्कृत वुक डिपो, कलिकाता, प्रथम प्रकाश, 2008
5 ."भाषा-साहित्य-संस्कृति"- चिन्ताहरण चक्रवर्ती, कलिकाता, प्रथम संस्करण, 1367
6. शिशुयुवदुर्दैवविलसितम्- सीतानाथ आचार्यशास्त्री, कलिकाता, 1999
7. साहित्य दर्पण, हरिदास सिद्धान्तबागिश सम्पादित, चतुर्थ संस्करण, 1867 शकाब्द कलिकाता पृष्ठा 290, प्रथम संस्करण, 1841 शकाब्द
8. Modern Sanskrit Dramas of Bengal: 20th century A.D.,- Rita Chattopadhyay, Calcutta, 1st edition , 1992

----o----

वैदिक साहित्य में योग का स्वरूप

डॉ. तरुलता वी पटेल

मनिबेन एम.पी. शाह महिला आर्ट्स कॉलेज, कड़ी, गुजरात

भारतीय योग शब्द के अनेक अर्थ है। इसका सामान्य अर्थ जोड़ने, एक साथ होने से है। रथ के साथ बाँध जाने वाले पशुओं के बन्ध को 'योग' कहा गया है। वेदों[1] में योग शब्द का प्राचीनतम यही अर्थ है यद्यपि ऋक्रसंहिता में अन्यत्र 'योग' एवं 'योगक्षेम' शब्द आये हैं, परन्तु उनका अर्थ योगसूत्र अथवा उपनिषदों या महाभारत में उपलब्ध योग के अर्थ से अति दूर है। दूसरे शब्दों में योग शब्द प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में सुविदित है, परन्तु यह ध्यान पथ अथवा योग-मार्ग का पारिभाषिक शब्द नहीं है।

वेदों में योग के विषय में अनेक स्थलों पर विवेचन किया गया है, जो कि कतिपय उद्धरणों से व्यक्त होता है-विद्वानों का यज्ञकर्म बिना योग सिद्ध नहीं होता।[2] ऋग्वेद में प्रत्येक शब्द प्रतीकात्मक रूप में व्यवहृत हुआ है। प्रायः इन्द्र, अग्नि, वरुण, सोम आदि का वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु इस वर्णन के पीछे आध्यात्मिक अनुभव का मूल है, जो कि उस सन्दर्भ में लक्षित अर्थ को लगाने पर ही समझ में आता है। इस प्रकार वैदिक काल से ही योग परम्परा आरम्भ हो गयी थी। जिसे 'योग माया' नाम से व्यवहुत किया गया है।[3]

योग-सिद्धि के लिए भगवान् को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ईश्वर प्रार्थना के क्रम में कहा गया है कि हम साधक लोग हर योग हर कष्टमय स्थिति में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आह्वान करते हैं।[4] योग शब्द कई बार प्रयुक्त हो कर 'जोड़ना' या 'मिलना' अर्थ को व्यंजित करता है जो योग की विद्यमानता का ही प्रमाण है।[5]

विद्वान् लोग अपने चित्त को श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं वे सभी महान् स्तुति के पात्र है, और मेधावी सविता देव की प्रेरणा से यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं, वे भविष्य ज्ञाता है वहीं उन्हें यज्ञ कर्म में लगाते हैं। उन सर्वेश्वर्यवान सविता देव की महिमा स्तुति के योग्य है।[6] ऐसा वर्णन आया है कि सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ही उत्पन्न हुए जो सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र पति है। जिन्होंने अन्तरिक्ष, स्वर्ग और पृथ्वी सब को धारण किया अर्थात् उपर्युक्त स्थान पर स्थित किया, उन प्रजापति देव का हम हृदय द्वारा पूजन करते हैं।[7] हमें इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि सृष्टिक्रम में सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। अतः कहा जा सकता है कि प्राचीनतम पुरुष जिस योगशास्त्र के प्रथम वक्ता है वह योगशास्त्र भी प्राचीनतम हुआ।

मनः प्रवृत्तियों को संयम में रखना योग के लिए अनिवार्य बताया गया है। योगाभ्यास तथा योग द्वारा प्राप्त विवेकख्याति के लिए प्रार्थना की गई है कि ईश्वर-कृपा से हमें योगसिद्धि होकर विवेकख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो और वही ईश्वर अणिमा आदि सिद्धियाँ हमारी तरफ आवें।[8] पतञ्जलि ने भी चित्तवृत्तियों के निरोध को योग माना है।[9]

दीर्घतमा ऋषि के कथन से भी योग की सार्थकता एवं महनीयता स्पष्ट लक्षित होती है। उनका यह कथन है कि मैंने प्राण का साक्षात्कार किया है, जो सभी इन्द्रियों का ज्ञाता है, वह कभी नष्ट नहीं होनेवाला है। वह भिन्न-भिन्न नाड़ियों द्वारा अन्दर बाहर आता जाता है तथा यह अध्यात्म रूप में वायु आदि देव रूप में सूर्य है।[10]

वेदों के मन्त्रों से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में योग का निरूपण, योग के पारिभाषिक शब्दों में क्रम से नहीं हुआ है फिर भी उसमें मन्त्र वाक्यों, प्राकृतिक वस्तुओं के आधार पर तथा अन्य प्रतीकों के आधार पर योग का वर्णन मिलता है। वह अवश्य ही योग के अस्तित्व का सूचक है।

यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय में राज्य शासन, शासन विभाग, राष्ट्र विजय, राज्याभिषेक तथा युद्धादि का पर्याप्त वर्णन मिलता है। यत्र तत्र

योग परम्परा की भी सूचना मिलती है यजुर्वेद में योगाभ्यास का वर्णन मिलता है कि उस महान् अनन्त विद्या के भण्डार विविध कर्मों को पूर्ण करनेवाले परमेश्वर के ध्यान में मेधावी अपने आत्मा की उसमें आहुति करने वाले पुरुष उसमें अपने मन को योग द्वारा युक्त करते हैं और अपनी बुद्धियों या क्रियाओं को उधर ही लगा देते हैं वे उसका विशेष रूप से वर्णन करते हैं, वह उत्तम कर्मों और विद्वानों का ज्ञाता एक ही है। उन सभी के उत्पादक सर्वद्रष्टा परमेश्वर की बड़ी भारी स्तुति या महिमा है, वह सत्यवाणी का उपदेष्टा है।[11] योग द्वारा ज्ञानप्राप्ति के सन्दर्भ में यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि हम सभी लोग योग द्वारा समाहित स्थिर चित्त से सर्वोत्पादक परम देव परमेश्वर के उत्पादित जगत में अपनी शक्ति से उत्पन्न सुख-लाभ के लिए उस परम ज्ञान को प्राप्त करें।[12]

यजुर्वेद में योगाभ्यास का वर्णन मिलता है कि बुद्धिमान पुरुष जैसे हलों को जोतते हैं और बुद्धिमान पुरुष विद्वानों का सुख हो ऐसी बुद्धि से जूओं के जोड़ी विविध देशों में ले जाते हैं, वैसे ही विद्वान योगी-जन नाड़ियों में योगाभ्यास करते है। इन्द्रिय-वृत्तियों में सुषुम्ना द्वारा या सुखप्रद धारणा वृत्ति से प्राण अपान आदि नाना जोड़ों द्वन्द्वों का अलग-अलग विविध प्रकार से अभ्यास करते हैं।[13]

प्राण आदि शारीरिक शक्तियों की साधना के विषय में यजुर्वेद में कहा गया है कि प्राणायाम भीतर से बाहर आनेवाला निःश्वास प्राण है। अपानाय बाहर से भीतर जानेवाला उच्छ्वास अपान है अथवा नाभि तक संचरण करनेवाला श्वासोच्छ्वास 'प्राण' है, नाभि से गुदा तक व्याप्त एवं नीचे की तरफ से मलों को बाहर करने वाला 'अपान' है। इन दोनों को योगक्रिया से वश में करना चाहिए। इसी प्रकार शरीर के सिर, बाहु, जंघा आदि अन्य अंगों में व्यापक प्राण व्यान है। उसका उत्तम रीति से ज्ञान और अभ्यास करना चाहिए। चक्षु एवं दर्शन शक्ति को उत्तम रीति से प्राप्त करना चाहिए। श्रोत व श्रवण शक्ति का सदुपयोग एवं वृद्धि करना चाहिए। वाणी

और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो। शरीर में प्राण, अपान, श्रोत, वाग और मन को हृष्ट पुष्ट करो।[14] गीता में भी इन्हीं दोनों प्राण अपान को नियन्त्रित करने को कहा गया है।[15]

योगसिद्धि के लिए भगवान् को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए ईश्वर प्रार्थना के ही क्रम में सामवेद में कहा गया है कि हम साधक लोग योग में हर कष्टमय स्थिति में परमेश्वर इन्द्र का आह्वान करते हैं।[16]

योगी की महत्ता वेदों में उल्लिखित है। वह परम ऐश्वर्य विभूतियों से सम्पन्न योगी अश्व के समान कार्य में कुशल होता है। जो पवित्र करने वाली धारणा या ज्ञानधारा से निष्पन्न है। उसमें निष्ठ होकर चारों तरफ अपने ज्ञानोपदेश द्वारा विचरण करता है।[17] योगी समाधिस्थ होकर संसार रूपी सागर में बिखरे हुए सिद्धि रत्नों को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

कर्मनिष्ठ योगी के बारे में वेद साधनों से निष्पन्न स्वयं कर्ता विद्वान योगी की धारणा-शक्ति अति आनन्द अमृत-रस को प्रकट करती है और उत्तम कर्मनिष्ठ योगी समस्त अज्ञानों कर्मों और लोकों पर वश करता है, और उनमें निवास करता है।[18] वैभव, विद्या, स्थान, शरीर, साधन, बुद्धि आदि सब कुछ स्वास्थ्य के बिना निष्फल होते हैं अतएव प्रत्येक कर्मनिष्ठ योगी को योगाभ्यास द्वारा शरीर आरोग्य एवं बलिष्ठ बनना चाहिए।

हे आत्मन्! मनुष्यों या प्राणों द्वारा परिशोधित होकर जब योगाभ्यास के कर्मों द्वारा या ज्ञान धारणाओं और प्राणायाम आदि के अभ्यासों द्वारा पुनः पुनः स्वच्छ किया जाता है तब उस मूर्छा स्थल या देह में अपने साथ ही स्थिर कूटस्थ परम आत्मा को भी प्राप्त कर लेता है।[19]

वेदों में योगांगों के यम और नियम साधनों की महत्ता बताई गई है कि उत्तम आयुधों से सम्पन्न समाधि में ध्येय इष्ट देव के संग मिलने के लिए उत्तम यम, नियम के साधनों से सम्पन्न आत्मन! आप आनन्दमय होकर उत्तम सामर्थ्य को प्राप्त करो। हे इन्द्रो ऐश्वर्यवान् द्रविण शील रस रूप

से बहनेवाले यहाँ की इस अन्तःकरण में उत्तम रूप में प्रकट होओ।[20] वेद वाक्य भी इन्द्र को जीवन के साधक प्राणायाम का अभ्यासी बताता है।[21]

सामवेद में ऐसा वर्णन मिलता है कि यज्ञ जीवन और समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सबसे उत्कृष्ट मनन करने योग्य, योग समाधिद्वारा आप साक्षात् करने योग्य हैं, २४ देवों का पालक और उत्पादक सर्व व्यापक होने से सब भीतर वास करने से और सब को वास करानेवाला अपनी सत्ता से देह और विद्या को धारण करानेवाला जीवात्मा और प्रकृति इन दोनों के भीतर अतिसूक्ष्म सर्वत्र व्यापक सबसे अधिक आनन्दमय और सब के हृदयों में आनन्द को बहानेवाला, इन्द्र रूप जीवात्माओं का हितकारी, सर्वव्यापक रस रूप परमात्मा, समस्त ज्योतिर्मय पिण्ड हिरण्यगर्भ या अतिरमण योग्य सुखमय मोक्ष को धारण करता है।[22]

सामवेद में वर्णन मिलता है कि योग-क्रिया के द्वारा अज्ञानता को दूर किया जाता था। पुरातन उत्कृष्ट योग-क्रिया के करनेवाले वर्षण शील, सुखपूर्वक आत्मा के स्वरूप को प्राप्त होनेवाले उन तक पहुँचे हुए जन, मनन शक्तियों के अज्ञान से घिरे हुए द्वारों को खोल डालते हैं।[23] इस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति करते ही योगी दिव्य चक्षु के द्वारा परमात्मा ने भीतर दीप्त तेजोमय आत्मा के स्वरूप को देखनेवाला बताया गया है।[24] योगी एकाग्रचित्त होकर अपना मन ब्रह्म में लीन करके आत्म का दर्शन करता है।

सामवेद में निर्देश प्राप्त होता है कि आत्मशक्ति से सम्पन्न शमादि गुण युक्त योगी जन, सत्य ज्ञान के धारक कर्त्ता, परमात्मा के स्वरूप में उत्तम रूप से आश्रय प्राप्त करनेवाले, सत्य ज्ञान के मार्ग से इस आत्मा के योग समाधि के द्वारा मिलापों के आनन्द का लाभ करते हुए कृत कृत्य हो जाते हैं।[25] आत्मा को पवित्र करनेवाला मोक्षमार्ग में जाने के लिए अश्व के समान गमन साधन मन को योग समाधि द्वारा ईश्वर से मिलाकर जोड़ दे।[26]

योग समाधि का वर्णन करते हुए सामवेद में लिखा है कि विद्वान् साधक या योगी स्थिर आसन होकर समस्त देह में गति करे, सब मर्म स्थानों में विराजमान उसका नाश न करनेवाले विशाल, सब इन्द्रियगण को अपने योग बल से बाँधते और उनको चलानेवाले मुख्य प्राण को योगाभ्यास के द्वारा वश में करते हैं। ये क्रान्ति-सम्पन्न होकर सात्त्विक उर्ध्व स्थान ज्ञान प्रकाश मोक्ष में विराजते शोभा पाते है या मूर्धा स्थान में विशेष तेज से प्रकाशमान होते हैं।[27] इस प्रकार योगी पुरुष या साधक योगबल के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

अथर्ववेद में योग को मुक्ति प्राप्ति का साधन माना गया है। योगी पुरुषों की तपस्या की सफलता की कामना की गई है। योगी योगमय अध्यात्म यज्ञ में प्रभु परमात्मा तपस्याओं को आप में सफलतापूर्वक लगाने से सर्वश्रेष्ठ आहुति को प्राप्त करता है।[28] इस प्रकार उत्तम तपस्या के द्वारा सर्वोत्तम इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है।

सर्वश्रेष्ठ आहुति के बारे में वर्णन मिलता है कि परमात्मा योगी पुरुषों की उत्तम अभिलाषाओं पूर्ण करने के उपरान्त ही इस ब्रह्म यज्ञ में ज्ञानी पुरुष समाधिमग्न होने को ही सर्वश्रेष्ठ आहुति बताया गया है।[29]

हे प्राण और उदान के गुह्य स्थानों में प्रविष्ट होते हुए मुख्य प्राण के बल से यज्ञ रूप आत्मा की शक्ति को बढ़ाते हुए, ब्रह्म परमात्मा के बल से गमन करने की बात कही गयी है। तथा योगी पुरुषों को ब्रह्म ज्ञान के द्वारा साक्षात् आत्मरूप को प्राप्त करने को कहा गया है। यही आत्मा का स्वरूप साक्षात् 'स्वः सुखयम्' मोक्ष धाम है। यह साक्षात् ब्रह्म देहोपासना करनेवाले आत्मा के लिए सर्वश्रेष्ठ आहुति होने का विषय बताया गया है।[30]

योगी पुरुष यज्ञमय परम आत्मा में योगबल से इन्द्रियों को उसी प्रभु में लगा दे, यही सबसे उत्तम आहुति है।[31] योगी पुरुष अपने मन एवं इन्द्रियों को वशीभूत कर समाधियुक्त चित्त होकर पन्तियों और पालक-

शक्तियों सहित ब्रह्म यज्ञ में प्राप्त होने को ही उत्तम आहुतियाँ बताई गई है।[32] योगियों के लिए उपदेश दिया गया है कि जिस प्रकार माता अपने पुत्रों का पालन-पोषण करती है उसी प्रकार हे साधक प्राणायाम! क्रिया के द्वारा परम ब्रह्म में समाधि मग्न है, उस संगम स्थान देव में मन्त्रों के तुल्य प्राण गण ही मरूत रूप है, वे भी उसको यज्ञमय आत्मा में सुख से आहुति हो एवं उसमें लीन होने को कहा गया है।[33]

अथर्ववेद में मोक्षप्राप्ति के लिए वर्णन मिलता है कि जो विद्वान् पुरुष सब तरफ बसनेवाले प्रजा जनों को धारण करनेवाले सुसंगठित साम्राज्य को विस्तृत करते हैं, वे सुखकारी साम्राज्य को प्राप्त करते हुए नीचे की तरफ नहीं देखते अथवा मोक्ष को प्राप्त करते हुए योगियों के समान संसार के भोगों की अपेक्षा नहीं करते, प्रत्युत समस्त पृथ्वी के ऐश्वर्य और मन्त्रबल को रोकने में समर्थ सर्वोपरि विजयकारिणी शक्ति को प्राप्त हो जाते हैं।[34]

अथर्ववेद में मोक्षमार्ग का उपदेश देने का उल्लेख मिलता है कि विद्वान् पुरुषों! इस देह के मूल कारण या कर्म फल को सर्वथा परित्याग करते हुए पुण्य कर्म एवं ज्ञान यज्ञ के सम्पादक मुमुक्षु आत्मा के लिए ज्ञानमार्ग का आश्रय दो। जब वह जीव मुक्त ज्ञान योगी विद्वानों के प्रिय मार्ग देवयान में स्थित करे तब योग-साधना से संस्कृत इस देह-बन्ध को छोड़कर मोक्ष में जाने के लिए उद्यत इस आत्मा को वह मार्ग भी प्राप्त हो।[35] जो ध्यानी योगाभ्यासी मुमुक्षु पुरुष योग समाधि द्वारा ध्यान करते हुए देह में बँधे आत्मा को मननशक्ति और प्रज्ञा नेत्र से अनुदर्शन करते हैं उनको परमेश्वर देह के क्लेशमय बन्धन से मुक्त कर देता है।[36] इस अवस्था को मोक्ष की प्राप्ति कहते हैं।

अथर्ववेद में मोक्षाप्राप्ति के सम्बन्ध में कहा है कि जिस प्रकार पूर्व कल्प के ऋषिजन ब्रह्म और आत्मा के तत्त्व को भली प्रकार जानते हुए समस्त अंगों में गति करते हुए प्राण को वश में करते हैं। उसी प्रकार

मुमुक्षुजन भी योग साधनों से उस प्राण को वश में करें। हे मुमुक्षु पुरुष, तुम भी शरीरों द्वारा आत्मा को प्रतिष्ठित योग-साधना-सम्पन्न सामर्थ्यवान होकर इसके बाद मुमुक्षु मार्ग देवयान नामक ज्ञानमार्ग से उस पुण्यफल सुखमय मोक्ष की अवस्था को प्राप्त कर और उस प्रकाश रूप ब्रह्मपद को भी प्राप्त कर।[37]

अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि विद्वान् पुरुष समाधि रूप आत्म यज्ञ से परम आत्मा की उपासना करते हैं क्योंकि वे ही मोक्षप्राप्ति के साधन है, वे इन योग समाधि की साधना करने वाले योगी जन महत्त्व को प्राप्त करके दुःख रहित मोक्षरूप परम पुरुषार्थ को प्राप्त करते हैं, जिससे की पूर्व मुक्त हुए साधना सिद्ध ज्योतिमर्य युक्त पुरुष विराजते हैं।[38] इस प्रकार से योगी आत्म यज्ञ से मोक्ष की प्राप्ति करते हैं।

अथर्ववेद में एक स्थान पर प्राणायाम द्वारा चिकित्सा का भी संकेत है। प्राणायाम के द्वारा वायु को अन्दर रोकने से शरीर के अन्दर प्राणशक्ति की प्राप्ति होती है। प्राणशक्ति शरीर के अन्दर विद्यमान सभी रोगों को नष्ट करती है। प्राणायाम से शुद्ध वायु फेफड़ों में पहुँचकर दूषित रक्त को शुद्ध करती है और रक्त के शुद्ध होने से रोग स्वयं नष्ट हो जाते हैं।[39]

अथर्ववेद में वर्णित योग-समाधि के द्वारा ध्यान करने वालों को परमेश्वर देह के क्लेशमय बन्धन से मुक्त कर देता है। योग साधना के द्वारा प्राण को वश में करते हुए ज्ञानमार्ग से मोक्ष अवस्था की प्राप्ति करने को बताया गया है। योगी ब्रह्मज्ञान के द्वारा साक्षात् आत्म रूप को प्राप्त करता है। संक्षेप में यहाँ पर योग को मुक्ति प्राप्ति का साधन बताया गया है। तथा योगी पुरुषों की तपस्या के सफलता की कामना की गई है।

उपनिषदों में भी किसी न किसी रूप में योग का वर्णन मिलता है। सभी उपनिषदों में योग की प्रधानता मानी गई है। योग को मुक्ति-प्राप्ति का, ज्ञान और परा भक्ति के समान ही साधन माना गया है। श्वेताश्वतर

उपनिषद् में योग एवं उसकी क्रियाओं का तथा परिणाम का विवेचन किया गया है, जिसमें प्राणायाम विधि, नाड़ियों का वर्णन ध्यान के उपयुक्त स्थान आदि का भी वर्णन मिलता है जो योग-परम्परा के स्वरूप को स्पष्ट करता है इसमें षडङ्ग योग का वर्णन करते हुए निर्देश दिया गया है कि शरीर की 'तिरुन्नतं' अर्थात् सिर, कण्ठ और वक्ष को ऊँचा करके हृदय में, मनमें, इन्द्रियों को रोककर ब्रह्मरूप नौका से विद्वान् लोग इस भयानक प्रवाह को पार करें। योग-साधना में लीन होकर विधिवत् चेष्टायें करते हुए प्राणायाम विधि से प्राण के सूक्ष्म पर नासिका द्वारा उसे बाहर छोड़े जैसे-चतुर सारथी दुष्ट अश्वों वाले रथ को भी निर्दिष्ट मार्ग से ले जाते हैं। वैसे ही सावधानी पूर्वक मन को वशीभूत रखे।[40] इस प्रकार की साधना करने के बाद ही ध्यान रूप मन्थन से अत्यन्त गूढ़ आत्मा का दर्शन करने का निर्देश दिया गया है।[41] ध्यान के द्वारा यजन करके मानव मुक्ति की प्राप्ति करता है बाहरी शुद्ध यज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त करता। ध्यानरूपी यज्ञ हिंसा के दोष से विमुक्त होता है। अतएव चित्त की विशुद्धि का वह सच्चा साधन है।

ब्रह्म प्राप्ति वाले योग में योगी के समक्ष कुहरा, धुंआ, सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत स्फटिक, मणि और चन्द्रमा के समान अनेक दृश्य दिखायी पड़ते हैं। यह सब योग साफल्य के लक्षण रूप होते हैं। पंच महाभूतों का उत्थान होने पर और पँचयोग सम्बन्धी गुणों के सिद्ध हो जाने पर योग से तेजस्वी हुए देह को पा जानेवाला योगी रोग, जरा, मृत्यु से मुक्त हो जाता है। देह का हल्का होना, आरोग्य भोगों से निवृत्ति, वर्ण की उज्वलता, स्वर सौष्ठव, श्रेष्ठ गन्ध, मल-मूत्र की कमी यह सब योग की प्रथम सिद्धि बतलायी गयी है। जैसे कोई चमकता हुआ रत्न मिट्टी लिपटने से मैला हो जाता है और स्वच्छ किये जाने पर पुनः चमकने लगता है वैसे ही योगी आत्मतत्त्व के द्वारा दीपक के समान प्रकाशमय ब्रहा तत्त्व के दर्शन करता है तब वह अज, निश्चल, सर्वत्तत्त्वयुक्त पवित्र परमेश्वर को जानकर सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है।[42]

उपनिषदों में प्रयुक्त योग शब्द आध्यात्मिकता की ओर संकेत करता है। क्योंकि योग, ध्यान, तप आदि शब्द समाधि के ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। आध्यात्मिकता का उल्लेख है कि जो ब्रह्म सनातन दुर्लभ, गूढ़ सर्वव्याप्त हृदय रूप गुफा में स्थिर रहता है उसे बुद्धिमान पुरुष या योगी अध्यात्म योग द्वारा समझकर हर्ष शोकादि से मुक्त हो जाता है।[43]

परमगति को प्राप्त करने के लिए आचार-विचार की अपेक्षा होती है जैसे-श्रद्धा, तप, दृढ़ ब्रह्मचर्य, सत्यवादी, दमन, दान, दया और यज्ञ, दान और तप का उल्लेख विभिन्न उपनिषदों में हुआ है।[44] परन्तु केवल आचार नीति का ही पालन करने में मोक्षप्राप्ति असम्भव है उसके लिए ज्ञान तथा योग का समन्वय अपना प्रमुख स्थान रखता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए तप समाधि की अनिवार्यता बताई गई है जो योग के ही अंग है। योग अथवा समाधि अवस्था में प्राणी अथवा मन निवृत्त हो जाते हैं योगी निर्भीक बनता है और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का रसास्वादन करता है। इस ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के बाद वे लोग उन ब्रह्मलोकों में अनेक वर्षों तक रहते हैं उनका पुनरागमन नहीं होता।[45]

मोक्ष प्राप्ति हेतु मन को वशीभूत करना आवश्यक है, क्योंकि वह मन ही साधक या योगी को बाह्य पदार्थों के साथ जकड़ता है। बाह्य पदार्थों एवं परिस्थितियों के शिकार रहते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करना असम्भव है। जिस प्रकार एक शिलाखण्ड पर गिरा हुआ वर्षा का जल नीचे की ओर उतरकर चारों ओर फैल जाता है इसी प्रकार वह मनुष्य जो गुणों में नानात्व को देखता है उनके पीछे चारों ओर भागता है- जैसे स्वच्छ जल, स्वच्छ जल में मिलाये जाने पर भी वही उसी रूप में स्वच्छ रहता है इसी प्रकार हे गौतम एक विचारक की आत्मा है जो ज्ञानी है।[46]

उपनिषदों में योग विषयक विभिन्न बिखरी सामग्री प्राप्त होती है। उपनिषदों में योग उसकी क्रियाओं तथा परिणाम के बारे में बताया गया है। जगत्, जीव तथा परमात्मा सम्बन्धी विचार वणित है। इतना ही नहीं

योग को मोक्ष का प्रदायक माना गया है। मोक्षप्राप्ति उपनिषदों का परम लक्ष्य है। इसलिए साध्य के अप्रतिम साधन के रूप में योग को प्रतिष्ठित किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में योग का नामतः उल्लेख नहीं मिलता किन्तु अनुष्ठानों एवं यज्ञों का वर्णन मिलता है, संभव है इसका सम्बन्ध अवश्य ही योग के निकट रहा हो। महाभारत में योग की अक्षय निधि संचित है। इसमें अनेकशः योग शब्द का प्रयोग उपाय के रूप में हुआ है। रामायण में योग के ही समानार्थक तप शब्द का उल्लेख मिलता है, जिससे परम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है। गीता को योग का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना गया है। गीता के सभी अध्यायों में 'योग' शब्द का प्रयोग किया गया है और योग की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी गई है। एक स्थान पर कहा गया है कि सिद्धि-असिद्धि में सम रहना ही योग है।[47] सिद्धि-असिद्धि में सम रहने का तात्पर्य यह है कि सफलता मिलने पर भी समान भाव से रहना अर्थात् सफलता मिलने पर सुखी और असफलता मिलने पर दुःखी न होना ही 'योग' है। परन्तु यह तभी सम्भव है, जब साधक सिद्ध हो चुका होता है अर्थात् युक्त हो चुका होता है, गीता में युक्त होने का तात्पर्य ब्रह्मी चेतना से युक्त होना है। गीता की दूसरी परिभाषा के अनुसार 'योग'[48] कर्मों में कुशलता का नाम है। कर्मों में कुशलता का अर्थ है कर्मों को निष्काम भाव से करना। इस प्रकार कर्म करने से बन्धन कारक न होकर मोक्षदायक बन जाते हैं। गीता की तीसरी परिभाषा है कि जीवन में जो दुःख संयोग है उसका वियोग ही 'योग' है, अर्थात् दुःख के संयोग का वियोग ही 'योग' है।[49] गीता द्वारा दी गई योग की यह परिभाषा पातञ्जल योग की परिभाषा से शाब्दिक रूप में नहीं मिलती, परन्तु फिर भी हम कह सकते हैं कि यह परिभाषा पातञ्जलि योग परिभाषा के निकट है, क्योंकि पातञ्जलि योग की परिभाषा के अनुसार जब चित्त की वृत्तियाँ विरुद्ध हो जाती है तो साधक को प्रकृति और पुरुष का भेदज्ञान हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पुरुष समस्त दुःखों से रहित हो जाता है, अर्थात् उसका

दुःखों से वियोग हो जाता है। यह भी कहा जा कता है कि जब साधक युक्त हो जाता है तभी दुःखों से उसका वियोग हो जाता है।

इस प्रकार पूर्व वैदिक काल से परवर्ती काल के उत्तर स्तरों में विकसित होती हुई योग-परम्परा स्वतन्त्र अस्तित्व रखती प्रतीत होती है। दूसरी बात यह है कि विभिन्न ग्रन्थों में योग का अर्थ भिन्न-भिन्न है फिर भी हम कह सकते हैं कि मोक्षप्राप्ति के मुख्य और गौण, अन्तरंग या बहिरंग ज्ञान दृष्टि और आचारदृष्टि से जितने भी अध्यात्म शास्त्र निर्दिष्ट साधन है (जो परम्परा से मोक्ष के उपाय है) उसका यथा विधि सम्यग् अनुष्ठान और उससे प्राप्त होने वाली आध्यात्मिक विकास की पूर्णता का ही नाम 'योग' है।' योग के वास्तविक प्राचीन स्वरूप की उत्पत्ति वैदिक परम्परा का अंग है। तत्त्वज्ञान एवं तत्त्वानुभूति के साधन के रूप में योग का विकास हुआ। बाद में आगे चलकर इसका विकास अष्टाङ्ग योग साधना रूप में हुआ और तत्त्वज्ञान तथा तत्त्वानुभूति आदि उच्च भावों की प्राप्ति में सहायक होने से शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थता हेतु भी योग का प्रयोग हुआ है। आधुनिक काल में योग का प्रयोजन निम्न है-योग द्वारा सिद्धि प्राप्ति करने, योग द्वारा स्वास्थ्य सम्वर्द्धन हेतु, योग द्वारा रोगों की चिकित्सा हेतु, योग द्वारा प्रज्ञा अर्थात् चेतना का विकास करने हेतु । अतः कहा जा सकता है कि योग मुख्यतः तत्त्वानुभूति, मनोनिर्माण, स्थायी शान्ति तथा स्वास्थ्य लाभ का उपाय है।

पादटीप :

1. ऋ० 1/24/9
2. ऋ. 1/18/7
3. वैदिक योग सूत्र... हरिशंकर जोशी, पृ. २२
4. योगे योगे तवस्तरम्, वाजे वाजे हवामहे, सखाय इन्द्र मूर्तये। ऋ. 1/30/7
5. ऋ. 1/34/9
6. ऋ. 5/8/111

7. ऋ. 10/121/1
8. साम. 301/201/31, अथर्व. 20/69/1
9. योगश्चित्तवृत्ति निरोधः। पा.यो.सू. 1/2
10. अपश्यं गोपामनिपद्यमान मा च परा च पचिभिश्चिस्तम् स संधीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥ ऋ. 10/177/3
11. युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा॥ यजु. 5/14
12. युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। यजु. 11/2
13. सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया॥ यजु. 12/67
14. प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा याचे स्वाहा मनसे स्वाहा॥ यजु. 22/23

15. अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥ भ. गी. 4/29
16. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रभूतये। साम. 2/2/7/9
17. यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः। इन्दुरश्वो न कृत्व्यः। साम.2/1/1/18/2
18. अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया। पर्जन्यो वृष्टिमा इव। साम. 2/4/1/3/10
19. यदद्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यमान आयुभिः।
    द्रोणे सधस्थमश्नुषे। साम. (उत्तराचिक) 3/1/4/2
20. आ पवस्व सुवीर्य मन्दमानः स्वायुध। इहो ष्विन्दवा गहि। साम. 2/2/1/4/3
21. साम. 5/6/19/2
22. ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिना विभूवसुः। दधाति रत्न स्वधयोरपीच्यं मदिन्तमो मत्सर इन्द्रियो रसः। साम.2/4/1/1/1
23. अप द्वारा मतीनां प्रत्ना ऋण्वन्ति कारवः वृष्णो हरस आयवः। साम. 2/4/2/1/12
24. अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम्। सूरः पश्यति चक्षसा।। साम.2/4/2/1/12
25. असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः। विदाना अस्य योजना। साम. 2/4/2/2/
26. अयुक्त सूर एतशम पवमानो मनावधि। अन्तरिक्षेण यातवे। साम. 2/5/1/8/2
27. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषम चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि। साम. 2/6/3/12/1
28. विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपांस्यस्मिन् यते सुयुजः स्वाहा। अथर्व. 5/26/7
29. अथर्व. 5/26/9
30. अथर्व. 5/26/12

31. इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सयुजः स्वाहा। अथर्व. 5/26/3
32. प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः। अथर्व. 5/26/4
33. छन्दांसि यज्ञे मरुतः स्वाहा मातेव पुर्व पिपृतेह युक्ताः। अथर्व. 5/26/5
34. स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आद्यां रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये विश्वतो धारं सुविद्वांसो वितेनिरे॥ अथर्व. 4/14/4
35. प्रमुचतो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः। उपकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः॥ अथर्व. 2/34/2
36. ये बध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा चक्षुषा च। अथर्व. 2/34/3
37. प्रजानन्तः प्रति गृहन्तु पूर्वे प्राणमङ्गेभ्यः पर्याचरन्तम्। दिवं गच्छ प्रति तिष्ठा शरीरैः स्वर्ग याहि पथिभिर्देवयानैः॥ अथर्व. 2/34/5
38. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
    ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ अथर्व. 7/5/1
39. वातत् ते प्राणमविदं....। अथर्व. 8/2/3
40. तिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य। ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥ श्वेता. उ. 2. 8,9
41. ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्येन्निगूढवत्। श्वेता. उ. 1/14
42. श्वेता. उ. 2/11-15
43. तं दुर्दशं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गुह्वरेष्ठं पुराणम् ।
    अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥ कठ. उ. 1/2/12
44. अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यभिजयन्त....। प्रश्न. उ. 1/10, मुण्डक । उ. 3/1/6,बृ. उप. 5/2/3
45. तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः। बृ. उप.6/2/15
46. यधोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेविजानत आत्मा भवति गौतम ।। कठ. उ. 4/15
47. सिद्धि सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते। भ. गी. 2/48
48. योगः कर्मसु कौशलम्। भ. गी. 2/50
49. तं विद्यादुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्। भ. गी. 6/23

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. अथर्ववेदसंहिता, संपा. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करणम्, शक. 1966

2. ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद्, वासुदेव शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, द्वितीय संस्करण, 1917
3. ऋग्वेदसंहिता, संपा. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करणम्
4. पातञ्जल योगदर्शनम् श्री नारायण मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1971
5. यजुर्वेदसंहिता, संपा. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करणम्
6. वैदिक योगसूत्र, हरिशंकर जोशी, रे. चौखम्बा संस्कृतमाला कार्यालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण- 1967
7. श्रीमद्भगवद्गीता, शाङ्करभाष्यसमेत, प्रका. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ही, पुनर्मुद्रण, 1967
8. सामवेदसंहिता, संपा. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, जि. वलसाड, चतुर्थ संस्करणम्

----०----

जैन साहित्य में योग-विश्लेषण

डॉ. ज्योति बोथरा

संस्कृति एवं अध्यात्म की भूमि भारत में सदैव सद्विचार एवं सद्व्यवहार के आधारभूत चिन्तनमय ज्ञान की अखण्ड धारा प्रवाहित होती रही है, जिसमें स्नात जन को पवित्रता का विशिष्ट अनुभव होता है। जन-जन के हितार्थ चिन्तकों ने, ज्ञानियों ने इस ज्ञान को साहित्यबद्ध करके मार्गदर्शन भी किया है। इसी कड़ी में योग भी एक ऐसा उपक्रम है, जो न केवल आध्यात्मिक हेतु से उपयोगी है, अपितु मानसिक एवं शारीरिक रूप से भी अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। योग की परिभाषा, प्रकार इत्यादि विषयों पर विभिन्न ग्रथकारों ने, दार्षनिकों ने प्रकाश डाला है। यह तो सर्वविदित है कि पतञ्जलि के योगसूत्र मे योग का वर्णन है, परन्तु बहुत से लोग यह नहीं जानते है कि योग का सिद्धान्त वैदिक पुराणों-उपनिषदों में तथा जैन आगमों-योग-ग्रन्थों मे विस्तृत रूप से उपलब्ध होता है। प्रस्तुत लेख मे विशेषतः जैन साहित्य में उपलब्ध योग विषयक विश्लेषण पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

योग शब्द युज् धातु से बना है। आचार्य हेमचन्द्र के धातुपाठ में युजि योगे, युजि च समाधौ अर्थात् जोड़ना, संयोजित करना एवं समाधि तथा मन की स्थिरता अर्थ में बताया गया है।[१] आचार्य यशोविजय ने 'द्वात्रिंशिका" में योग की परिभाषा देते हुए बताया है- कि मोक्ष से जोड़ने के कारण ही यहाँ योग का वर्णन किया गया है। उनके अनुसार- "मोक्षेण योजनादेव योगो ह्यत्र निरुच्यते"[२] इसी विषय को स्पष्ट करते हुए हरिभद्रसूरी का कथन है- मुक्खेण योजणाओ योगो अर्थात् मोक्ष से जोड़ने के कारण इसे योग कहा गया है।[३]

आचार्य पतंजलि का अष्टांगयोग में 'चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है[४]। अष्टांगयोग का उद्देश्य अंततः समाधि है, जो कि

आध्यात्मिक है। परन्तु उससे पूर्व उसके अनेक अन्य मानसिक, शारीरिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, वैश्विक इत्यादि लाभ हैं। सम्पूर्ण प्राणी जगत् एवं समूचे संसार को योग लाभान्वित करता है। यहाँ हम कुछ उपशीर्षकों में यह विषय प्रस्तुत करेंगे।

अष्टांगयोग एवं जैन साहित्य-

अष्टांगयोग के रूप में तो नहीं, परन्तु उसके अंतर्गत आगत प्रकारों का वर्णन जैन साहित्य में प्रचूररूपेण उपलब्ध है। योग विषय पर अनेक जैन ग्रन्थ उपलब्ध है, जिनमें मुक्ति का हेतु बताते हुए योग का सूक्ष्म एवं गहन वर्णन किया गया है। जिनमें कुछ ग्रन्थों के नाम अग्रलिखित हैं ५ -

- सोमदेव सुरी- योगसार
- आचार्य हेमचंद्र- योगशास्त्र इत्यादि
- आचार्य उमास्वाति- तत्त्वार्थसूत्र
- आचार्य जिनसेन- महापुराण
- आचार्य रामसेन- तत्त्वानुशासनय- आवश्यक निर्युक्ति
- जिनभद्रगणि- ध्यान शतक
- आचार्य हरिभद्र- योगग्रंथचतुष्टय
- आचार्य शुभचंद्र- ज्ञानार्णव
- उपाध्याय यशोविजयजी अध्यात्मोपनिषद आदि।

आचार्य हेमचचंद्र विरचित योगशास्त्र एवं पातञ्जलयोगक्रम-

आचार्य हेमचचंद्र विरचित योगशास्त्र के वर्णन में पतञ्जलि योगक्रम से समय भी परिलक्षित होता है। योगशास्त्र में कुल 12 प्रकाशों में से प्रथम तीनो प्रकाशों में- यम एवं नियम इन योगांगो का जैन दृष्टि के अनुसार वर्णन किया गया है, चतुर्थ में आत्मा के परमात्मस्वरुप प्रकाशनार्थ आत्मस्वरूप-रमण, कषायों और विषयों पर विजय, इन्द्रिय-निग्रह, मनोविजय, समत्व, चित्तशुद्धि, ध्यान, बारह अनुप्रेक्षाओं, मैत्री

आदि चार भावनाओं एवं आसनों का वर्णन उपलब्ध है, पञ्चम में प्राणायाम विषयक तथ्य मनःशुद्धि, पञ्चप्राणों का स्वरूप, प्राणविजय, आदि के रूप में वर्णित हैं, षष्ठ प्रकाश में प्रत्याहार-धारणा से संबन्धित तथ्य, सप्तम से दशम प्रकाश पर्यन्त ध्यान के पिण्डस्थ आदि चार ध्येयों और पृथ्वी आदि 5 धारणाओं, पदस्थ-ध्येयानुरूप, रूपस्थध्यान, रूपातीत ध्यान का विवरण है, एकादश एवं द्वादश प्रकाश मे धर्मध्यान और शुक्लध्यान से लेकर निर्विकल्पक समाधि, मोक्ष तथा चित्त के प्रकारों इत्यादि का अद्भुत विश्लेषण प्राप्त होता है।

योगाङ्गों का क्रमिक विवरण-

जैनदर्शन के अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन त्रि रत्नों के युगपत् संयोग से ही मोक्ष प्राप्ति संभव है।[६] वर्तमान प्रचलित योग का संबन्ध इनमें' से सम्यक् चरित्र से आता है। इसी के अन्तर्गत 5 महाव्रत अथवा अणुव्रत है, जिन्हे पातञ्जल योग मे 5 यम के रूप मे उल्लिखित किया गया है। ये है 5- अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार प्रमादवश जो प्राणघात होता है, वह हिंसा है। हिंसा की परिभाषा है- ''प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा'[७] इसीको विस्तृत करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है-

यत्खलु कषाययोगात् प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम्
व्यवरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा॥

इस तथ्य को सरलीकृत करते हुए नाथुराम का कथन है- "जिस पुरुष के मन में, वचन में व काय में क्रोधादि कषाय प्रकट होते हैं, उसके शुद्धो पयोग रूप भाव प्राणों का घात तो पहले होता है क्योंकि क्षय के प्रादुर्भाव से भावप्राण का व्यवरोपण होता है। यह प्रथम हिंसा है; पश्चात् यदि कषायों की तीव्रता से दीर्घ श्वासोच्छ्वास से हस्तपादादि से वह अपने अङ्ग को कष्ट पहुंचाता है अथवा आत्मघात कर लेता है तो द्रव्य प्राणों का

व्यवरोपण होता है। यह दूसरी हिंसा है; फिर उसके कहे हुए मर्मभेदी कुवचनादिक से व हास्यादि से लक्ष्य पुरुष के अन्तरंग में जो पीड़ा होकर उसके भावप्राणों का व्यवरोपण होता है, यह तीसरी हिंसा है; और अन्त में उसके तीव्र कषाय व प्रमाद से लक्ष्य पुरुष को जो शारीरिक अङ्ग छेदन आदि पीड़ा पहुंचाई जाती हैं तो पर-द्रव्य-प्राणों का व्यवरोपण होता है। यह चौथी हिंसा है[८]। इसप्रकार कषाय द्वारा अपने-पर के भावप्राण एव द्रव्यप्राण का घात करना हिंसा कहलाती है। अहिंसा ही नहीं, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांचो का जैन साहित्य में इतना वर्णन है कि लिखने में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ बन जाएगा।१० धर्म के अतर्गत एवं १२ तप के अन्तर्गत अन्य योगाङ्गों का विश्लेषण दृष्टिगत होता है। यथा- नियम हैं- शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, शौच अर्थात् शुद्धि, बाह्यशुद्धि से ही अधिक महत्त्वपूर्ण है अन्तःशुद्धि, चित्त-शुद्धि, चित्त की सरलता, विचारों की पवित्रता पर अत्यंत बल दिया गया है । भावों की शुद्धि एवं अशुद्धि के आधार पर ही कर्मबंध एवं कर्म-निर्जरा होती है। 'भावना भवनाशिनी' तथा 'भावना भववर्धिनी' जैसी उक्तियाँ भी प्रचलित है। विचारों का प्रभाव अत्यंत व्यापक होता है। स्वास्थ्य, व्यवहार यहाँ तक कि समूची सृष्टि में व्यक्ति के विचारानुसार शुभत्व या अशुभत्व व्याप्त हो जाता है। एक श्लोक में कहा गया है-

मनोयोगो बलीयान्, भाषितो जिनवरमते
क्षणार्धे नयेत् सप्तमी वा, धारयेत् मोक्षमेव वा॥

इसमें मनोयोग की शक्ति का वर्णन है। चित्तशुद्धि हो तो संतोष स्वतः आ जायेगा। चित्तशुद्धिपूर्वक ही तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान भी होता है। जिस प्रकार यम में अहिंसा प्रथम स्थान पर है क्योंकि यह सर्वप्रथम आवश्यक है, उसीप्रकार नियम में शौच सर्वप्रथम है।

आसन के संदर्भ में अनेक आसनों का उल्लेख स्थानांग सूत्र में प्राप्त होता है यथा- कायोत्सर्ग, उकडु आसन, पद्मासन, वीरासन, गोदोहिकासन, तथा पर्यङ्कासन।[९]

प्राणायाम- सामान्यतः प्राणायाम का अलग से उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु कायोत्सर्ग के लिए श्वासों की नियत संख्या का विधान दृष्टिगत होता है।

प्रत्याहार के सन्दर्भ में हम जैनागामों में उल्लिखित प्रति संलीनता नामक तप को देख सकते है, जिसके अन्तर्गत इन्द्रियों को उनके विषयो से हटाकर अंतर्मुखी करने का विधान है।[१०]

धारणा के सन्दर्भ में 'एकाग्रमनसंनिवेशना' को देख सकते है, जिसमें बिना आलंबन के मन को स्थिर कर देना होता है, जिसका परिणाम चित्त-निरोध है।[११]

ध्यान का प्रचूर एवं सूक्ष्म विश्लेषण जैनागमो में उपलब्ध है। ऋषि-भाषित में बताया गया है कि शरीर में जो स्थान मस्तिष्क का है, साधना में वही स्थान ध्यान का है। यहाँ तक भी कहा है कि- झाणेन तक्खना सिद्धि अर्थात् ध्यान से तत्क्षण सिद्धि प्राप्त हो आती है।
बृहद द्रव्यसंग्रह में उल्लेख है-

मा चिट्ठह मा जम्पह, मा चिन्तह किं वि जेण होइथिरो
अप्पा अप्पमिरओ, इणमेव हवे परं झाणम्।।[१२]

ध्यान में किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं होती। शारीरिक, वाचिक मानसिक सभी प्रवृत्तियाँ रुक जाती है। तीनो योग स्थिर हो जाते है।

ध्यान के प्रकारों के उप-प्रकारों को देखके हम समझ सकते है कि इसमें किसप्रकार चित्त-शुद्धि एवं योग-नियन्त्रण का क्रम चलता है। यहाँ इसकी संक्षिप्त झलक प्रस्तुत है-
प्रशस्त ध्यान के अंतर्गत दो ध्यान है- धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान।

धर्मध्यान चार प्रकार का है-

१. आज्ञाविचय (आगमों के अनुसार पदार्थों का चिंतन करना)

२. अपायविचय (हेय क्या है? इसका चिंतन करना)

३. विपाकविचय (हेय के परिणामों पर चिंतन करना)

४. संस्थानविचय (लोक, शरीर आदि का चिंतन करना)

शुक्लध्यान के भी चार प्रकार हैं-

१. पृथक्त्ववितर्क सविचार- ध्यान के इस स्तर पर ध्याता द्रव्य एवं पर्याय पर चिंतन करता है, फिर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है।

२. **एकत्ववितर्काविचारी-** योग-संक्रमण से रहित एक पर्याय विषयक ध्यान एकत्ववितर्काविचारी है।

३. सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती- यह मन-वचन-शरीर के व्यापार का निरोध हो जाने पर तथा मात्र श्वासोच्छ्वास की सूक्ष्म क्रिया शेष रहने पर होता है।

४. समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति- तीनो योगों की प्रवृत्तियाँ जब पूर्णतया निरुद्ध हो जाने पर तथा कोई भी सूक्ष्म क्रिया अवशिष्ट नहीं रहती है। वह समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान कहलाता है। आर्ट इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि पूर्वभूमिका सविषय होती है,[१३] अर्थात् किसी तत्त्वचिंतन अदि अवलम्बन पर आधारित होती है, परन्तु अंततः ध्यान पूर्णतः निर्विषय अर्थात निर्विकल्प हो जाता है।

समाधि- आचारांग सूत्र में बाह्यजगत् से अंतर्जगत् में प्रवेश करना तथा चित्त का स्व में स्थित होना अर्थात् स्वस्थ होना एवं अनशन अर्थ में समाधि शब्द प्रयुक्त हुआ है।[१४]

त्रियोग-धारणा-

अधिकतर अजैन आगमों में योग का सम्बन्ध त्रियोग से दृष्टिगत होता है। त्रियोग अर्थात् मन वचन एवं काय है। इन तीन योगो के शुभ व्यवहारों से पुण्य प्राप्ति होती है तथा अशुभ व्यवहारों से पाप की। यदि

ज्ञानपूर्वक योगों को पूर्णतया निरुद्ध कर दिया अथवा योगों के व्यवहार रुक जाये तो इस स्थिति को ध्यान अथवा समाधि की स्थिति कहा जा सकता है। योग सभी को प्राप्त है किन्तु उन योगों को संयमित रखनेवाला योगी बन जाता है और इन्हें पूर्णतः रोककर वही योगी अयोगी बनके परमात्मस्थिति को प्राप्त कर लेता है। इसी क्रम को उत्थान कि सीढ़ियों के रूप में १४ गुणस्थान कहा जाता है। इन गुण स्थानों मे हम देखते है कि चित्त शुद्धि अधिक से अधिकतम होती जाती है, जिससे आत्मा के अन्दर का कर्म-मल घटता जाता है। प्रारम्भ में बहिरात्मा की स्थिति चित्त कि निकृष्ट अवस्था है तो आगे के क्रम मे चित्त की शुभ-अवस्था व्याप्त होति है। अन्ततः योग को नियन्त्रित करते हुए अयोगी की आत्मस्थिति बन जाती है। त्रियोग में से सभी योग अर्थात् मन वचन, एवं काय ये हर मनुष्य को मिलते है। अधिकतर मनुष्य इनका प्रयोग करते है भोग-विलास के लिए, परिणामतः पापकर्म बंध करके दुर्गति एवं दुर्दशा के अधिकारी बन जाते है। विरले ही लोग होते, जिनकी भवितव्यता श्रेष्ठ होती है, वे ही योग साधना में अपने कदम बढ़ाते है, अपने पापकर्मो को नष्ट करके शुद्धात्मा की स्थिति को प्राप्त कर लेते है। गुणस्थान योग से अयोग की ओर यात्रा है।

इस विश्वपटल पर आगत सभी प्राणियों को सभी योग प्राप्त नहीं होते। किसी को एक, किसी को दो तो किसी को तीनो योग मिल जाते है। सभी योग मिल जाने पर भी योग मनुष्य जन्म मिलना कठिन है। जैनागम उत्तराध्ययन सूत्र में कुछ दुर्लभ योग बताये है-

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लाहाणि ह जंतुणो
मानुसत्तं सुइ सद्दा, संजमंमि य वीरियम्।।

ये चार दुर्लभ अङ्ग है। सर्वप्रथम मनुष्यता प्राप्त करना कठिन है, मनुष्यता प्राप्त हो जाने पर भी ज्ञान प्राप्ति का माध्यम शास्त्र श्रवण करने को मिल जाना उससे भी अधिक दुर्लभ है। सुनने को मिल भी जाये तो उसपर

श्रद्धा होना दुर्लभ है, अन्ततः श्रद्धा भी हो जाये तो संयम हेतु पुरुषार्थ करना अत्यन्त दुर्लभ है। योग प्राप्त होने पर उन्हे साधने की प्रक्रिया ही उन्हे सार्थक बनाती है, अन्यथा उनका नष्ट होना तो सुनिश्चित है ही।

योगसाधना का अधिकारी-

आचार्य हरिभद्र ने योग हेतु पात्रता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- जो जीव चरमावर्त मे रहता है। अर्थात् जिसका (संसार भ्रमण) काल मर्यादित हो गया है, जिसने मिथ्यात्व-ग्रन्थि का भेदन कर लिया है, जो शुक्लपक्षी है तथा चारित्र पालन करने वाला है, वह योग साधना का अधिकारी है। ऐसा योगी अनादि कालीन भव भ्रमण का अन्त कर देता है।[१५] योग साधना में निर्विषय ध्यान साधना की उच्चतम अवस्था है, जिसे करने के लिए कुछ योग्यताएँ मूलभूत रूप से आवश्यक है। जैसा कि बताया गया है-

युक्ताहार-विहारस्य, युक्तचेष्टसु कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् उचित आहार-विहार, साध्य के अनुकूल कार्यसिद्धि हेतु चेष्टाओं तथा उचित निद्रा एवं जागरण युक्त साधक के लिए योग दुःखों का हरण करने वाला होता है।

योग-विघ्न-विजय-

योग साधना करते हुए विघ्न तो बिना बुलाये बहुत सारे आ जाते है। जैन शास्त्रों में योग साधना करते हुए २२ परिषद् एवं अनेक उपसर्गों के आने का वर्णन है, उन पर विजय पाने वाला अपनी योग साधना पूर्ण कर लेता है। यदि इन प्रतिकूल विघ्नों से घबरा गए या अनुकूल विघ्नों में ललचा गए तो योगी पथभ्रष्ट हो जातां है। जबकि इन्हीं विघ्नों पर विजय पाने वाला अनेक सिद्धियों एवं लब्धियों का स्वामी बन जाता है।[१६] 22 परिषद् अग्रलिखित है- क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, रोग तृण स्पर्श, जल्ल,

अलाभ सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा अज्ञान अदर्शन। एक साधक को सहज ही इन स्थितियों का सामना साधना करते हुए करना पड़ता है, इसमे अपने संतुलन को रखते हुए प्रभावित नहीं होने पर वह इन पर विजय पा लेता है। इसके बाद उपसर्गों का क्रम शुरु होता है। उपसर्ग भी तिर्यञ्च (पशु-पक्षियों द्वारा) कृत उपसर्ग (कष्ट), मनुष्य कृत उपसर्ग एवं देव कृत उपसर्ग। इन उपसर्गों से पार होना अत्यन्त कठिन होता है। यह एक ऐसी परीक्षा है जिसमे सफल हो जाये तो कुछ विशेष उपलब्धि हो जाती, पर उसे विशेष मान लेने वाला साधक आगे नहीं बाद पायेगा। असफल होने की स्थिति मे चित्त भ्रम आदि विपरीत स्थितियां उत्पन्न होती है।

अंततः योग की महत्ता योगशास्त्र में हेमचंद्राचार्य के शब्दों में दृष्टव्य है-

योग समस्त विपत्ति रूपी लताओं के वितान को काटने के लिए तीखी धार वाले परशु के समान है। योग के माहात्म्य से समस्त विपत्तियाँ नष्ट हो जाती है और मुक्तिरूपी लक्ष्मी स्वयं ही वश में हो जाती है। योग के प्रभाव से विपुलतर पाप भी उसी प्रकार विलीन हो जाते है, जैसे प्रचंड वायु के चलने से मेघों कि सघन घटाएं विलीन हो जाती है।[१७]

सन्दर्भ

१. युजृपी योगे, गण ७ हेमचन्द्र धातुपाठ, युजि च समाधौ- गण ७ हेमचन्द्र धातु

२. 'द्वात्रिंशिका'- आचार्य यशोविजय

३. योगविंशिका- आचार्य हरिभद्रसूरी

४. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः- पातञ्जल योगसूत्र १.२

५. Studies in Jaina Philosophy by Nathmal Tatia Pg. २६२

६. सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः- तत्त्वार्थसूत्र1.1-1, उमास्वाति

७. तत्त्वार्थसूत्र 1.७. १३, उमास्वाति

८. पुरुषार्थ सिद्ध्यु पय- आचार्य अमृतचन्द्र, अनु. नाथुरं प्रेमी, p. २५, श्लोक ४३

९. स्थानांग सूत्र ३.३.२७ तथा औपपातिक तपोधिकार

१०. सं. नरेन्द्र भानावत 'जिनवाणी' जनवरी-मार्च १९७२ पृ. ८२

११. एगग्गमणसन्निवेसयाए णम् चित्त निरोहं करेइ- उत्तराध्ययन २९.२५

१२. बृहद् द्रव्यसंग्रह -५६
१३. स्थानांग-सूत्र ४६९
१४. आचारांग सूत्र १.८, उत्तराध्ययन 3.1
१५. आचार्य हरिभद्रसूरी" योगबिन्दु" ७२.९९ (जैन योग ग्रन्थ चतुष्टय), जिनवाणी (ध्यान योग: रूप और दर्शन) प. १०
१६. भगवतीसूत्र ८.३, हेमचन्द्राचार्य योगशास्त्र १.८-९
१७. हेमचन्द्राचार्य योगशास्त्र १.५-६

----०----

योग निर्मित मानवीय व्यवहार का शुभपथ

डॉ. उर्वशी सी. पटेल
सी.यु.शाह आर्ट्स कॉलेज
लाल दरवाजा, अहमदाबाद, गुजरात, भारत

योग का हेतु मानव जीवन को सरलता से ईश्वर तक पहुंचना है। मानसिक विचारों और अनुभव के साथ जीवन-उपयोगी विचारों को महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र में दिया है, जो हमारे लिए प्रेरक बन रहा है। महर्षि पतंजलि ने दूसरे साधन पाद नामक अध्याय में हमारे व्यवहार को "क्रियायोग" के माध्यम से समझाया है। जैसा की तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान क्रियायोग है।[१] बाद में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश आदि पांच क्लेश का निरूपण करके उनके नाश का उपाय भी ज्ञान प्राप्ति के रूप में बताया है। आत्मज्ञान के आगे क्लेशों का अंधकार रहता नहीं है और ध्यान के माध्यम से मन शांत रहता है। हम दुःख का कारण कर्म का बीज है, एसा जानकर उसे मानसिक रुप से छोड़ना सीख जाते हैं। कोई भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में यदि विघ्न हो तो व्यक्ति शांत रहता है, जोगी बन जाता है। यह सब केवल स्वानुभव से ही सिद्ध होता है। मनुष्य को स्वयं ही प्रयत्न करना पड़ता है और ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य यदि योग का अनुसरण करें तो मानवीय व्यवहार की नई शुरुआत होती है।

हम अपने मन की अशुद्धता से भाग नहीं सकते। मन जब निर्मल हो जाता है, तब ही हमें शांति प्राप्त होती है। तब मनुष्य अंदर बाहर सब जगह परम तत्त्व का दर्शन करता है। यह योग निर्मित मानवीय व्यवहार का शुभपथ है। योग केवल मंत्र, आसन, प्राणायाम तक ही सीमित नहीं है। योग की अंतिम स्थिति समाधि अवस्था तक मनुष्य को पहुंचना है। जहां वह परमतत्त्व में एक हो जाता है। गीता में इसीलिए कहा है कि,

"योग: कर्मसु कौशलं" अर्थात् बाह्यकर्म से जब हम पवित्र होकर आंतरिक शुद्ध मन प्राप्त करते हैं। तब हमें कौशल प्राप्त होता है। यानी ईश्वर के सानिध्य तक हम पहुंच सकते हैं।

जैसे कृषिकार्य के लिए उत्तम बीज को संजोग के रखना पडता है। ऐसे ही महर्षि पतंजलि ने साधना के अनुभवों का उत्तम बीज तैयार करने के लिए कहते हैं। महर्षि पतंजलि ने योग की साधना के लिए तीन अंग कहे हैं। तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान यह तीनों अंगों को “क्रियायोग” कहते है। जैसे गंगा, जमुना, सरस्वती तीनों नदी इकट्ठी होती है। तो त्रिवेणी संगम का दृश्य बहुत सुंदर होता है। ऐसे ही क्रियायोग में तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान का समन्वय ही मनुष्य जीवन को कृतार्थ कर देता है। महर्षि पतंजलि ने तप का भी महत्व बताया है। जो व्यक्ति तपस्वी नहीं होता है, उसको योग सिद्ध नहीं होता है। अनादि काल से जो कर्म वासना जीवित है। उसको अशुद्ध मायाजाल से अगर हम नहीं छुड़ाएं, तो तप का होना संभव नहीं है।[२] तप का अनुष्ठान न किया जाए तो अपनी ही धातुओं में विषमता उत्पन्न होती और उसे हम कभी ईश्वर की निकट नहीं जा सकते हैं।[३] इसीलिए इतनी तपश्चार्य आवश्यक है कि- जैसे की अग्नि से जले हुए बीज वापस अंकुरित नहीं होते हैं वैसे ही समाधि सिद्ध पुरुष के द्वारा दूसरे कर्म बंधन या क्लेश उत्पन्न नहीं होता। तप का मुख्य कार्य स्वाध्याय है कि- तन-मन और वचन की शुद्धि करना है। स्वाध्याय यानी प्रणव आदि पवित्र मंत्रों का जाप अथवा मोक्षशास्त्र का अध्ययन करना जरुरी है।[४] यानी कि सब कर्म परम गुरु ईश्वर को समर्पण होना और उनके फल की आसक्ति का भाव ना होना है। स्वाध्याय में हमें सबसे पहले रुचि रखनी चाहिए क्योंकि, उससे विवेक और विचार शक्ति का विकास होता है और अपने आप स्वतंत्र निर्णय लेने की बुद्धि विकसित होती है। विचार शक्ति को दृढ बनाने के लिए सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ स्थिति में सरल व शांत रहना बहुत उपयोगी है।

मनुष्य के हृदय में भावना रहती है। ध्यान कितना भी गहन हो किंतु उसमें यदि भावना या प्रेम नहीं होता है तो वह ज्ञान जड़ हो जाता है और उसमें विलासिता आ जाती है। भावना के साथ विवेक जुड़े तो उसे हम समस्यारुप जीवन विकार को दूर कर सकते हैं। ईश्वरप्रणिधान में ईश्वर के मंगल दर्शन के लिए आतुर होकर व्याकुलता से जो क्रियायोग का आचरण करता है।[५] वह अंततः ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन पाता है और उनके श्री मुख से जो मधुर शब्द निकलते हैं वह भी सुन पाता है। क्रियायोग के दो हेतु है, एक हेतु जिसमें समाधि प्राप्ति के द्वारा अलग-अलग क्लेशों को दूर करना है और दूसरा हेतु है, योग की समाधि तक पहुंचाना। योग मार्ग में जिस व्यक्ति को आगे बढ़ना है। उनको यह सिद्धि प्राप्त करनी ही पड़ती है। संसार के विषय रहकर भी संपूर्ण शांत रहना सीखना पड़ता है। लेकिन क्रियायोग के बीच में पञ्च क्लेश अवरोधक बनते है। जिनको दूर करना चाहिए।[६]

महर्षि पतंजलि ने क्लेश के पांच प्रकार भी बताएं हैं। जैसे की अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।[७] जिनकी पकड़ में से मनुष्य को छूटना चाहिए। क्योंकि यह पांचो क्लेश बहुत ही दु:खदायक है। उनसे अंत में कष्ट ही उत्पन्न होता है। महर्षि पतंजलि ने प्रथम क्लेश अविद्या के विचार को सुचारू रूप से समझाने के लिए चार प्रकार दिए हैं। जैसे की अनित्य में नित्य बुद्धि और अपवित्र में पवित्र बुद्धि, दु:ख में सुख मानने की वृत्ति, अनात्मक पदार्थ में आत्मा मानने की बुद्धि करना। इन चारों से व्यक्ति इस जगत के भौतिक पदार्थ को, अपने शरीर को सनातन समझता है। जब व्यक्ति जो शरीर की सुंदरता के पीछे पड़ा रहता है। वह अपवित्र में पवित्र बुद्धि करता है जो अविद्या है। तीसरा प्रकार है दु:ख को सुख मानने की बात, ज्यादातर संसार में आसक्त रहने वाले व्यक्ति जो दु:खदायक है। यानि कि जिसका परिणाम अच्छा नहीं है। उन बातों को भी सुखदायक मानता है। संसार में कोई रोग है, निर्धनता है, वृद्धावस्था है

या कोई भावना से जुड़े सुख-दु:ख वह भी एक दिन जाने वाले हैं। यह सोचकर मनुष्य उन विषयों में से मन को शांत कर सकता है। लेकिन वह दु:ख में ही रहेगा तो उसका आध्यात्मिक विकास हो नहीं सकता। चौथा अविद्या का प्रकार है अनात्म में आत्मा बुद्धि करना, जिस व्यक्ति शरीर या कोई जड़वस्तु को यह मेरा है, मेरे साथ ही रहेगा, इस भावना से रहता है, तो वह सनातन सत्य से विपरीत विचार करता है क्योंकि, मनुष्य शरीर और जगत् के लिए ऐसा कहा गया है कि "सरति इति संसार" यानी की कोई वस्तु शाश्वत नहीं है।

अविद्या के और भी प्रकार योगसूत्र में समझाएं हैं क्योकि, अविद्या जो संसार की बीज मानी गई है।[८] 'अविद्या' शब्द का अर्थ हम विद्या का विरोधाभासी मिथ्याज्ञान ऐसा ले सकते हैं। जैसे की अमित्र यानी की जहां मित्रता का अभाव हो एसा उदाहरण भी ले सकते है। ऐसे ही 'अगोष्पदम्' का अर्थ गाय के पैर का अभाव अथवा गोष्पद मात्र नहीं होता, किंतु 'गोष्पद से विरुद्ध बड़ा कोई प्रदेश' गोष्पद का अभाव होता है। अन्य गोष्पद से ही अन्य वस्तुएं स्वीकार कर सकतें हैं। इसी प्रकार अविद्या शब्द से विद्या का अभाव अथवा अविद्या मात्र नहीं है, किंतु विद्या से विपरीत अन्य मिथ्याज्ञान समझना चाहिए।[९]

दूसरे क्लेश अस्मिता की बात करते हुए महर्षि पतंजलि समझाते हैं कि, जब व्यक्ति की दृक् शक्ति यानी दर्शन और विचार करने की शक्ति दोनों एक हो जाती है, उसमें भेद नहीं होता है। तो उसको अस्मिता कहते हैं।[१०] यानी व्यक्ति में जड़ वस्तु या पदार्थ कुछ भी देखें, उसमें वह विचारों के द्वारा रहता है। यानी की उसमें राग शक्ति का विकास होता। एक बात और है कि, जीवन को धारण करने के लिए, उसके पोषण के लिए और अन्य व्यवहार के लिए हमको अस्मिता की जरूरत पड़ती है। लेकिन उसमें राग बुद्धि अगर रह जाए तो वह नुकसान कारक बनती है। जगत् में जो भी दिखता है, यदि हम आत्म भाव से देखें तो यह अस्मिता क्लेश नष्ट हो

जाता है। और मिथ्या अहंकार को छोड़कर व्यक्ति तटस्थ हो जाता है। उसमें राग, द्वेष, कपट आदि प्रकट नहीं होते हैं।

मनुष्य के जीवन में तीसरा क्लेश 'राग' का स्थान भी है। हम जानते हैं कि, स्नेह या प्रेम के सिवाय हम कल्याण कारक कोई भी चीज कोई भी वर्धन कर नहीं सकते। किंतु यदि वही प्रेम अति भी हो जाएतो उसे अहंकार पैदा होता है। सुख को जानने वाला, सुख का स्मरण करके, सुख के लिए और उसके साधन के लिए जो तृष्णा या लोभ होता है- उसको राग कहते हैं।[११] यह राग शारीरिक या मानसिक कोई भी प्रकार का हो सकता है, दोनों राग किसी को भी नुकसान पहुंचाते हैं- तब वह क्लेश कहा जाता है। कभी-कभी उसमें व्यक्ति स्वयं भी दु:खी होता है। यदि यही राग ईश्वर के प्रति हो जाए तो कल्याण कारक बन जाता है। जैसे की कोई औषधि कड़वी होती है, फिर भी हम उसको पीते हैं और हमें लाभ होता है। वैसे ही राग के विपरीत जो हमारे लिए अच्छा है। उसका अनुसरण किया जाए तो वह हमारे जीवन के लिए औषधि रुप है।

मनुष्य के लिए चतुर्थ क्लेश द्वेष करना कभी अच्छा नहीं होता है। क्योंकि जब किसी की निंदा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं, टीका करते हैं तो हम सत्य से विपरीत दिशा में जाते हैं। जो दुःख का कारण बनता है।[१२] क्योंकि, वास्तव में यह जगत् ईश्वर से ही निर्मित हुआ है। यह भावना हम भूल जाते हैं। पांचवा क्लेश अभिनिवेश है। अभिनिवेश का अर्थ होता है, मृत्यु का भय। कोई भी जीवजंतु हो, मनुष्य हो, उड़ने वाले पक्षी हो, प्राणी हो सभी को जीने की इच्छा रहती है। कभी-कभी मृत्यु का भय उसको हैरान कर देता है। सब मुक्त जीवन का आनंद लेना चाहते हैं।[१३] पर हम जानते हैं कि, वास्तव में ये जगत् नाशवान है। जो वस्तु-पदार्थ, जीव जन्म लेता है, वह नष्ट होते है। जब आयुकाल समाप्त हो जाए या विपरीत परिस्थिति हो तब यह मृत्युभय का हमें त्याग करना चाहिए। क्योंकि यदि यह अभिनिवेश के प्रति मनुष्य को ज्यादा लगाव होने लगेगा तो इसकी

आवश्यकता ना होने पर भी वह व्यक्ति अपने जीवन को सुरक्षित करने के लिए, दूसरों के जीवन को समस्याओं में डाल देता है या तो नष्ट करता है।

इस विमर्श से हम जान सकते हैं कि हमको पांच क्लेशो का नाश करना चाहिए। क्रियायोग करने मात्र से यह पांच क्लेश हल्के हो जाते है, या सूक्ष्म बन जाते हैं। फिर बाद में वह जागृत होते हैं। जैसे कोई बीज पड़ा है, उसको यदि पानी का एक बूंद भी मिल जाए तो वह अंकुरित हो जाता है।[१४] वैसे ही मनुष्य का छुपा हुआ क्लेश कभी ना कभी वह बाहर आएगा इसीलिए जीवन श्रेय के लिए हमको तैयार होना है और आत्मा-परमात्मा एकत्व तक हमको पहुंचना है। तभी हमारे जीवन की सार्थकता रहेगी। इसीलिए हमको दु:खों के कारण, उसके नाश और जीवन में उसके प्रति जागृत होना है। यदि ईश्वर को समर्पित होना हमारा स्वभाव हो जाएगा। तो हमारे कर्म ही ईश्वर की शक्ति, परमतत्त्व की शक्ति को ध्यान में रखते हुए होते हैं। कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। तो मनुष्य में सुख-दु:ख आदि रहता नहीं है। वह आसक्ति रहित कर्म करता है। क्लेश यदि अत्यंत दुर्बल बन जाते हैं। तब यदि अभ्यास और वैराग्य होता है। तो उसे विवेक ख्याति उत्पन्न होती है।

यदि पांच क्लेश को हम निष्काम कर्म के माध्यम से दूर कर सके। तो आगे चलकर कार्य कारण भाव से पवित्र कर्म उत्पन्न होता है। यानी की जो कर्म हम पहले आसक्ति से करते थे, वह कर्म यदि हम निष्काम भाव से करें तो वही कर्म हमें बंधन में नहीं डालेगा अपितु ईश्वर सानिध्य में ले जाएगा। मनुष्य के जीवन में कर्म क्लेश उत्पन्न करते हैं। इसी कारण से कर्मक्लेश से उत्पन्न जो दु:ख होता है।[१५] उसका निराकरण करना चाहिए जिसको हम विवेकख्याति से नष्ट कर सकते हैं। लेकिन जब ज्ञान का प्रकाश होता है। तब क्लेश अपने आप नष्ट हो जाता है। जैसे की सूर्य की किरण जब पृथ्वी पर आती है। तब सर्वत्र रात्रि का अंधकार नष्ट हो जाता है, अदृश्य हो जाता है और व्यक्ति अपना कार्य सुचारू रूप से

कर सकता है एसे ही मनुष्य को आध्यात्मिक उन्नति और सांसारिक सुखाकारी के लिए, ज्ञान के लिए योगसूत्र में दिए गए तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान जैसे शुभपथ पर हमेशा चलना चाहिए।

सन्दर्भ-

1) तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोग:। योगसूत्र, २.१
2) अनादिकर्मक्लेशवासना चित्रा प्रत्युपस्थितविषयजाला चाशुद्धि:- नान्तरेण तप: सम्भेदमापद्यते इति तपस उपादानम्। २.१ भाष्य, पृ. 133
3) तावन्मात्रमेव तपश्चरणीयं न यावता धातुवैषम्यमापद्येतेत्यर्थ: २.१ भाष्य, पृ. 134
4) स्वाध्याय: प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा। २.१ भाष्य, पृ. 133
5) ईश्वर प्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणम् तत्फलसंन्यासो वा।.२.१ भाष्य, पृ. 133
6) योगयुक्तप्रथम योगी युंजमानो-अभिधीयते। विष्णु पुराण 6/7/33
7) अविद्या-अस्मिता- राग-द्वेष-अभिनिवेशा: पञ्च क्लेशा:। २.३
   योगसूत्र क्लेशा इति पञ्च विपर्यया इत्यर्थ:। भाष्य पृ-१३७
8) स ह्यासेव्यमान: समाधिं भावयति क्लेशांश्च प्रतनू करोति।
   प्रतनूकृतान्क्लेशान्प्रसंख्यानाग्निना दग्धबीजकल्पान प्रसवधर्मिण: करिष्यतीति। २.२, भाष्य, पृ. 136
9) तथा अगोष्पदं न गोष्पदाभावो न गोष्पदमात्रं किंतु देश एवं ताभ्यामन्यद्वस्त्वन्तरम्। एवम विद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभाव: किं तु विद्याविपरीतं ज्ञानान्तरमविद्येति। २.५ योगसूत्र भाष्य, पृ.१४४
10) दृग्दर्शनशक्योरेकात्मतेवास्मिता। २.६, योगसूत्र भाष्य, पृ. १४९
11) सुखानुशयी राग:। योगसूत्र २.७
12) दु:खानुशयी द्वेष:। योगसूत्र २-८
13) स्वरसवाही विदुषो-अपि तथा रूढो-अभिनिवेश:। योगसूत्र २.९
14) सन्तु क्लेश का, दग्धस्त्वेषां प्रसंख्यानाग्निना बीजभाव इत्यर्थ:। २.४, योगसूत्र भाष्य, पृ. १४१
15) परिणामतापसंस्कारदु:खै:-गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वे विवेकिन:। २.१५, योगसूत्र

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:-

1) पतंजलि योगसूत्र
   संपादक- डॉ .गौतम पटेल

अनुवादक- श्री राम कृष्ण तुलजाराम व्यास
प्रकाशन- संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर, गुजरात
आवृत्ति 2004

2) भारतीय दर्शन का इतिहास, *(मूल: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1922)*
सम्पादक- सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता
पुनर्मुद्रण: मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी (1992).

3) पतंजलि के योगसूत्र और व्यासभाष्य
मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 2001

4) योगसूत्र में व्यक्ति शुद्धता और शक्ति, योग के सिद्धांत और अभ्यास
संपादक: नट जैकबसन,
प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

5) भारतीय दर्शन खंड 2,
सम्पादक- सर्वपल्ली राधाकृष्णन
प्रकाशक- राजपाल एंड सन्, दिल्ली
आवृति-१

---०---

अष्टांग योग में ध्यान वैशिष्टय

Dev Prakash Gujela
Ph. D. Scholar, PG Department of Sanskrit
Magadh University, Bodh-Gaya

भूमिका

योग भारतीय संस्कृति और दर्शन का एक अभिन्न अंग है। यह केवल शारीरिक अभ्यास नहीं है, बल्कि मन, शरीर और आत्मा के समग्र विकास का माध्यम है। योग की उत्पत्ति वैदिक काल से मानी जाती है और इसके विभिन्न पहलुओं को ऋषियों और मुनियों ने विकसित किया है। योग का उद्देश्य व्यक्ति को आत्म-ज्ञान और आध्यात्मिक शांति की ओर ले जाना है। पतंजलि योगसूत्र जो योग का महत्वपूर्ण ग्रंथ है, अष्टांग योग की संपूर्ण प्रणाली को स्पष्ट करता है।

अष्टांग योग जिसका अर्थ है "आठ अंगों का योग" योग का एक व्यापक और गहन रूप है। यह आठ अंगों पर आधारित है: यम (नैतिक अनुशासन), नियम (व्यक्तिगत अनुशासन), आसन (शारीरिक मुद्राएँ), प्राणायाम (श्वास नियंत्रण), प्रत्याहार (इंद्रियों का नियंत्रण), धारणा (एकाग्रता), ध्यान (ध्यान), और समाधि (आत्मा का सर्वोच्च अवस्था)। इन आठ अंगों का पालन करते हुए व्यक्ति शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति कर सकता है।

ध्यान, अष्टांग योग का सातवां अंग है और इसे विशेष महत्त्व दिया गया है। ध्यान का शाब्दिक अर्थ है 'चिंतन' या 'मनन'। यह मन को एकाग्र और शुद्ध करने की प्रक्रिया है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और समाधि की प्राप्ति कर सकता है। ध्यान से व्यक्ति अपने आंतरिक स्वभाव को जान सकता है और आत्मा की शांति प्राप्त कर सकता है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य अष्टांग योग में ध्यान के महत्त्व, उसकी प्रक्रिया और उसके लाभों का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन न केवल योग के सिद्धांतों को समझने में सहायक होगा बल्कि इसे अपने जीवन में लागू करने के लिए प्रेरित करेगा।

कुंजी शब्दः अष्टांग योग, ध्यान, मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य, भावनात्मक स्थिरता, आत्म-विश्लेषण, एकाग्रता।

अष्टांग योग के आठ अंग-

अष्टांग योग जिसे पतंजलि योगसूत्र में वर्णित किया गया है, योग की आठ प्रमुख शाखाओं का संग्रह है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि॥

ये आठ अंग व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास के विभिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

1. यम (नैतिक अनुशासन)-

यम पांच नैतिक अनुशासन हैं जो व्यक्ति के बाहरी व्यवहार और समाज के प्रति जिम्मेदारियों को निर्धारित करते हैं:

अहिंसा(अहिंसा): किसी भी जीवित प्राणी के प्रति हिंसा न करना।

सत्य (सत्य): सत्य बोलना और ईमानदार होना।

अस्तेय (चोरी न करना): किसी भी प्रकार की चोरी न करना।

ब्रह्मचर्य (संयम): यौन संयम और मानसिक संयम का पालन।

अपरिग्रह (अधिक संग्रह न करना): आवश्यकता से अधिक सामग्री या धन का संग्रह न करना।

2. नियम (व्यक्तिगत अनुशासन)

नियम पाँच व्यक्तिगत अनुशासन हैं जो व्यक्ति के आंतरिक व्यवहार और आत्म-अनुशासन को निर्धारित करते हैं:

शौच (शुद्धि): शरीर और मन की शुद्धि।

संतोष (संतोष): वर्तमान स्थिति में संतुष्ट रहना।

तप (तपस्या): आत्म-अनुशासन और कठिनाइयों का सामना करना।

स्वाध्याय (आत्म-अध्ययन): धार्मिक ग्रंथों और आत्म-ज्ञान का अध्ययन।

ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के प्रति समर्पण): ईश्वर के प्रति समर्पण और आस्था।

3. आसन (शारीरिक मुद्राएँ)

आसन का अर्थ है स्थिर और आरामदायक शारीरिक मुद्राएँ। यह शारीरिक स्वास्थ्य, लचीलापन और संतुलन को बनाए रखने में सहायक है। योग में विभिन्न आसनों का अभ्यास किया जाता है, जो शरीर की विभिन्न समस्याओं को दूर करने में सहायक होते हैं।

4. प्राणायाम (श्वास नियंत्रण)

प्राणायाम श्वास नियंत्रण की तकनीकें हैं जो जीवन ऊर्जा (प्राण) को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं। यह मानसिक स्थिरता, शारीरिक स्वास्थ्य और ध्यान की तैयारी के लिए महत्त्व पूर्ण है।

5. प्रत्याहार (इंद्रियों का नियंत्रण)

प्रत्याहार का अर्थ है इंद्रियों का आंतरिक नियंत्रण। यह बाहरी दुनिया से मन को हटाकर ध्यान की ओर ले जाने की प्रक्रिया है। प्रत्याहार में व्यक्ति अपनी इंद्रियों को नियंत्रित करके आंतरिक मनन करता है।

6. धारणा (एकाग्रता)

धारणा का अर्थ है मन को एक बिंदु पर केंद्रित करना। यह ध्यान की प्रारंभिक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने मन को एकाग्र करता है और बाहरी विचलनों से मुक्त होता है। धारणा के माध्यम से मन को स्थिर और शांत किया जाता है।

7. ध्यान (ध्यान)

ध्यान का अर्थ है निरंतर ध्यान की अवस्था। यह मन की शुद्धि और एकाग्रता की उच्चतम अवस्था है, जिसमें व्यक्ति आत्मा के साथ साक्षात्कार करता है। ध्यान के माध्यम से आत्म-ज्ञान और मानसिक शांति प्राप्त की जा सकती है।

8. समाधि (आत्मा का सर्वोच्च अवस्था)

समाधि अष्टांग योग का अंतिम अंग है, जो आत्मा की सर्वोच्च अवस्था है। यह आत्मा और ब्रह्मांड के साथ एकत्व की अवस्था है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण शांति और आत्म-ज्ञान प्राप्त करता है। समाधि की अवस्था में व्यक्ति ईश्वर के साथ एकत्व का अनुभव करता है और सम्पूर्ण मुक्ति प्राप्त करता है।

अष्टांग योग के ये आठ अंग योग का संपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करते हैं, जो व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति की ओर ले जाते हैं। इन अंगों का नियमित अभ्यास व्यक्ति के जीवन को संतुलित, शुद्ध और समृद्ध बना सकता है।

ध्यान का महत्त्व-

अष्टांग योग में ध्यान का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यह आत्म-ज्ञान और आत्मा की शांति प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। ध्यान का अर्थ है 'चिंतन' या 'मनन', जो मन को एकाग्र और शुद्ध करने की प्रक्रिया है। ध्यान के माध्यम से मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और अंततः समाधि की प्राप्ति होती है। निम्नलिखित बिंदुओं में ध्यान के महत्त्व का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है:

1. मानसिक शांति और तनाव मुक्ति-

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने मन को शांति और स्थिरता प्रदान कर सकता है। नियमित ध्यान के अभ्यास से मानसिक तनाव और चिंता कम होती है, जिससे व्यक्ति मानसिक शांति और संतुलन की स्थिति में पहुंचता है।

2. आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्लेषण-

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने आंतरिक स्वभाव को जान सकता है और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह आत्म-विश्लेषण का

एक महत्त्व पूर्ण साधन है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों और अपनी सच्ची पहचान को समझ सकता है।

3. भावनात्मक स्थिरता-

ध्यान के नियमित अभ्यास से व्यक्ति की भावनात्मक स्थिरता में सुधार होता है। यह भावनात्मक संतुलन को बनाए रखने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर सकता है और अत्यधिक भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से बच सकता है।

4. शारीरिक स्वास्थ्य-

ध्यान का प्रभाव केवल मानसिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। नियमित ध्यान से रक्तचाप नियंत्रण, ह्रदय स्वास्थ्य में सुधार और इम्यून सिस्टम की मजबूती होती है। यह शरीर की ऊर्जा को पुनर्जीवित करता है और शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाता है।

5. एकाग्रता और ध्यान-

ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति की एकाग्रता और ध्यान की क्षमता में वृद्धि होती है। यह मन को एकाग्र और केंद्रित रखने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से पूरा कर सकता है।

6. अध्यात्मिक उन्नति-

ध्यान का अंतिम लक्ष्य आत्म-ज्ञान और समाधि की प्राप्ति है। यह व्यक्ति को आत्मा के साथ साक्षात्कार और ईश्वर के साथ एकत्व की ओर ले जाता है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अध्यात्मिक उन्नति कर सकता है और आत्मा की शांति प्राप्त कर सकता है।

7. सामाजिक और नैतिक मूल्यों का विकास-

ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति के सामाजिक और नैतिक मूल्यों में भी सुधार होता है। यह व्यक्ति को अधिक सहिष्णु, दयालु और परोपकारी बनाता है, जिससे समाज में शांति और सद्भावना का वातावरण बनता है।

8. व्यक्तिगत विकास और स्व-नियंत्रण-

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास और स्व-नियंत्रण को बढ़ा सकता है। यह आत्म-अनुशासन और आत्म-संयम को विकसित करने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन को अधिक व्यवस्थित और अनुशासित बना सकता है।

ध्यान का महत्त्व अष्टांग योग में अनन्य है, क्योंकि यह व्यक्ति को आत्म-ज्ञान, मानसिक शांति और आत्मा की शांति प्राप्त करने का मार्ग प्रदान करता है। ध्यान के नियमित अभ्यास से व्यक्ति न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में सुधार कर सकता है, बल्कि आत्मा की गहराईयों को भी समझ सकता है। ध्यान का महत्त्व न केवल व्यक्तिगत विकास में है, बल्कि समाज और विश्व में शांति और सद्भावना को बढ़ाने में भी है।

ध्यान की प्रक्रिया-

ध्यान की प्रक्रिया कई चरणों में विभाजित होती है, जो व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और समाधि की ओर ले जाती है। यह प्रक्रिया मन को एकाग्र और शुद्ध करने की विधियों का समन्वय है। ध्यान की प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण शामिल हैं:

1. प्रारंभिक तैयारी-

स्थान का चयन: ध्यान के लिए शांत और स्वच्छ स्थान का चयन करें जहाँ आपको किसी प्रकार की बाधा न हो।

आसन: ध्यान के लिए एक आरामदायक और स्थिर आसन (जैसे पद्मासन या सिद्धासन) में बैठें। शरीर की स्थिति स्थिर और आरामदायक होनी चाहिए ताकि लम्बे समय तक ध्यान में बैठ सकें।

श्वास पर ध्यान: श्वास को धीमा और गहरा करें। यह मन को शांत करने और एकाग्रता बढ़ाने में सहायक होता है।

2. स्थूल ध्यान-

शरीर की स्थिरता: आसन में स्थिरता प्राप्त करें और शरीर को

पूर्णतः स्थिर रखें।

श्वास की निगरानी: अपनी श्वास की गति और गहराई पर ध्यान केंद्रित करें। श्वास की हर आवक और जावक पर ध्यान दें।

शरीर का स्कैनिंग: शरीर के विभिन्न अंगों को ध्यानपूर्वक महसूस करें और किसी भी तनाव या असुविधा को पहचानें। धीरे-धीरे हर अंग को आराम देने का प्रयास करें।

3. सूक्ष्म ध्यान-

विचारों की शुद्धि: मन में उठने वाले विचारों को बिना किसी प्रतिक्रिया के देखने का अभ्यास करें। विचार आएँगे और जाएंगे, लेकिन उन्हें पकड़ने या उनसे जुड़ने की आवश्यकता नहीं है।

एक बिंदु पर ध्यान: मन को एक बिंदु, जैसे कि नासिका के अग्र भाग या माथे के बीच में स्थित बिंदु पर केंद्रित करें।

मंत्र का उच्चारण: यदि आवश्यक हो, तो मन को केंद्रित करने के लिए किसी मंत्र का जप करें। यह मंत्र कोई भी हो सकता है जो आपको शांति और स्थिरता प्रदान करे।

4. साक्षात्कार ध्यान-

आंतरिक दृष्टि: अपनी आंतरिक दृष्टि को जागृत करें और आत्मा के साथ साक्षात्कार करने का प्रयास करें। यह आत्मा और ब्रह्मांड के साथ एकत्व का अनुभव है।

समाधि की दिशा में: इस अवस्था में व्यक्ति समाधि की दिशा में अग्रसर होता है, जहाँ आत्मा का सर्वोच्च अवस्था और पूर्ण एकत्व का अनुभव होता है।

5. ध्यान के बाद की प्रक्रिया-

शांतिपूर्ण समापन: ध्यान की प्रक्रिया को धीरे-धीरे समाप्त करें। अचानक से ध्यान से बाहर न आएं, बल्कि धीरे-धीरे अपनी श्वास और शरीर की स्थिति को सामान्य करें।

ध्यान के अनुभव को आत्मसात करना: ध्यान के दौरान प्राप्त अनुभवों को आत्मसात करें और उन्हें अपने जीवन में लागू करने का प्रयास करें।

ध्यान डायरी: अपने ध्यान के अनुभवों को लिखित रूप में संकलित करें। यह आपको अपने ध्यान की प्रगति को समझने और सुधारने में सहायता करेगा।

ध्यान की प्रक्रिया एक गहन और व्यक्तिगत अनुभव है, जो व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और आत्मा की शांति की ओर ले जाती है। यह प्रक्रिया शारीरिक स्थिरता, श्वास की निगरानी, मानसिक एकाग्रता और आत्मा के साक्षात्कार के चरणों में विभाजित होती है। ध्यान का नियमित अभ्यास व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आत्मिक विकास में सहायक होता है। ध्यान की प्रक्रिया को समझकर और उसे नियमित रूप से अभ्यास में लाकर व्यक्ति आत्मा की शांति और समाधि की प्राप्ति कर सकता है।

ध्यान के लाभ-

ध्यान के नियमित अभ्यास से व्यक्ति को मानसिक, शारीरिक, और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं। निम्नलिखित बिंदुओं में ध्यान के प्रमुख लाभों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है:

1. मानसिक शांति और तनाव मुक्ति।
2. ध्यान का सबसे प्रमुख लाभ मानसिक शांति है। ध्यान के अभ्यास से मन शांत और स्थिर होता है, जिससे तनाव और चिंता कम होती है। यह व्यक्ति को वर्तमान क्षण में जीने और मानसिक शांति प्राप्त करने में सहायक होता है।
3. **आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्लेषण-**

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने आंतरिक स्वभाव को जान सकता है और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह आत्म-विश्लेषण का

एक महत्वपूर्ण साधन है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों और अपनी सच्ची पहचान को समझ सकता है

4. भावनात्मक स्थिरता-

ध्यान के नियमित अभ्यास से व्यक्ति की भावनात्मक स्थिरता में सुधार होता है। यह भावनात्मक संतुलन को बनाए रखने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपनी भावनाओं को नियंत्रित कर सकता है और अत्यधिक भावनात्मक प्रतिक्रियाओं से बच सकता है।

5. शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार-

ध्यान का प्रभाव केवल मानसिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। नियमित ध्यान से रक्तचाप नियंत्रण, हृदय स्वास्थ्य में सुधार, और इम्यून सिस्टम की मजबूती होती है। यह शरीर की ऊर्जा को पुनर्जीवित करता है और शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाता है।

6. एकाग्रता और ध्यान-

ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति की एकाग्रता और ध्यान की क्षमता में वृद्धि होती है। यह मन को एकाग्र और केंद्रित रखने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपने कार्यों को अधिक प्रभावी ढंग से पूरा कर सकता है।

7. अध्यात्मिक उन्नति-

ध्यान का अंतिम लक्ष्य आत्म-ज्ञान और समाधि की प्राप्ति है। यह व्यक्ति को आत्मा के साथ साक्षात्कार और ईश्वर के साथ एकत्व की ओर ले जाता है। ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अध्यात्मिक उन्नति कर सकता है और आत्मा की शांति प्राप्त कर सकता है।

8. सामाजिक और नैतिक मूल्यों का विकास-

ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति के सामाजिक और नैतिक मूल्यों में भी सुधार होता है। यह व्यक्ति को अधिक सहिष्णु, दयालु और परोपकारी बनाता है, जिससे समाज में शांति और सद्भावना का वातावरण बनता है।

9. व्यक्तिगत विकास और स्व-नियंत्रण-

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विकास और स्व-नियंत्रण को बढ़ा सकता है। यह आत्म-अनुशासन और आत्म-संयम को विकसित करने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति अपने जीवन को अधिक व्यवस्थित और अनुशासित बना सकता है।

10. रचनात्मकता और नवाचार-

ध्यान के माध्यम से व्यक्ति की रचनात्मकता और नवाचार की क्षमता में वृद्धि होती है। यह मन को स्पष्ट और मुक्त रखने में सहायक होता है, जिससे व्यक्ति नई विचार धाराओं और समाधान खोजने में सक्षम होता है।

11. जीवन की गुणवत्ता में सुधार-

ध्यान का नियमित अभ्यास व्यक्ति की जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाता है। यह मानसिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य और आत्म-ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति के जीवन को समृद्ध और संतुलित बनाता है।

ध्यान के लाभ बहुआयामी और व्यापक हैं। यह मानसिक, शारीरिक और आत्मिक विकास के विभिन्न पहलुओं को संबोधित करता है और व्यक्ति के जीवन को संतुलित और समृद्ध बनाता है। ध्यान का नियमित अभ्यास व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और आत्मा की शांति की ओर ले जाता है। यह न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक है, बल्कि समाज और विश्व में शांति और सद्भावना को भी बढ़ावा देता है।

निष्कर्ष-

अष्टांग योग में ध्यान का महत्त्व अत्यधिक है, क्योंकि यह आत्म-ज्ञान, आत्मा की शांति और समाधि प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। अष्टांग योग के आठ अंगों में ध्यान एक महत्त्व पूर्ण अंग है, जो मानसिक, शारीरिक और आत्मिक उन्नति की ओर ले जाता है। ध्यान की प्रक्रिया

व्यक्ति को मानसिक शांति, एकाग्रता और आत्म-विश्लेषण के माध्यम से आत्म-ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होती है।

ध्यान की प्रक्रिया जिसमें प्रारंभिक तैयारी, स्थूल ध्यान सूक्ष्म ध्यान, साक्षात्कार ध्यान और ध्यान के बाद की प्रक्रिया शामिल है, व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्म-ज्ञान और आत्मा की शांति प्राप्त करने में मदद करती है।

ध्यान का नियमित अभ्यास न केवल व्यक्तिगत विकास में सहायक है बल्कि समाज और विश्व में शांति और सद्भावना को भी बढ़ावा देता है। अष्टांग योग के सिद्धांतों का पालन और ध्यान की नियमित प्रैक्टिस से व्यक्ति अपने जीवन को संतुलित, शुद्ध और समृद्ध बना सकता है। ध्यान का महत्त्व जीवन के हर पहलू में स्पष्ट होता है और इसे अपने जीवन में अपनाकर व्यक्ति आत्मा की शांति और समाधि की ओर अग्रसर हो सकता है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची-

- पतंजलि योगसूत्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, 2014
- स्वामी विवेकानंद, राजयोग, अद्वैत आश्रम, 2017
- बी.के.एस., आयंगार, लाइट ऑन योग, हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स इंडिया, 2001
- ओशो, ध्यान योग, डायमंड पॉकेट बुक्स, 2018
- परमहंस योगानंद, ऑटोबायोग्राफी ऑफ अ योगी, योगदा सत्संग सोसाइटी ऑफ इंडिया, 2015
- स्वामी सत्यानंद सरस्वती, अष्टांग योग, बिहार स्कूल ऑफ योगा, 2009
- श्री श्री रविशंकर, अध्यात्म और ध्यान, आर्ट ऑफ लिविंग पब्लिशर्स, 2016
- महर्षि महेश योगी, ट्रान्सेंडेंटल मेडिटेशन, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2008
- स्वामी रामदेव, योग साधना एवं ध्यान, दिव्य योग मंदिर ट्रस्ट, 2012
- ईश्वरप्रसाद शर्मा, योग के आठ अंग, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2003

---०---

उपनिषदों में योग

डॉ. रीटा एच. पारेख
श्री और श्रीमती पी.के. कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण

सारांश-

योग भारतीय षड्दर्शन का प्रमुख अंग है। योग शब्द "युज् समाधौ" आत्मनेपदी दिवादिगणीय धातु में धञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। "युजिर् योगे" तथा "युज् संयमने" इन धातुओं से भी योग शब्द निष्पन्न होता है। इन तीनों धातुओं से योग शब्द का अर्थ क्रमश: समादि, जोड तथा संयमन होता है। योग का जो सुव्यवस्थित स्वरूप हमें पातंजल योगसूत्र में प्राप्त होता है, योग का वही स्वरूप हमें वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, तत्त्वार्थसूत्र आदि शास्त्रों में विस्तारपूर्वक दृष्टिगोचर होता है। योग के संदर्भ में जब हम बात करते है तो इसका विकास व प्रचार-प्रसार वेद व उपनिषदों में देखने को मिलता है। भारतीय ज्ञान परम्परा की उत्पत्ति वेदों से हुई तथा उसका पालन पोषण उपनिषदों में हुआ है। उपनिषदों में योग के महत्व को सैद्धांतिक व व्यावहारिक दोनों रूप में माना गया है। वर्तमान समय में होने वाली अधिकांश समस्याओं का समाधान उपनिषदों से प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों के अध्ययन के माध्यम से मनुष्य संकुचित ज्ञान से अनंत ज्ञान की ओर, सीमित सामर्थ्य से अनंत ऊर्जा की ओर, संसार के दु:खों से अनंत आनन्द की ओर तथा बंधन से अनंत मुक्ति की शाश्वत शांति की ओर प्रस्थान करता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, हमने यहाँ उपनिषदों में प्राप्त योग वर्णन की चर्चा करने का प्रयास किया है।

प्रस्तावना-

योग प्राचीन भारतीय ऋषि मुनियों, तत्ववेत्ताओं द्वारा प्रतिपादित अनमोल ज्ञान विज्ञान से युक्त एक विशिष्ट पद्धति है। इसमें मनुष्य मात्र का

समग्र उत्थान, विकास एवं उत्कर्ष के लिए अनेकाविध उपाय- प्रयोग सन्नियोजित है। जीवन की प्रसुप्त, अविज्ञात व अजागृत शक्तियों का जागरण कर व्यक्तित्व को प्रम शिखर तक पहुंचाने की अपूर्व क्षमता योग के विविध साधन-सामग्रियों में विद्यमान है। अत: इसे मोक्ष साधन भी कहते है। योग शब्द संस्कृत की युज् धातु से बना है। जिसका अर्थ है जुड़ना। जुड़ना एक ऐसी विद्या से जिससे की मनुष्य जीवन का सर्वांगीण विकास हो, तथा वह ब्रम्ह विद्या की प्राप्ति या समाधि की प्राप्ति के लिए अग्रसित हो सकें। योग एक ऐसी जीवन जीने की कला है जिससे मनुष्य अपने जन्म-जन्मान्तरों के कर्म संस्कारों का क्षय करके अपना सर्वांगीण विकास कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। वेदों से लेकर पुराणों तक सर्वत्र योग की महिमा का गुणगान किया गया है। भारतीय दर्शन का मूल मार्ग उपनिषद है। भारतीय दर्शनों की उत्पत्ति की परम्परा उपनिषद् के माध्यम से प्रारंभ हुई तथा दर्शन को उच्चतम शिखर की ओर ले जाकर षड़ दर्शन के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत हुई। योग विद्या का स्तम्भ योग दर्शन को माना जाता है परंतु योग विद्या का आधार वेदों को ही माना जाता है। इन वेदों से निकली योग विद्या का वटवृक्ष स्वरूप उपनिषदों में देखने को मिलता है। गुरू- शिष्य के बीच प्रश्नोत्तर के माध्यम से संवाद, अनेक जिज्ञासाओं का समाधान, जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा तथा आवश्यक तत्त्वों का विस्तार से वर्णन उपनिषदों में मिलता है।

उपनिषदों में योग का स्वरूप-

हिरण्यगर्भ द्वारा उक्त योगविद्या अत्यंत प्राचीन है। भारतीय आध्यात्म ज्ञान का यह प्रमुख अंग है। योग भक्ति और ज्ञान से परिपूर्ण यह विद्या है जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक होती है। अध्यात्मिक चेतना के विकास में योग-साधना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत: प्राचीन उपनिषदों में भी योग के प्रमुख अंगो एवं साधना की विधि आदि का विवेचन अनेकत्र

प्राप्त होता है। उपनिषद् योग के आठ अंगो के साथ ही चित्त की अवस्था आदि का भी विवेचन करता है।

कठोपनिषद् में योग की परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि "इन्द्रियों की स्थिर धारणा को योग कहा जाता है।"[1] क्योंकि ऐसी अवस्था में योग साधक प्रमाद रहित हो जाता है। परन्तु ऐसे समय में योग की अवस्था में उतार-चढाव आते जाते है। इसलिए योग का अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में योग के लाभ के विषय में कहा गया है कि "पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूतों का सम्यक् प्रकार से उत्थान होने पर इनसे संबंधित पाँचों योग विषयक गुणों की सिद्धि होने पर योगाग्निमय शरीर प्राप्त कर लेने वाले साधक को न रोग होता है, न बृद्धावस्था होती है और न ही अकाल मृत्यु प्राप्त होती हैं।"

आगे भी कहा गया है कि "शरीर में स्थूलता कम होना, किसी प्रकार के रोग का न होना, विषयों में आसक्ति न होना, शरीर में तेज का होना, स्वर की मधुरता, शुभ गंध का होना, मल-मूत्र कम होना, ये सब योग की प्रारम्भिक सिद्धि है।"[2]

मैत्रायणी उपनिषद्- षडङ्ग योग, अर्थात् "छः अंगों वाला योग"। इसका वर्णन मैत्रायणी उपनिषद् में आता है। ये छः अंग हैं - प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि।

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
तर्कश्चैत्र समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥

ध्यातव्य है कि इसमें अष्टाङ्ग योग के यम, नियम और आसन को स्थान नहीं दिया गया है। बल्कि 'तर्क' नाम से एक अंग को इसमें समाहित किया गया है।

कैवल्योपनिषद् के अनुसार "श्रद्धाभक्ति ध्यान योगादवेहि।" अर्थात् श्रद्धा, भक्ति और ध्यान के द्वारा आत्मा को जानना योग है।

अमृतनादोपनिषद्- यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्ध रखता है। इसमें योग के छः अंगो का वर्णन मिलता है। यह छः अंग योग के प्रसिद्ध अंगों से थोड़े भिन्न है। प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि ये छः अंगों का वर्णन इस उपनिषद् में मिलता है।

क्षुरिकोपनिषद्- यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है। इसमें योग के छः अंगो का वर्णन मिलता है- आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इसमें किसी आसन विशेष का नाम नहीं है अपितु "आसनामवस्थितः" कहकर इसका वर्णन है।

योगचूडामण्युपनिषद्- यह सामवेद की शाखा से सम्बन्धित है। इसमें आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि- योग के छः अंगो का वर्णन मिलता है। इसके उपरान्त कुछ उपनिषदों में अष्टांग योग का वर्णन मिलता है। इन अष्टांग अंगों की समानता पातंजल योग सूत्र से है।

त्रिशिखिब्राम्हणोपनिषद्- यह शुक्ल यजुर्वेदीय परम्परा से सम्बन्ध रखता है। अष्टांग योग के साथ-साथ कर्मयोग व ज्ञानयोग का भी वर्णन इसमें मिलता है।

तेजबिन्दु उपनिषद्- इसमें योग के १५ अंगों के साथ-साथ परमात्मा के स्वरूप का वर्णन मिलता है। यम, नियम, आसन, प्रत्याहर, धारणा, समाधि आदि तथा जीवनमुक्ति व विदेह मुक्ति समाधि का विवेचन भी इसमें है।

यम-नियम-

मुण्डकोपनिषद् में परमेश्वर से यम-नियमादि की उत्पत्ति बताते हुए आगे कहा गया है कि "विविध देवता, साध्यगण, मनुष्य, पशु-पक्षी, प्राण-अपान वायु, ध्यान, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और यज्ञादि के अनुष्ठान की विधि सभी उससे उत्पन्न हुए है" ।[३]

योग साधना के आठ अंग है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से अधिकांश अंग किसी न किसी रूप में उपनिषदों में प्राप्त हो जाते है। पतंजलि ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रम्हचर्य को 'यम' माना है। मुण्डकोपनिषद् में सत्य का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि 'सत्य' ही विजयी होता है, झूठ नहीं। सत्य से ही देवयान मार्ग परिपूर्ण है। जिससे कामनारहित ऋषिगण उस सत्यस्वरूप ब्रह्म के उत्कृष्ट धाम की ओर गमन करते है" ।[४]

छांदोग्यपनिषद् में ब्रम्हचर्य-पालन के फलस्वरूप ब्रम्हलोक प्राप्ति का होना बताते हुए कहा गया है कि उस ब्रम्हलोक में जो मनुष्य ब्रम्हचर्य के द्वारा 'अर' और 'ण्य' नामक दोनों समुद्रों को प्राप्त करते है, उन्हीं को इस ब्रम्हलोक की प्राप्ति होती है। उनकी सम्पूर्ण लोकों में इच्छानुसार गति हो जाती है।[५]

योगसूत्र में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान को नियम के अंतर्गत माना गया है। आंतरिक शौच के विषय में छांदोग्योपनिषद् में कहा गया है कि आहार के शुद्ध होने पर अंत:करण शुद्ध हो जाता है, अन्त:करण की शुद्धिहोने पर स्मृति निश्चल होती है तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर संपूर्ण ग्रंथियों की निवृत्ति हो जाती है।[६]

तप को परिभाषित करते हुए बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया है कि व्याधि युक्त अर्थात् रोगग्रस्त पुरुष का ताप एवं मृत व्यक्ति को वन में ले जाना तथा अग्नि में प्रतिष्ठित करना, निश्चित रूप से परम तप कहा गया है, जो इस प्रकार जानता है, वह परम सत्य लोक को जीत लेता है।[७]

कठोपनिषद् में ईश्वर प्रणिधान के विषय में बताते हुए कहा गया है कि साधक को ईश्वर की सत्ता तथा उसकी प्राप्ति के विषय में दृढ़निश्चयी होकर निरंतर ईश्वर का चिंतन व ध्यान करके उन्हें प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार के भाव से युक्त साधक को परमात्मा का तात्विक स्वरूप स्वयं उसके शुद्ध हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है।[८]

मुण्डकोपनिषद् के अनुसार शरीर के भीतर अर्थात् हृदय में स्थित प्रकाशस्वरूप और परम पवित्र यह परमात्मा सत्यभाषण, तप और ब्रम्हचर्यपूर्वक यथार्थ ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त होता है, जिसे समस्त दोषों से मुक्त यत्नशील साधक ही देखने में समर्थ होते है।[९]

श्वेताश्वेतरोपनिषद् में सत्य व तप के विषय में कहा गया है कि "तिलों में तेल, दहीं में घी, स्त्रोतों में जल तथा अरणियों में अग्नि के समान ही परमात्मा अपने अन्त:करण में छिपा हुआ है। जो साधक परमात्मा को सत्य तथा संयमरूपी तप के द्वारा देखता है अर्थात् उनका चिंतन करता रहता है, परमात्मा उसी साधक के द्वारा ग्रहण किया जाता है।[१०]

आसन-

योगाभ्यास के लिए प्रथमत: उचित आसन का अभ्यास करना होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में ध्यान के लिए उपर्युक्त आसन ग्रहण करने के विषय में बताते हुए कहा गया है कि "विद्वान पुरूष को सिर, ग्रीवा तथा वक्ष:स्थल, इन तीनों को सीधा और स्थिर करके, समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में सन्निविष्ट करके, ॐकार रूपी नौका द्वारा सम्पूर्ण भयावह प्रवाहों को पार कर लेना चाहिए।" [११]

प्राणायाम-

प्राणों का आयाम ही प्राणायाम है। श्वेताश्वेतरोपनिषद् के अनुसार "विद्वान पुरूषों को आहार-विहार आदि समस्त क्रियाओं को विधिवत् सम्पन्न करते हुए प्राणायाम क्रिया करके प्राण के सूक्ष्म हो जाने पर नासिका द्वारा उनको बाहर निकाल देना चाहिए। जिस प्रकार दुष्ट घोड़ों से युक्त रथ को सारथि सावधानी से लक्ष्य की ओर ले जाते है, उसी प्रकार इस मन को सावधान होकर वश में कर लेना चाहिए।"

बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राणायाम का महत्त्व बताते हुए ऋषि याज्ञवल्क्य कहते है कि "प्राण से प्राणन क्रिया करने वाली अर्थात् श्वास लेने वाली, अपान से अपान क्रिया करने वाली, व्यान से व्यान क्रिया करने

वाली तथा उदान से उदान क्रिया करने वाली वह तुम्हारी आत्मा सर्वान्तर है।"[१२]

प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि "इस शरीर रूपी पुर अर्थात् नगर में पाँच प्राण रूप अग्नियाँ ही जाग्रत रहती है। यह अपान ही गार्हपत्य अग्नि है। व्यान ही आन्वाहार्यपचन नामक अग्नि अर्थात् दक्षिणाग्नि है। गार्हपत्य अग्नि से ले जायी गयी आहवनीय अग्नि ही 'प्रणयन प्रक्रिया' अर्थात् उठाकर ले जाये जाने के कारण प्राण है।[१३] इसी में प्राणवायु के विषय में बताते हुए कहा गया है कि वह प्राण गुदा और उपस्थ में अपान वायु को नियुक्त करता है तथा स्वयं मुख और नासिका द्वार विचरता हुआ, नेत्र और श्रौत्र में प्रतिष्ठित होता है। शरीर के मध्य में समान वायु ही रहता है। यही प्राणाग्नि में हवन किए हुए अन्न को समस्त शरीर में समानतापूर्वक वितरित करता है। उसी प्राण रूपी अग्नि से सात ज्वालायएं उत्पन्न होती है।

कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि प्राण को ऊर्ध्वगामी तथा अपान वायु को अधोगामी करने वाले, हृदय में स्थित उस वामन अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भजने योग्य ब्रह्म की समस्त देवगण उपासना करते है।[१४]

प्रत्याहार-

कठोपनिषद् में प्रत्याहार के विषय में बताते हुए कहा गया है कि "विवेक युक्त बुद्धि तथा नियंत्रित मन से सम्पन्न मनुष्य की इन्द्रियाँ श्रेष्ठ सारथि के नियंत्रित घोड़ों की भाँति वश में रहती है। आगे कहते है कि विवेकयुक्त बुद्धि रूप सारथि से सम्पन्न, मन रूपी लगाम को वश में रखने वाला मनुष्य संसार-सागर से पार होकर परब्रह्म पुरूषोत्तम भगवान के उस सुप्रसिद्ध परम पद को प्राप्त हो जाता है।[१५]

धारणा-

मन को एकाग्रचित्त करके ध्येय विषय पर लगाना पड़ता है। किसी एक विषय को ध्यान में बनाए रखना। चित्त को किसी एक विचार में बांध लेने की क्रिया को धारणा कहा जाता है। पतंजलि के अष्टांग योग

का यह छठा अंग है। इससे पूर्व के पांच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार कहे गए हैं जो योग में बाहरी साधन माने गए हैं । प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के भीतरी अंग या साधन कहे गये हैं। धारणा शब्द 'धृ' धातु से बना है। इसका अर्थ होता है धारण करना, संभालना, थामना या सहारा देना। योग दर्शन के अनुसार- "देशबन्धश्चित्तस्य धारणा"(योगसूत्र 3/1) अर्थात्- किसी स्थान (मन के भीतर या बाहर) विशेष पर चित्त को स्थिर करने का नाम धारणा है, अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार द्वारा इंद्रियों को उनके विषयों (रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श) से हटाकर चित्त में स्थिर किया जाता है, स्थिर एवं एकाग्र किये गए चित्त को एक 'स्थान विशेष ' पर रोक लेना ही धारणा है।

ध्यान-

छांदोग्योपनिषद् में ध्यान का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि "ध्यान चित्त से उत्कृष्ट है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यूलोक, जल, पर्वत, देवता और मनुष्य मानों ध्यान करता है। अत: ध्यान के लाभांश के फलस्वरूप ही मनुष्य महानता को प्राप्त करते है। किंतु क्षुद्र, कलहप्रिय, चुगलखोर तथा अन्य के समक्ष ही उनकी निन्दा करने वाले तथा सामर्थ्यवान् भी ध्यान के लाभ का अंश अर्जित करने वाले है। अत: ध्यान की उपासना करनी चाहिए।[१६]

श्वेताश्वेतरोपनिषद् के अनुसार " साधक को अपने शरीर को नीचे की अरणि और प्रणव को उपर की अरणि बनाकर ध्यान के द्वारा निरन्तर मंथन के अभ्यास से काष्ठ में छिपी हुई अग्नि की भाँति हृदय में स्थित परमात्मा को देखना चाहिए।"[१७]

समाधि-

कठोपनिषद् में समाधि अवस्था को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि जब मन के सहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मतत्त्व में भली-भाँति

स्थिर हो जाती है और बुद्धि भी चेष्टा रहित हो जाती है तब उस स्थिति को योगी की परमगति कहते है।

उपर्युक्त आठ अंगों के पालन के द्वारा जीव मोक्षावस्था को प्राप्त करता है।

निष्कर्ष-

उपनिषद् हमारे मोक्षशास्त्र के परम आधार है। मोक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान के बिना हासस्पद है। अतीन्द्रिय ज्ञान के बिना योग साध्य नहीं। अत: उपनिषद् से योग का एक प्रकार से अविनाभूत सम्बन्ध है। उपनिषद् काल में योग का सर्वांगीण विकास एवं संवर्धन हुआ है। योग पूर्व काल में भारत तक ही सीमित था, परन्तु अपने परिणामों के कारण आज यह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है योग जीवन पद्धति से चित्त की वृत्तियों में परिवर्तन होता है, जिससे वह लोभ, लालच, ईर्ष्या, क्रोध, मोह, अहंकारादि मनोविकारों से शनै: शनै: दूर होता जाता है। आज भारत ही नहीं अपितु पूरे विश्व के लोग योग की ओर अग्रसर है।

पादटीका-

1. कठोपनिषद्- २/३/११
2. श्वेताश्वेतरोपनिषद्- २/१२,१३
3. मुण्डकोपनिषद्- २/१/७
4. मुण्डकोपनिषद्- ३/१/६
5. छांदोग्योपनिषद्- ८/५/४
6. छांदोग्योपनिषद्- ७/२६/२
7. बृहदारण्यकोपनिषद्- ५/११/१
8. कठोपनिषद्- २/३/१३
9. मुण्डकोपनिषद् - ३/१/५
10. श्वेताश्वेतरोपनिषद्- १/१५
11. श्वेताश्वेतरोपनिषद्- २/८
12. बृहदारण्यकोपनिषद्- ३/४/१
13. प्रश्नोपनिषद्- ४/३

14. कठोपनिषद्- २/३/१६
15. कठोपनिषद्- १/३/६,९
16. छांदोग्योपनिषद् - ७/६/१
17. श्वेताश्वेतरोपनिषद् - १/१४

----०----

योग और स्वास्थ्य लाभ

डॉ. शोभना आर.चांपानेरी

संस्कृत विभागाध्यक्ष

श्रीमती जे.पी. श्रॉफ आर्ट्स कॉलेज, वलसाड

"भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥"[1]

अर्थात् सभी धर्म-कर्म, योग, ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति आदि सत्कर्म वेदों द्वारा निर्दिष्ट हैं और उनसे ही निःसृत माने गये हैं। यहाँ तक कि भविष्य में होने वाले ज्ञान-विज्ञान तथा कला-साहित्य आदि का स्रोत भी वेदों में है।

'योग' शब्द का अर्थ है जोड़ना अथवा युक्त करना, समाहित अथवा एकाग्र होना। अपने आत्मा को परमात्मा के साथ युक्त करना ही 'योग' है और जिस साधन से इसप्रकार का योग एवं सायुज्य प्राप्त होता है, वह भी 'योग' कहलाता है। योग-भाष्य के रचयिता महर्षि व्यास कहते हैं- कि पूर्ण एकाग्रता से परमात्मा में समाहित हो जाना, समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेना भी योग है। अर्थात् 'योग' शब्द साधन और साध्य दोनों का वाचक है। ऋग्वेदके एक मन्त्र में यह शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-

यस्माद्दते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति॥

अर्थात् जिन(इन्द्राग्नि) देवता के बिना प्रकाश पूर्ण ज्ञानी का जीवन-यज्ञ भी सफल नहीं होता, उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धि एवं कर्मों का योग करना चाहिये, उसी देव में उन्हें अपनी बुद्धि और कर्मों को अनन्य रूप में एकाग्र करना चाहिये। उनकी बुद्धि उस देव के साथ तदाकार हो जाती है और वह उनके कर्मों में भी ओत प्रोत हो जाता है।

---

[1] मनु० १२। ९७

योग के इस प्रधान लक्षण का प्रतिपादन यजुर्वेद के ११वें अध्याय के प्रथम पाँच मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट और सरल शब्दों में किया गया है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं-

युञ्जनः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याऽभरत्॥

सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मा पहले हमारे मन और बुद्धि की वृत्तियों को तत्त्व की प्राप्ति के लिये अपने दिव्य स्वरूप में लगायें तथा अग्नि आदि इन्द्रियाभिमानी देवताओं की; जो विषयों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य है, उसे दृष्टि में स रखते हुए बाह्य विषयों से लौटाकर हमारी इन्द्रियों में स्थिरता पूर्वक स्थापित कर दें; जिससे हमारी इन्द्रियों का प्रकाश बाहर न जाकर बुद्धि और मन की स्थिरता में सहायक हो-

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे।
स्वर्याय शक्त्या॥

हम लोग सबको उत्पन्न करने वाले परमदेव परमेश्वर की आराधना रूप यज्ञ में लगे हुए मन के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति के लिये पूर्ण शक्तिसे प्रयत्न करें। अर्थात् हमारा मन निरन्तर भगवान् की आराधना में लगा रहे और हम भगवत्प्राप्ति- जनित अनुभूति के लिये पूर्णशक्ति से प्रयत्नशील रहें।

युक्त्वाय सविता देवान्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्र सुवाति तान्॥

वे सबको उत्पन्न करने वाले परमेश्वर मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को; जो स्वर्ग आदि लोकों में एवं आकाश में विचरने वाले तथा बड़ा भारी प्रकाश फैलाने वाले हैं। हमारे मन और बुद्धि से संयुक्त करके हमें प्रकाश प्रदान करने के लिये प्रेरणा करें, ताकि हम उन परमेश्वर का साक्षात् करने के लिये प्रकाश फैलाते रहें। निद्रा, आलस्य और अकर्मण्यता आदि दोष हमारे ध्यानमें विघ्न न करें। इसी प्रकार ऋग्वेद (१।८६।९-१०)- में कहा गया है

-यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना।
विध्यता विद्युता रक्षः॥
गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्।
ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि॥

इन मन्त्रों में गौतम ऋषि मरुत्-देवताओं का आवाहन कर उनसे ज्योति-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं- 'हे सत्य के बल से सम्पन्न मरुतो! तुम्हारी महिमा से वह परम तत्त्व हमारे सामने प्रकाशित हो गया। विद्युत् के सदृश अपने प्रकाश से राक्षस का विनाश कर डालो। हृदय-गुहा में स्थित अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर दो, जिससे वह अन्धकार सत्य की ज्योति की नाव में डूबकर तिरोहित हो जाय। हमारी अभीष्ट ज्योतिको प्रकट कर दो।'

यहाँ मरुत्-देवताओं से योगपरक अर्थ करने में पञ्चप्राण- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानका भी ग्रहण हो सकता है। इनपर पूर्णप्रभुत्व की प्राप्ति से योगाभ्यासी को शक्ति के आरोहण का अनुभव और परमतत्त्व का साक्षात्कार प्राप्त होता है। साक्षात्कार से जिस ज्योति के दर्शन होते हैं, वही योगी का अभीष्ट ध्येय है।

अथर्ववेद के एक मन्त्र में राजयोग की प्राणायाम-प्रणाली से होने वाली शक्ति के आरोहण का वर्णन प्रतीकात्मक भाषा में किया गया है-

पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्॥(४।१४।३)

इस मन्त्र में पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ क्रमशः अन्न, प्राण और मनकी भूमिकाओं के प्रतीक हैं तथा स्वर्ज्योति मन और वाणी से परे स्थित, वाङ्मनस-अगोचर विज्ञानमय भूमिका का प्रतीक है। प्राणायाम से सिद्धि प्राप्त साधक कहता है 'मैंने पृथ्वीके तल से अन्तरिक्ष के लिये आरोहण किया, अन्तरिक्ष से द्युलोक में और आनन्दमय द्युलोक से आरोहण करके मैं स्वर्लोक के ज्योतिर्मय धाम में पहुँच गया'।

पातञ्जल योग दर्शन के अनुसार ये भूमिकाएँ विक्षिप्त, असम्प्रज्ञात और कैवल्य कहलाती हैं-

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।[1]

इस मन्त्रमें यह कहा गया है कि 'आठ चक्रों और नौ द्वारोंसे युक्त हमारी यह देहपुरी एक अपराजेय देवनगरी है। इसमें एक तेजस्वी कोश है, जो ज्योति और आनन्द से परिपूर्ण है।'

अधिक दिनों तक जीवित रहने की इच्छा प्राणि मात्र की होती है। धर्म-प्रधान भारत वर्ष में इसी उद्देश्य से संध्योपासन का विधान वेदों में किया गया है। संध्योपासन में बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि के लिये अनेक मन्त्रों से जल को पवित्र करके आचमन करने का विधान है और बाह्य शुद्धि के लिये मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल से शरीर का अभिषेक करने को लिखा है। साथ-ही-साथ आयु वृद्धि के लिये प्राणायाम का विधान है।

इसके पश्चात् भुवन भास्कर भगवान् सूर्य की उपासना का क्रम लिखा है। चन्दन, पुष्प आदि अर्घ्य की वस्तु जल के साथ लेकर सूर्य के लिये अर्घ्य प्रदान करने की विधि है। इसके पश्चात् सूर्योपस्थान के चार मन्त्र हैं। उनमें सूर्य की स्तुति के साथ उनसे अपने जीवन की वस्तुओं के लिये प्रार्थना है। चौथा मन्त्र इस प्रकार है, यथा-

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतः श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।[2]

इससे यह प्रतीत होता है कि मनुष्य की परमायु एक सौ वर्ष की है और वह कर्म करते हुए एक सौ वर्ष तक जीवित रहना चाहता है। ईशोपनिषद् के दूसरे मन्त्र में भी यही बात लिखी है। यथा-

---

[1] अथर्व० १०। २। ३१

[2] शु० यजु० ३६। २४

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थात् मनुष्य को कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा रखनी चाहिये। इस तरह विहित कर्म-अग्निहोत्रादि करते रहने से मनुष्य कर्मफल से लिप्त नहीं होता। तात्पर्य यह कि कर्मफल को प्राप्त करने की इच्छा से काम्य कर्म भव-बन्धन का कारण होता है, अन्यथा निष्काम भाव से कर्तव्य समझकर कर्म करने से प्रारब्ध का भोग हो जाता है और संचित कर्म की उत्पत्ति होती ही नहीं, इससे परम शान्ति मिल जाती है।

प्राचीन ऋषिगण अपने इन्हीं कर्तव्यों का पालन करते थे जिससे उनकी इन्द्रियाँ जीवनभर शिथिल नहीं होती थीं, सौ वर्ष तक कर्तव्य-पालन करते हुए जीवित रहते थे।

इस तरह अपनी आयु और इन्द्रियों में शक्ति के लिये सर्वत्र उपनिषदों में प्रार्थना के मन्त्र पाये जाते हैं। जिसमें मनुष्य के स्वास्थ्य को लाभ प्रदान होता है।

जबकि वैदिक शास्त्र के अनुसार मनुष्य की आयु सौ वर्ष की कही गयी है। वहाँ ज्योतिष शास्त्र के अनुसार तो मनुष्य की आयु १०८ और १२० वर्ष कही गयी है; क्योंकि मनुष्य के जीवन भर में नव ग्रहों की दशा एक बार बारी-बारी से आती है तथा एक राशि पर उनकी स्थिति जितने दिन की होती है, उनको जोड़ने से १२० वर्ष होती है। कुछ ज्योतिर्विदों के मत के अनुसार १०८ ही वर्ष की परमायु होती है।

पाश्चात्त्य वैज्ञानिकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि आध्यात्मिक विज्ञान के समक्ष यह भौतिक विज्ञान अत्यन्त क्षुद्र है, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञान से जिस वस्तु की प्राप्ति होती है, वह अक्षय होती है और भौतिक विज्ञान से प्राप्त होने वाली वस्तु नश्वर होती है।

वैदिकयोग-

साधना का ध्येय है आत्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य। उसके लिये साधक की अभीप्सा निम्नलिखित मन्त्र में सुन्दर ढंग से व्यक्त की गयी है-

यदग्नेस्यामहंत्वंत्वंवाघास्याअहम्।
स्युष्टेसत्याइहाशिषः॥[1]

अर्थात् हेअग्निदेव! "यदि मैं तू हो जाऊँ अर्थात् सर्व समृद्धि सम्पन्न हो जाऊँ या तू मैं हो जाय तो इस लोक में तेरे सभी आशीर्वाद सत्य सिद्ध हो जायँ।"

इसप्रकार यहाँ वेद मन्त्रों के आधार पर योग सम्बन्धी कुछ रहस्यात्मक तत्त्व संक्षेप में निर्दिष्ट किये गये हैं। प्राचीन या अर्वाचीन सभी योग मार्ग वेद मूलक ही हैं, जो वेदों में योग के कल्याण के लिये निर्दिष्ट हुए हैं। इस सूक्त के उपदेशों के आधार पर प्राणि मात्र के प्रति मैत्री भावना और समदृष्टि का अभ्यास करना चाहिये। यह अभ्यास सिद्ध हो जाने पर अपने हृदय के सभी भावों को भगवान की ओर ही प्रेरित करें, सभी सांसारिक सम्बन्धों और अलौकिक सम्बन्धों को भगवान् के साथ ही जोड़ दें। अनेक वेदमन्त्रों में यह उपदेश दिया गया है कि हमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, मित्र, कलत्र, बन्धु-बान्धव आदि सभी सम्बन्ध अपने सच्चे और अनन्यबन्धु भगवान् के साथ ही जोड़ने चाहिये, संसारी जनों के साथ नहीं। सांसारिक आसक्तियों को दूर करने और भगवान् में परम अनुरक्ति तथा रति उत्पन्न करने का इससे सरल एवं सरस मार्ग अन्य कोई नहीं है। हृदय के सभी भावों और निखिल कामनाओं को भगवान् की ओर मोड़ देने से ही उनके साथ सारूप्य, साधर्म्य, सायुज्य और ऐकात्म्य सहजतया प्राप्त हो सकता है।

---

[1] ऋक्०८।४४।२३

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।(ऋक्० १०।१९१।४)

आप सब मानवों की आकूति अर्थात् संकल्प, निश्चय, प्रयत्न एवं व्यवहार समान- समभाव वाले, सरल-कापट्यादि- दोषरहित; स्वच्छ रहें एवं आप सब मानवों के हृदय भी समान-निर्द्वन्द्व, हर्ष-शोकरहित समभाव वाले रहें तथा आप सब मानवों का मन भी समान- सुशील, एक प्रकार के ही सद्भाववाला रहे। जिस प्रकार आप सबका शोभन (अच्छा) साहित्य (सहभाव)- धर्मार्थादि का समुच्चय सम्पादित हो, उस प्रकार आपके आकृति-हृदय एवं मन हों।

इस प्रकार स्वतःप्रमाण अतिधन्य वेदों की संहिताओं में मानवों के प्रशस्त आदर्शों का वर्णन बहुत ही प्रचुररूप में किया गया है। मानव-जीवन को आदर्शमय (चारित्र्य शील) बनाने में भगवत्प्रार्थना एक मुख्य प्रयोजक साधन माना गया है। जो मानव उन अपने अन्तर्यामी सर्वात्मा भगवान पर दृढ़ विश्वास रखता है, उनके शरणापन्न बना रहता है, उनके इष्टानिष्ट सभी विधानों में जो संतुष्ट रहता है, सभी परिस्थितियों में उनकी पावन मधुर ध्रुवा स्मृति बनाये रखता है और विश्व के अभ्युदय एवं निःश्रेयस के लिये हृदय के सद्भावों के साथ उन सर्व समर्थ प्रभु की प्रार्थना करता रहता है, उस मानव में पशुता एवं दानवता का ह्रास होकर मानवता का विकास हो जाता है। केवल मानवता का ही नहीं, किंतु उन करुणा सागर भगवान की अनुपम कृपा से उसमें क्रमशः देवत्व एवं महादेवत्व का विकास होकर उसका मानव-जीवन धन्य एवं चरितार्थ बन जाता है।

शरीर के नीरोग रहने पर ही पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। चरक संहिता के सूत्रस्थान-प्रकरण में कहा भी गया है-

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यंमूलमुत्तमम्।' (१।१५)

महाकवि कालिदास ने भी कहा है- **'शरीरमाद्यंखलुधर्मसाधनम्'** **(कुमारसम्भव५।३३)** अर्थात् धर्म का पहला साधन शरीर ही है। अतः

मनुष्य को शरीर के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। प्रायः शरीर में कोई
न कोई व्याधि रहती ही है। इसीलिए शरीर को रोग का घर कहा गया है- 'शरीरंव्याधिमन्दिरम्' जिसके निवारण के लिये आयुर्वेद आदि शास्त्र हैं। योगाभ्या सभी व्याधि-निवारण का एक सिद्ध साधन है; क्योंकि शरीर की व्याधि का मूल कारण मानसिक आदि है। संसार के जितने भी अनर्थ हैं, उनमें अव्यवस्थित चित्त ही कारण माना गया है। इसीलिये चित्त के व्यापार को रोकने के लिये' पातञ्जल योगसूत्र' में सर्वप्रथम 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' कहा गया है। क्योंकि मानसिक व्यग्रता का प्रभाव बाहरी शरीर पर पड़ता है, जिससे शरीर दुर्बल होकर अनेक व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है। अतः जिनका मानसिक व्यापार मर्यादित होता है वे कभी शोक-मोह तथा शारीरिक रोग से अभिभूत नहीं होते। यही कारण है कि योगी सदा अरोगी तथा दीर्घ जीवी होता है। योग के बल से ही वह क्षुधा-पिपासा से रहित होकर गुफा-निवासी बन जाता है। यदि साधारण मनुष्य भी मन को संयमित करके आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि योगाङ्गों का अभ्यास करना प्रारम्भ कर दे तो वह भी थोड़े ही दिनों में अपने आपको तन-मन से स्वस्थ अनुभव करने लगेगा।

निष्कर्ष यह है कि रोग-निवारण के लिये आयुर्वेद आदि ग्रन्थों में कहे गये उपायों के अतिरिक्त दुःसाध्य रोगों की निवृत्ति के लिये संयमित आहार-विहार, प्राणायाम तथा भगवान्भास्कर की उपासना का भी विशेष अवलम्बन लेना चाहिये।

समापन में इतना ही कहना है कि-

अर्धं तु भुक्त्वाटनमस्तु नित्यं योगो न निन्दा शयनं सुपूर्णम्।
स्वास्थ्यं चिरं रक्षितुमेव मार्गाः यत्नैर्मनुष्येण हि पालनीयाः।।१०१।।

भूख से आधा खाना, नित्य चलना, योग करना, निंदा न करनी और पूर्ण निद्रा इन लंबे समय तक स्वास्थ्य को सुरक्षित करने के मार्गों का मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।

---०---

चरित्र निर्माण में अष्टाङ्ग योग की भूमिका

स्वर्णलता शर्मा
सहायकाचार्या संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय धर्मशाल

शोध सारांश

प्रासंगिक शब्द- मानसिक विकास, शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, योग, सच्चरित्र अष्टाङ्ग योग, चरित्र निर्माण, धारणा, ध्यान और समाधि।

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार चरित्र पद का अभिप्राय है- चरित्रं, क्ली, (चर +"अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः।" ३। २। १८४। इति इत्रः।) स्वभावः। तत्पर्य्यायः। चरितम् २ चारित्रम् ३ चरीत्रम् ४। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, कथासरित्सागरे। ४।८३। "अचिन्त्यं शीलगुप्तानां चरित्रं कुलयोषिताम्॥") यहाँ स्वभाव से अभिप्राय मात्र व्यक्ति की शील अथवा स्वभाव से है। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का शारीरिक सौष्ठव, मानसिक संतुलन व आत्मिक व्यवहार सभी मिल कर उसके व्यक्तित्व को उसके चरित्र से जोड़ कर देखा जाता है। कह सकते हैं कि व्यक्ति का सर्वाङ्गिण विकास ही श्रेष्ठ चरित्र कहलाता है। एक धारणा यह भी है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन और आत्मा का निवास होता है, इसलिए मनुस्मृति में कहा गया है- शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्। व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, व बौद्धिक विकास ही उसका समग्र विकास का आधार है। ऐसा व्यक्ति ही सुद्दढ समाज के निर्माण में सहायक होता है। किसी भी देश की अक्षुण्ण पूँजी उसके चरित्रवान लोग होते हैं। चरित्र रक्षण के महत्व को मनुस्मृति में बहुत प्रमुखता से व्याख्यायित किया है।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।। (मनुस्मृति)

चरित्र निर्माण व चरित्र रक्षण के सौपानों में योग ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में "समत्वं योग उच्यते" तथा "योगः कर्मसु कौशलम्" आदि सिद्धान्तों से चरित्र-निर्माण में योग की भूमिका को प्रतिपादित किया है। महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित योग-दर्शन में अष्टाङ्ग योग द्वारा शरीर, मन व आत्मा में सामञ्जस्य व संतुलन को "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः" से परिमार्जित करने को कहा है। अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करके ही श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण हो सकता है। अष्टाङ्ग योग में यम, नियम, आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि को परिगणित किया गया है। आहार, आसन और प्राणायाम के द्वारा शारीरिक विकास व स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है। पाँच प्रकार के यम (अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रह) तथा पाँच प्रकार के नियम (शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि) के परिपालन से मानसिक वृत्तियों को नियन्त्रित करके मानसिक चरित्र को पुष्ट किया जा सकता है। धारणा, ध्यान और समाधि आदि अङ्गों के धारण करने से आध्यत्मिक चरित्र का निर्माण किया जा सकता है।

शोध के उद्देश्य-

- इस शोध के द्वारा अष्टाङ्ग-योग का मानसिक विकास में महत्त्व को समझ पायेंगे।
- शारीरिक विकास के लिए व स्वस्थ शरीर निर्माण के लिए अष्टाङ्ग योग की भूमिका का परिशीलन किया जायेगा।
- बौद्धिक विकास में अष्टाङ्ग-योग की भूमिका का प्रतिपादन।
- आध्यात्मिक विकास का महत्त्व व अष्टाङ्ग-योग की भूमिका का प्रतिपादन।

प्रस्तावना-

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार चरित्र पद का अभिप्राय है- स्वभाव "चरित्रं, क्ली, (चर+ "अर्त्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः।" ३।२।१८४। इति इत्रः।) स्वभावः। तत्पर्य्यायः। चरितम् २ चारित्रम् ३ चरीत्रम् ४। इति शब्दरत्नावली॥ (यथा, कथासरित्सागरे। ४। ८३। अचिन्त्यं शीलगुप्तानां चरित्रं कुलयोषिताम्॥)" यहाँ स्वभाव से अभिप्राय मात्र व्यक्ति की शील अथवा स्वभाव से है। परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति का शारीरिक सौष्ठव, मानसिक संतुलन व आत्मिक व्यवहार सभी मिल कर उसके व्यक्तित्व को उसके चरित्र से जोड़ कर देखा जाता है। कह सकते हैं कि व्यक्ति का सर्वाङ्गिण विकास ही श्रेष्ठ चरित्र कहलाता है। इसी प्रकार से महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में राजा दिलीप के चरित्र और व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए उनके शरीर सौष्ठव, मानसिक दृढता, और आध्यात्मिक उद्दात्ता का वर्णन किया है। राजा दिलीप के शारीरिक सौष्ठव का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं। **राजा दिलीप चौड़ी छाती वाले, बैल के समान ऊँचे कन्धों वाले, शाल वृक्ष की शाखा के समान लम्बी भुजाओं वाले, अपने कर्म में स्वयं समर्थ, ऐसे हैं मानों क्षात्र धर्म ने स्वयं ही शरीर धारण कर लिया हो।**

व्यूढोरस्को बृषस्कन्धः शालप्रांशर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रिता[1]।।

राजा दिलीप का जैसा शरीर सौष्ठव था उसी प्रकार उनकी बुद्धि का प्रसार था। उनकी बुद्धि के अनुसार ही उनमें निर्णय लेने की क्षमता थी। निर्णय के अनुरूप ही वे कार्य का आरम्भ तथा कार्य के आरम्भ के अनुरूप ही वे कार्य के फल को प्राप्त करने वाले थे।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः[2]।।

रघुवंशियों के चरित्र का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास उनकी दिनचर्या और जीवन में योग के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखते हैं। **रघुवंशी बाल्यकाल में विद्याभ्यास करते थे, यौवन में कामनाओं की पूर्ती करते थे। वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति धारण करते थे, तथा योग के द्वारा अन्त में देह त्याग करते थे-**

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तिनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्[3]।।

सम्पूर्ण विवरण का उद्देश्य यही है कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व से ही व्यक्ति का चरित्र उभरता है। जिसे उभारने में अष्टाङ्ग योग की महत्वपूर्ण भूमिका है। राजयोग की भूमिका में स्वामी विवेकानन्द आत्मिक विकास के लिए राजयोग को उपनिषद् वाक्यों के समकक्ष रखते हुए कहते हैं-

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे[4]।।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थु[5]।।

हे अमृत के पुत्रों, हे दिव्य धामवासियों, सुनो- मैंने अज्ञानान्धकार से आलोक में जाने का रास्ता पा लिया है। जो समस्त तम के पार है, उनको जानने पर ही वहाँ जाया जा सकता है- मुक्ति का और कोई दूसरा उपाय नहीं। **इस सत्य को प्राप्त करने के लिए, राजयोग- विद्या मानव के समक्ष यथार्थ व्यावहारिक और साधनोपयोगी वैज्ञानिक प्रणाली रखने का प्रस्ताव करती है । वे आगे लिखते हैं कि योग-विद्या के आचार्यगण कहते है कि धर्म पूर्वकालीन अनुभूतियों पर केवल स्थापित ही नहीं, वरन् इन अनुभूतियों से सम्पन्न हुए बिना कोई भी धार्मिक नहीं हो सकता। जिस विद्या के द्वारा ये अनुभूतियाँ होती है, उसका नाम योग है[6]।** अर्थात् योग के द्वारा होने वाली अनुभूतियाँ ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण में महत्त्व पूर्ण भूमिका निभाती है। योग की अनुभूतियों से व्यक्ति के स्वभाव में दैवीय

परिवर्तन आता है। यही स्वभाव परिवर्तन मनुष्य में धर्म परायणता का निमित्त बनता है, तथा धर्म परायण होना, सच्चरित्र होने का प्रमुख सौपान है।

अष्टाङ्ग-योग की भूमिका-

पूर्वोक्त धर्म के तत्त्व अष्टाङ्ग योग में किस प्रकार से समाविष्ट है उनका परिशीलन अष्टाङ्ग योग के स्थापित सिद्धान्तों व लक्षणों के आधार पर किया जा रहा है।

योग की परिभाषा देते हुए महर्षि पातञ्जलि ने कहा है- "योगश्चितवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का अवरोधन ही योग है। इस प्रकार से योग शरीर, मन (इन्द्रियनिग्रह) और आत्मा के विकास में सहायक है, जो साक्षात् रूप से व्यक्ति के चरित्र पर प्रभाव डालता है। योग के अष्टाङ्गों का विधान करने से अथवा नियम पूर्वक पालन करने से मन, शरीर और आत्मा की अशुद्धि के क्षय होता है, तथा विवेक ख्याति पर्यन्त ज्ञान रूप तेज की दीप्ति होती है।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकाख्यातेः[7]।।

पातञ्जल-योगदर्शन में योग के आठ अङ्ग बताये गये है। इसीलिए इसे अष्टाङ्ग योग भी कहा जाता है। योग ये आठ अङ्ग इस प्रकार हैं- यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावङ्गानि[8]।

श्रेष्ठ-मानसिकता का निर्माण-

अष्टाङ्ग योग में से यम व नियम के साधन से व्यक्ति के मानसिक व व्यवहारिक चरित्र का निर्माण होता है। अष्टाङ्ग योग का पहला अङ्ग यम है। यम के पाँच भेद हैं। **"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः**[9]" 1.अहिंसा 2. सत्य 3. अस्तेय 4. ब्रह्मचर्य 5. अपरिग्रहः ये पाञ्च यम हैं। प्रथम भेद अहिंसा है-

अहिंसा- तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदासर्वभूतानामनभिद्रोहः। अर्थात्- सभी भूतों(प्राणियों) के प्रति अविद्रोह का भाव ही अहिंसा है। मनसा,

वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार का द्रोह रहित आचरण ही अहिंसा कहलाता है।

सत्य- सत्यं यथार्थे वाङ्ग मन से, यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्गमनसि। अर्थात् जैसा सुना, जैसा देखा या जैसा अनुमित किया उसी प्रकार का कथन व चिन्तन सत्य का अनुपालन कहलाता है।

अस्तेय- स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्, तत्प्रतिषेधः पुनरस्पृहारूपमस्येति। स्तेय कर्म अर्थात् चौर्य कर्म से अभिप्राय है, अशास्त्र विधि से पर द्रव्यों का अधिग्रहण करना। इसके विपरीत कर्म अस्तेय कहलाता है।

ब्रह्मचर्य- ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः। गुप्तेन्द्रिय रूप से उपस्थ का संयम करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

अपरिग्रह-
विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह। इत्येते यमाः। अर्जन, रक्षण, क्षय, सङ्ग और हिंसा-विषयक इन पांच प्रकार के दोषों को देखकर उनका ग्रहण न करना, अपरिग्रह है।

इसी प्रकार से नियमों का पालन व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारने में बहुत सहायक होता है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥३२॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं। आभ्यन्तर व बाह्य शौच, उपलब्ध साधन में सन्तोष। शीतोष्ण, सुख-दुखादि द्वन्द्व सहन करना का तप। मोक्ष शास्त्राध्ययन स्वाध्याय। सर्वकृत कर्मों का ईश्वर के अर्पण करना, इन पाँच नियमों का पालन करना चरित्र निर्माण के अपरिहार्य सौपान हैं। उपर्युक्त सभी का विश्लेषण करें तो ये वही तत्त्व हैं, जिनका व्याख्यान विभिन्न धर्म ग्रन्थों में धर्म के तत्त्वों अथवा लक्षणों के रूप में किया गया है। महर्षि मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस

लक्षणों की साम्यता में स्वतः ही अष्टाङ्ग योग में देख सकते हैं। मनु ने धर्म के दश लक्षण इस प्रकार से बताये हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्[10]।।

श्रीमद्भागवद पुराण में धर्म के जो तीस लक्षण गिनाये गये हैं, उनका समावेश भी हम अष्टाङ्ग योग में पाते हैं-

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।।
अन्नाद्यादे संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेषात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।।
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम्।।
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति[11]।।

इसी प्रकार से योग के अन्य अङ्ग आसनऔरप्राणायामके द्वारा शारीरिक विकास व स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है। प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि आदि अङ्गों के धारण करने से आध्यत्मिक चरित्र का निर्माण किया जा सकता है।

स्वस्थ शरीर का निर्माण-

कहा जाता है कि एक स्वस्थ शरीर में ही श्रेष्ठ मन का वास होता है। महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य कुमारसंभव में सभी प्रकार के कर्तव्य-पालन व धर्म कार्य के निष्पादन से पहले एक स्वस्थ शरीर का होना आवश्यक है ।

अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुशं जलान्यपि स्नानविधिक्षमाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।।[12]

एक स्वस्थ शरीर के लिए आसन और प्राणायाम का नित्य साधन करना स्वस्थ व दिव्य शरीर की प्राप्ती करवाता है। महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन के द्वारा जिस प्रकार से इन योगाङ्गों को प्रतिपादित किया है, उनका विश्लेषण इस प्रकार है,

आसन-

स्थिरसुखमासनम्।। साधनपाद- ४६।।

अर्थात् सुखपूर्वक निश्चित स्थिति में बैठना ही आसन है। महर्षि ने प्रकृति के प्रत्येक आयामों से आसनों को लिया है। यथा- वनस्पत्तियों से पद्मासन, ताडासन, वृक्षासनादि। जीव-जन्तुओं से- ऊष्ट्रासन, भुजंगासनादि, श्रेष्ठ व्यक्तित्वों से वीरासन, भद्रासनादि। उचित आसन में बैठने से हमारे शरीर में ऊर्जा का संचार होता है और अङ्गों में स्फूर्ति रहती है तथा शरीर की आधि-व्याधियों को नष्ट करने के लिए भी विभिन्न आसनों का अभ्यास किया जाता है। आसन कैसा होना चाहिए इसका वर्णन भगवान श्री कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में इस प्रकार से करते हैं-

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्[13] **॥**

योगाभ्यास के लिए स्वच्छ स्थान पर भूमि पर कुशा बिछाकर उसे मृगछाला से ढककर और उसके ऊपर वस्त्र बिछाना चाहिए। आसन बहुत ऊँचा या नीचा नहीं होना चाहिए।

प्राणायाम्-

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।४९।।

अर्थात् श्वास-प्रश्वास के गति के विच्छेद को प्राणायाम कहते हैं। रेचक, पूरक और कुम्भक के द्वारा जो श्वास गति में अवरोध किया जाता है,

उसे प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम के नित्य अभ्यास से बहुत से रोगों का शमन होता है, और मुख पर चमक आ जाती है।

आत्मिक विकास-

शारीरिक व मानसिक चरित्र निर्माण से व्यक्ति का आत्मिक विकास होने से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के अभ्यास से आत्मिक विकास में वृद्धि होती है।

स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्यस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।५४।।

अर्थात् इन्द्रियों के विषयों को छोड़कर चित्त की इच्छा अनुसार इन्द्रियों का निग्रह करना ही प्रत्याहार है। जिससे इन्द्रियाँ व्यर्थ के विषयों में निरत होने से बच जाती है।

धारणा-

"देशबंधश्चित्तस्य धारणा।" पा.यो.सू. 3/1

चित्त को किसी एक देश अर्थात् एक अवस्था में ही स्थिर कर देना धारणा है। साधक की व्यर्थ के विषयों के प्रति चञ्चलता को स्थिर करने में धारणा ही मुख्य कारण है। अर्थात चित्त की किसी एक देश(स्थान) में बाहर (सूर्य, चन्द्र कमल) अथवा शरीर के भीतर (हृदय कमल, भुकृटि, नाभि आदि) में ठहराना धारणा है।

ध्यान-

"तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्।" पा.यो.सू. 3/21

'धी- धातु में ल्युट प्रत्यय के योजन से ध्यान शब्द की उत्पत्ति की गयी है। जिसका अर्थ है, चिन्तन करना। महर्षि पतंजलि के अनुसार प्रत्याहार के साधन से जब चित्त वृत्तियों से मन को हटाकर चित्त वृत्तियों को धारणा के अभ्यास के द्वारा किसी एक लक्ष्य पर एकाग्र करके चित्त वृत्तियों के बीच कोई भी अन्य वृत्ति ना आए, चित्त में निरन्तर उसका ही मनन होता रहे, उसे ही ध्यान कहते है। अर्थात् इसे इस तरह भी कह सकते है, ध्येय

विषय पर निरन्तर मनन ही ध्यान है। मैत्रेयी उपनिषद् में उपरोक्त विषय को इस प्रकार समझाया गया है।

अभेददर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः।

स्नानं मनोमलत्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः[14]।।

समाधि-

वितर्कविचारानंदास्मितारूपानुगमात सम्प्रज्ञातः

वितर्कानुगम समाधि।।

इसी क्रम में धारणा ध्यान और समाधि के द्वारा उच्च-आत्मिक स्थिति को प्राप्त कर मानव सांसरिक द्वन्द्व द्वेष से मुक्त होकर संसार के लिए कल्याण मयी कार्य करने में प्रवृत हो जाता है।

इस प्रकार से योग के अङ्गोपङ्गो के साधन से सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करके अपने जीवन को सार्थक करता है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. रघुवंशम्, कालिदासः १/१३
2. तदेव, १/१५
3. तदेव, १/०८
4. मुण्डकोपनिषद्, २/२/८
5. श्वेताश्वतर उपनिषद्, २/५
6. राजयोग, अवतरणिका/स्वामी विवेकानन्द।।
7. पतञ्जली योगदर्शन, साधनपाद /२८
8. तदेव, साधनपाद/२९
9. पातञ्जलयोगदर्शन, साधनपाद /३०
10. मनुस्मृति, ६.९२
11. श्रीमद्भागवत् पुराण, ७/११/८ १२/
12. महाकविकालिदास, कुमारसंभवम् /५.३३
13. श्रीमद्भगवद्गीता, ६/११
14. मैत्रेय्युपनिषद्, २/२

----०----

वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद

डॉ. गौरी चावला

सहायक प्रोफैसर, संस्कृत विभाग

बी. बी. के. डी. ए. वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर

वेदों को विश्व का प्राचीनतम साहित्य माना जाता हैं। आर्य जाति के विश्वास के अनुसार वेद मनुष्य कृत न होकर अपौरूषेय और अनादि है। ईश्वर और प्रकृति के समान वे भी नित्य है, प्रलय होने पर भी इनका अन्त नहीं हो जाता। षड्दर्शनों में सांख्य दर्शन सृष्टि के रचयिता के रूप में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं करता, पर वेदों की स्वतः प्रमाणिकता पर इस दर्शन को संदेह नहीं हैं। उनके अनुसार वेदों को न तो किसी मनुष्य ने बनाया है और न ही किसी युक्त पुरुष ने। वे अनादि एवं अनन्त है।

वेद विश्व संस्कृति के आधार स्तम्भ है। वेदों में ज्ञान और विज्ञान का अनन्त भंडार विद्यमान है। इनमें सभी प्रकार के ज्ञान एवं विज्ञान निहित है। आयुर्वेद को वेदों में यथोचित स्थान मिला है वेदों की रचना के बारे में विभिन्न मत होते हुए भी यह सुनिश्चित है कि जब ये ग्रन्थ रचे गए तो समाज में ज्ञान का प्रवाह इन्हीं के द्वारा हुआ। अतः वैदिक काल में चिकित्सा सम्बन्धित जो ज्ञान उपलब्ध हुआ वह आयुर्वेद का ही था।

इस काल में मनुष्य यायावर स्थिति में रहता था। उसकी मूलभूत आवश्यकताएं कम होने से उसके पास स्वास्थ्य सम्बन्धित नियमों का पालन करने के लिए पर्याप्त समय होता था और वह अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक सजग रहता था। आयुर्वेद के ग्रन्थों में आयुर्वेद के जो उद्देश्य बतलाए है लगभग वही विचार धारा वाले उद्देश्य वेदों में यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। चरक ने आयुर्वेद का जो एक लक्षण दिया है- 'आयुर्वेदयति इति

आयुर्वेदः'[1] जो आयु का ज्ञान कराता है वही आयुर्वेद है। इसको और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि

'हिताहितं सुखं दुःखम् आयुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तत्र यत्रोक्तम्, आयुर्वेद सः उच्यते।।[2]

आयुर्वेद ही मनुष्य की आयु के लिए हितकर(पथ्य) और अहितकर(अपथ्य) वस्तुओं का वर्णन करता है, पदार्थों की ग्राह्य मात्रा व अनुचित मात्रा का निर्देश देता है तथा आयु वर्धक और आयु नाशक द्रव्यों के गुणों एवं कर्मों का वर्णन करता है। सुश्रुत संहितानुसार भी जिसमें हितकर अहितकर तत्त्वों का विचार हो और जिससे दीर्घ आयु की प्राप्ति हो उसे 'आयुर्वेद' कहा जाता है।

सुश्रुत भी आयुर्वेद के बारे में कहते हैं- 'आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विन्दतीति आयुर्वेदः।'[3]

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थयरक्षणम् आतुरस्य विकार प्रशमनं च।[4]

उक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य मानव जाति के रोगों को दूर करना है। आयुर्वेद की सभी महत्त्वपूर्ण औषधियाँ सर्वप्रथम वेदों में ही प्राप्त हुई हैं-

वैदिक काल में आयुर्वेद ही चिकित्सा का एक मात्र साधन था। वेदों में यत्र-तत्र इस चिकित्सा पद्धति से सम्बन्धित विषय सामग्री का वर्णन मिलता है। वेदों में निम्नलिखित विषयों का मिलना वैदिक काल में आयुर्वेद की उत्कृष्ट स्थिति को दर्शाता है।

---

[1] चरक संहिता सूत्र, 30/23

[2] चरक संहिता सूत्र, 1/41

[3] सुश्रुत संहिता सूत्र, 1/23

[4] चरक संहिता सूत्र, 30/26

वैदिक काल में प्रचलित आयुर्वेद का उद्देश्य: वेदों में आयुर्वेद के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाए गए हैं जो कि उस काल में इस विज्ञान की उच्चतम चिन्तनधारा के प्रवाह को इंगित करता है।

(क) मृत्यु या रोग के कारणों का निवारण

(ख) दीर्घायु की प्राप्ति

(ग) आचार विचार की शुद्धि

(घ) रोग के कारणों का उन्मूलन

(ङ) जीवन का काल शतायु

(च) आत्मा और शरीर की पुष्टता

(छ) रोग के कीटाणुओं का नाशन

वैदिक काल में अष्टाङ्ग आयुर्वेद की स्थिति:

वैदिक काल में आयुर्वेद के आठ अंगों के विभाजन का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, पर वेदों में कायचिकित्सा, विष चिकित्सा, शालाक्य चिकित्सा, व शल्य चिकित्सा का विस्तार से वर्णन मिलता है। बाल चिकित्सा या कौमार भृत्य का वर्णन अल्प मात्रा में मिलता है। इसी प्रकार ग्रह चिकित्सा, रसायन, तन्त्र और वाजीकरण के प्रसंग भी अल्पमात्रा में ही प्राप्त होते हैं।

वैदिक काल में चिकित्सा के चार प्रकारों का उल्लेख:

औषधियों और चिकित्सा विधियों को चार प्रकार में विभाजित करना इस बात का प्रतीक है कि उस समय यह चिकित्सा पद्धति उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थी।

चिकित्सा के चार प्रकार निम्नलिखित है-

(i) **आथर्वणी चिकित्सा-** इसके अन्तर्गत ध्यान, मनन, चिन्तन व मनोयोग से होने वाली चिकित्सा का समावेश है।

(ii) **आंगिरसी चिकित्सा-** अंगों के रस से होने वाली चिकित्सा आंगिरसी है।

(iii) **दैवी चिकित्सा-** इसके अन्तर्गत मृत् चिकित्सा, जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा, वायु चिकित्सा, प्राणायाम चिकित्सा आदि चिकित्साएं समाहित होती है।

(iv) **मानवी चिकित्सा-** यह औषधि चिकित्सा है। इसको मनुष्य द्वारा बनायी गयी चिकित्सा भी कहा जाता है।

आयुर्वेद अनादि शाश्वत शास्त्र है अतः इसकी अभूत्वोत्पत्ति का उल्लेख नहीं मिलता; केवल अवबोध एवं उपदेश के द्वारा अभिव्यक्ति का निर्देश है। ब्रह्मा ने भी इसका स्मरण ही किया, इसे उत्पन्न नहीं किया- 'ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदम्'। सुश्रुत ने भी कहा है कि सृष्टि के पूर्व ही आयुर्वेद विद्यमान था। अतः यह स्पष्ट है कि आयुर्वेद अन्य वेदों के समानान्तर शास्त्र है। इसी कारण किसी ने स्पष्ट रूप से इसे उपवेद नहीं कहा। चरक ने इतना ही कहा कि अथर्ववेद में हमारी विशेष रुचि होनी चाहिए, क्योंकि उसमें चिकित्सा के अनेक तथ्य हैं। जहाँ इसे उपवेद कहा गया वहाँ भी मतभेद है कि यह ऋग्वेद का उपवेद है या अथर्ववेद का? ऐसी स्थिति में काश्यप संहिता का वचन उपयुक्त प्रतीत होता है, जिसमें आयुर्वेद को पञ्चम वेद कहा गया अर्थात् सबके समानान्तर और सबके आगे, क्योंकि आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है और जीवन रहने पर ही अन्य वेदों की सार्थकता है। जिस प्रकार पाँचों अंगुलियों में अंगुष्ठ की प्रधानता है उसी प्रकार वेदों में आयुर्वेद प्रधान है। सुश्रुत ने जो 'उपाङ्ग' कहा वहाँ 'उप' शब्द सामीप्यवाचक है, अनुगतिपरक नहीं।[1]

यूं तो चारों वेदों में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों एवं उपांगों का यथास्थान विशद वर्णन हुआ है, पर आयुर्वेद का विस्तृत वर्णन अथर्ववेद से उपलब्ध होता है। चारों वेदों में आयुर्वेद सम्बन्धित वर्णन मिलता है। परन्तु आयुर्वेद को मूलतः अथर्ववेद का उपांग माना जाता है। उदाहरण के लिए-

---

[1] चरक संहिता, आचार्य विद्याधर शुक्ल, चोखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान vol 1 पृ. 25

ऋग्वेद में आयुर्वेद: ऋग्वेद में आयुर्वेद सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यों का यथा स्थान विवेचन उपलब्ध होता है। इसमें आयुर्वेद का उद्देश्य, वैद्य के गुण कर्म विविध औषधियों के लाभ, शरीर के विभिन्न अंग विविध चिकित्साएं अग्नि चिकित्सा, जल चिकित्सा, वायु चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, हस्तस्पर्श, चिकित्सा, यज्ञ चिकित्सा, विष चिकित्सा, कृर्मि नाशक, दीर्घायुष्य, तेज, ओज, नीरोगता, वशीकरण, कुस्वप्र, नाशन आदि का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद में स्वास्थ्य, जीवन शक्ति और चिकित्सा विज्ञान से संबंधित कई महत्वपूर्ण मंत्र और सूक्त मिलते हैं, जो आयुर्वेद के प्राचीन सिद्धांतों की नींव रखते हैं। हालांकि, ऋग्वेद में आयुर्वेद को स्वतंत्र रूप से विस्तार पूर्वक नहीं बताया गया है, लेकिन इसके कुछ सूक्तों में आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों की झलक मिलती है।

ऋग्वेद और स्वास्थ्य:

1. **औषधि सूक्त** (10.97): ऋग्वेद के इस सूक्त में औषधियों की महिमा का वर्णन है। इसमें औषधियों को जीवनदायिनी, रोगों को दूर करने वाली और स्वास्थ्य प्रदान करने वाली शक्तियों के रूप में दर्शाया गया है। यह सूक्त आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों का समर्थन करता है कि प्राकृतिक जड़ी-बूटियों का प्रयोग रोगों के उपचार में किया जा सकता है।

2. **जल चिकित्सा:** ऋग्वेद में जल को एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप में वर्णित किया गया है। जल का शुद्धिकरण और शरीर को शुद्ध रखने में इसका योगदान आयुर्वेदिक उपचार प्रणाली का एक हिस्सा है, जहां जल चिकित्सा और शुद्धि की प्रक्रियाओं का विशेष महत्व है।[1]

3. **आहार और जीवन शैली:** ऋग्वेद में आहार, दिनचर्या, और जीवनशैली से जुड़े कई मंत्र मिलते हैं, जिनमें संतुलित आहार और संयमित

---

[1] ऋग्वेद, 10.9.3

जीवनशैली के महत्त्व पर बल दिया गया है। यह आयुर्वेद के सिद्धांतों से मेल खाता है, जहाँ स्वास्थ्य का प्रमुख आधार सही आहार और जीवन शैली को माना गया है।

4. प्रकृति और स्वास्थ्य का संबंध: ऋग्वेद में प्राकृतिक तत्त्वों का मानव जीवन और स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव बताया गया है। जैसे कि सूर्य, जल, वायु, और पृथ्वी के तत्त्वों का संतुलन स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। यह आयुर्वेद के दृष्टिकोण से मिलता है, जिसमें पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के संतुलन को जीवन और स्वास्थ्य का आधार माना जाता है।[1]

5. प्राण और तेज: ऋग्वेद के 10.60.12 सूक्त में प्राण और तेज का महत्व बताया गया है, जो कि आयुर्वेद में प्राणवायु (जीवन शक्ति) और ओजस (शारीरिक और मानसिक ऊर्जा का स्रोत) के रूप में जाना जाता है। आयुर्वेद में प्राण और ओजस का संतुलन अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक है।[2]

ऋग्वेद और त्रिदोष सिद्धांत:

हालांकि, ऋग्वेद में त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता, लेकिन स्वास्थ्य और जीवन के संबंध में वात, पित्त और कफ के सामंजस्य का संकेत ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में मिलता है, जहां शरीर और मन के संतुलन की बात की गई है।

यजुर्वेद में आयुर्वेद:

यजुर्वेद में वैद्य के गुण कर्म, विभिन्न औषधियों के नाम आदि शरीर के विभिन्न अंग चिकित्सा, दीर्घायुष्य, नीरोगता, तेज, वर्चस, बल, अग्नि और जल के गुण कर्मों का उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में आयुर्वेद

---

[1] ऋग्वेद, 10.97

[2] "यत् ते देव प्राणतः तेजस्ते प्राणे वर्चः।
तत् ते सर्वस्य त्वा वयं त्रातारं हवामहे।।" ऋग्वेद, 10.60.12

का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन इसके विभिन्न मंत्र और अनुष्ठानिक प्रक्रियाएं स्वास्थ्य, दीर्घायु और रोगमुक्त जीवन की कामना से जुड़ी हुई हैं। आयुर्वेद के कई सिद्धांत यजुर्वेद के स्वास्थ्य संबंधी दृष्टिकोण से मेल खाते हैं।

यजुर्वेद और स्वास्थ्य:

1. **यज्ञ और स्वास्थ्य:** यजुर्वेद में यज्ञ को शारीरिक और मानसिक शुद्धि के साधन के रूप में देखा गया है। यज्ञ के दौरान हवन सामग्री में उपयोग की जाने वाली औषधियाँ और जड़ी-बूटियाँ शरीर को शुद्ध करती हैं और पर्यावरण को भी स्वच्छ बनाती हैं। यह आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से मेल खाता है, जहाँ धूपन और औषधीय धुएं का उपयोग रोगों को दूर करने और स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए किया जाता है।[1]

2. **शारीरिक और मानसिक संतुलन:** यजुर्वेद में विभिन्न यज्ञों और अनुष्ठानों के माध्यम से शारीरिक और मानसिक संतुलन बनाए रखने की बात की गई है। इन यज्ञों का उद्देश्य शरीर के दोषों को संतुलित करना, रोगों को नष्ट करना और मानसिक शांति प्राप्त करना है। यह आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धांत (वात, पित्त, कफ) से मिलता-जुलता है, जिसमें संतुलन को स्वास्थ्य का आधार माना गया है।

3. **औषधियों का महत्त्व:** यजुर्वेद के मंत्रों में औषधियों और जड़ी-बूटियों का उल्लेख मिलता है, जो रोगों को दूर करने और जीवन शक्ति को बढ़ाने में सहायक मानी जाती हैं। इन औषधियों का प्रयोग आयुर्वेद में भी रोगों के उपचार के लिए किया जाता है। यजुर्वेद में जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आस्था दिखती है, जो आयुर्वेद के सिद्धांतों का ही एक रूप है।

4. **आहार और स्वास्थ्य:** यजुर्वेद में आहार का भी बहुत महत्त्व है। यज्ञों में दी जाने वाली आहुति और प्रसाद का शुद्धिकरण और पवित्रता

---

[1] "यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवतान्, तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।" यजु. 36.19

स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। आहार और पाचन शक्ति को स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना गया है, जो आयुर्वेदिक दृष्टिकोण के साथ सामंजस्य में है, जहाँ आहार को स्वास्थ्य का मुख्य आधार माना जाता है। उदाहरणतः **"अन्नानां पतये नमः,"ओषधीः प्रथमानं वाचमिमामुष्टवं विततमं पयः, "अन्नं न अपच्यत, अन्नस्य मयि सन्तु प्रशास्तारः** इत्यादि मंत्रों में आयुर्वेद का संबंध मिलता है ।"[1]

5. दीर्घायु और रोगमुक्त जीवनः यजुर्वेद के मंत्रों में दीर्घायु और रोगमुक्त जीवन की प्रार्थना की गई है। आयुर्वेद का भी यही उद्देश्य है कि जीवन दीर्घायु हो और रोगों से मुक्त रहे। यज्ञ और अनुष्ठानों के माध्यम से दीर्घायु प्राप्त करने की विधियों का वर्णन यजुर्वेद में मिलता है, जो आयुर्वेद के दीर्घकालिक स्वास्थ्य उद्देश्यों से मेल खाता है।

सामवेद में आयुर्वेदः

सामवेद, चार वेदों में से एक, मुख्य रूप से संगीत, गायन, और आध्यात्मिक उन्नति पर केंद्रित है। इसका उद्देश्य मानव मन और आत्मा को शुद्ध करना और आध्यात्मिक संतुलन प्रदान करना है। सामवेद में आयुर्वेद विषयक सामग्री अल्पमात्रा में मिलती है फिर भी इसमें वैद्य चिकित्सा, दीर्घायुष्य, तेज, ज्योति, बल व शक्ति का वर्णन मिलता है। इसमें प्रत्यक्ष रूप से चिकित्सा या आयुर्वेद का विस्तृत वर्णन नहीं मिलता, इसके कई सिद्धांत आयुर्वेद के कुछ प्रमुख पहलुओं से जुड़े हुए हैं। सामवेद में शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य को संगीत और मंत्रों के माध्यम से प्राप्त करने का विचार प्रस्तुत किया गया है, जो आयुर्वेद के समग्र स्वास्थ्य दृष्टिकोण के अनुरूप है।[2]

सामवेद और आयुर्वेद के संबंधः

---

[1] यजुर्वेद, 11.83,12.32,36.18,15.14,13.16 सूक्त

[2] सामवेद, 121/128, 114/123 पूर्वार्चिक, 81/88,70/77 उत्तरार्चिक

1. ध्वनि और स्वास्थ्य: सामवेद मुख्य रूप से संगीत और मंत्रों की शक्ति पर आधारित है। आयुर्वेद में भी ध्वनि और संगीत को मानसिक स्वास्थ्य और चिकित्सा के लिए उपयोगी माना गया है। सामवेद के मंत्र और संगीत मन और शरीर पर शांत और सकारात्मक प्रभाव डालते हैं, जिससे मानसिक शांति और तनाव मुक्ति मिलती है। आयुर्वेद में इसे "सत्व" की स्थिति कहा जा सकता है, जो मानसिक और भावनात्मक संतुलन को दर्शाता है

2. मानसिक संतुलन: सामवेद का गायन और उसका संगीत मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होता है। आयुर्वेद में भी मानसिक स्वास्थ्य का बड़ा महत्व है, और यह माना जाता है कि मानसिक शांति शरीर के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए आवश्यक है। सामवेद के संगीत और ध्वनि के प्रभाव से मानसिक तनाव को दूर करने और चित्त की शुद्धि प्राप्त करने की प्रक्रिया को आयुर्वेद में भी मान्यता प्राप्त है।

3. वातावरण और स्वास्थ्य: सामवेद में मंत्रों और संगीत का वातावरण पर सकारात्मक प्रभाव माना जाता है। यह वातावरण को शुद्ध और सकारात्मक ऊर्जा से भरपूर बनाता है। आयुर्वेद में भी पर्यावरण का स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव माना जाता है, जिसमें वातावरण को शुद्ध और संतुलित रखना आवश्यक है।

4. रोगों की रोकथाम: सामवेद के मंत्रों और संगीत को शरीर और मन के रोगों को दूर करने और रोकने में सक्षम माना गया है। यह ध्वनि चिकित्सा का एक प्रारंभिक रूप है, जो आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी पाया जाता है, जहाँ मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को रोगमुक्त जीवन के लिए आवश्यक माना गया है।

5. आध्यात्मिक स्वास्थ्य: सामवेद का मुख्य उद्देश्य आत्मिक उन्नति है, जो अंततः शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य में भी योगदान करता है। आयुर्वेद में स्वास्थ्य की परिभाषा केवल शारीरिक नहीं है, बल्कि मानसिक

और आत्मिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित करती है। सामवेद के संगीत और मंत्रों से आत्मा की शुद्धि और आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है, जो आयुर्वेद के समग्र स्वास्थ्य दृष्टिकोण के अनुकूल है।

अथर्ववेद में आयुर्वेद:

अथर्ववेद में आयुर्वेद विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है। इसमें आयुर्वेद के लगभग सभी अंगों व उपांगों का वर्णन विस्तार से मिलता है। यह वेद भिषग्वेद या भेषजवेद के नाम से भी जाना जाता है। शतपथ ब्राह्मण में यजुर्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या में प्राण को अर्वा कहा जाता है। गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद के मन्त्रों को आयुर्वेद से सम्बन्धित बताया है। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्म शब्द भी भेषज और ब्रह्मन शब्द समानार्थक है। अथर्ववेद में भिषज के गुण कर्म, भैषज्य, शरीरांग, दीर्घायुष्य, नीरोगता, तेज, वर्चस, वशीकरण, वाजीकरण, रोगनाशक, विभिन्न मणियां, विविध औषधियों के नाम गुण, कर्म, रोग नाम व चिकित्सा, कृमिनाशन, सूर्य चिकित्सा, जल चिकित्सा, विष चिकित्सा, पशु चिकित्सा, प्राण चिकित्सा, शल्य चिकित्सा आदि का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के औषधि सूक्त, वल्य सूक्त, रोग नाशक सूक्त, जल चिकित्सा सूक्त, रक्त शुद्धि सूक्त इत्यादि अनेक सूक्तों का सम्बन्ध आयुर्वेद से है।[1]

अथर्ववेद में आयुर्वेद के प्रमुख पहलू:

1. औषधियों का महत्त्व: अथर्ववेद में औषधियों और जड़ी-बूटियों का अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों और पौधों के औषधीय गुणों का वर्णन किया गया है, जो शरीर के रोगों को दूर करने में सहायक होते हैं। इन औषधियों का उपयोग आयुर्वेद में भी किया जाता है, और इन्हीं से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति की नींव रखी गई है।

---

[1] अथर्ववेद, 8.7,5.30,6.17,4.37,1.22,19.2,19.32,6.20.

2. रोगों के उपचार के मंत्र: अथर्ववेद में कई मंत्र और श्लोक दिए गए हैं, जिनके माध्यम से रोगों का उपचार किया जा सकता है। इन मंत्रों का उपयोग शारीरिक और मानसिक रोगों को दूर करने के लिए किया जाता था। यह आयुर्वेद के दृष्टिकोण से भी मेल खाता है, जहाँ रोगों का उपचार केवल औषधियों से नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि से भी किया जाता है।

3. त्रिदोष सिद्धांत का प्रारंभिक स्वरूप: यद्यपि त्रिदोष सिद्धांत (वात, पित्त, कफ) का प्रत्यक्ष उल्लेख अथर्ववेद में नहीं मिलता, लेकिन इसमें रोगों के कारण और उनके उपचार का वर्णन मिलता है, जो बाद में आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धांत में विस्तारित हुआ। अथर्ववेद में शरीर के विभिन्न हिस्सों और अंगों से संबंधित बीमारियों और उनके उपचार का उल्लेख है, जो आयुर्वेद में दोषों के असंतुलन से उत्पन्न होने वाले रोगों के रूप में माना गया है।[1]

4. धूपन और यज्ञ चिकित्सा: अथर्ववेद में धूपन, यज्ञ, और अग्निहोत्र के माध्यम से रोगों को दूर करने और स्वास्थ्य को बनाए रखने की प्रक्रियाएं दी गई हैं। इन विधियों में औषधियों और जड़ी-बूटियों का धुआं वातावरण को शुद्ध करने और रोगों को नष्ट करने के लिए उपयोग किया जाता था। यह प्रक्रिया आयुर्वेद में भी महत्त्व पूर्ण मानी जाती है, जहाँ औषधीय धूम्र और यज्ञ का उपयोग शारीरिक और मानसिक शुद्धि के लिए किया जाता है।

5. मानसिक स्वास्थ्य: अथर्ववेद में न केवल शारीरिक बीमारियों का उल्लेख है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य का भी विशेष ध्यान रखा गया है। मानसिक रोगों, जैसे चिंता, भय, और अवसाद के उपचार के लिए भी मंत्र और औषधियों का वर्णन मिलता है। आयुर्वेद में भी मानसिक स्वास्थ्य को

---

[1] अथर्ववेद 7.116

शारीरिक स्वास्थ्य जितना ही महत्त्व पूर्ण माना गया है, और इसके उपचार के लिए विशेष विधियाँ हैं।[1]

6. जन्म और दीर्घायु: अथर्ववेद में गर्भधारण, शिशु स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए भी मंत्र और उपाय दिए गए हैं। गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य, शिशु के जन्म, और शिशु के विकास से संबंधित स्वास्थ्य उपायों का वर्णन आयुर्वेद के बाल चिकित्सा विज्ञान (कौमारभृत्य) से मेल खाता है। दीर्घायु और निरोगी जीवन की प्राप्ति के लिए अथर्ववेद में विशेष मंत्र और उपचार प्रक्रियाएं दी गई हैं।[2]

7. सर्प और विष चिकित्सा: अथर्ववेद में विष और सर्पदंश से बचने के उपाय दिए गए हैं। इसमें जड़ी-बूटियों और मंत्रों के माध्यम से विष का प्रभाव कम करने की विधियाँ बताई गई हैं। विषनाशक औषधियों और मंत्रों का प्रयोग।[3]

स्मृतियों में आयुर्वेद:

स्मृतियों में आयुर्वेद का प्रत्यक्ष और विस्तृत वर्णन नहीं मिलता, क्योंकि स्मृतियाँ मुख्य रूप से धर्म, आचार, कानून और सामाजिक व्यवस्था से संबंधित ग्रंथ हैं। ये ग्रंथ वेदों के बाद लिखे गए, और इनमें मुख्य रूप से धर्म और आचार-संहिता के नियमों का विवरण है। फिर भी, स्मृतियों में मानव जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं का वर्णन मिलता है, जिनमें स्वास्थ्य और चिकित्सा भी एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। आयुर्वेद के कुछ सिद्धांतों का समर्थन या उल्लेख स्मृतियों में देखने को मिलता है, विशेषकर आहार, स्वच्छता और जीवनशैली से संबंधित क्षेत्रों में।

---

[1] आयुष्य सूक्त, 3.31

[2] अथर्ववेद 6.17

[3] अथर्ववेद 4.37

स्मृतियों में आयुर्वेद के प्रमुख पहलू:

1. स्वास्थ्य और स्वच्छता: स्मृतियों में स्वच्छता और स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैसे कि "मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति" में शारीरिक स्वच्छता, स्नान, और भोजन से पहले हाथ-पैर धोने जैसी आदतों का उल्लेख किया गया है। ये सभी आयुर्वेद के आचार-रसायन (रोजमर्रा की आदतें और स्वच्छता) के सिद्धांतों के अनुरूप हैं, जहाँ व्यक्तिगत स्वच्छता और स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखने की बात की गई है।

2. आहार और दिनचर्या: स्मृतियों में आहार और दिनचर्या के नियमों का उल्लेख किया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि व्यक्ति को सात्त्विक भोजन करना चाहिए, जो शरीर और मन को शुद्ध रखता है। इसी प्रकार, आयुर्वेद में भी आहार को स्वास्थ्य का मुख्य आधार माना गया है, और इसे त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) के संतुलन के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है। स्मृतियों में बताया गया आहार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित रखने में सहायक है, जो आयुर्वेद के सिद्धांतों से मेल खाता है।

3. दैनिक और ऋतुचर्या: स्मृतियों में व्यक्ति के दैनिक आचरण (दैनिक दिनचर्या) और ऋतुओं के अनुसार आचरण (ऋतुचर्या) का भी वर्णन मिलता है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख है कि विभिन्न ऋतुओं में किस प्रकार के वस्त्र, आहार और क्रियाएँ अपनानी चाहिए, ताकि स्वास्थ्य सही रहे। आयुर्वेद में भी ऋतु के अनुसार आहार और जीवन शैली में परिवर्तन करने का विशेष निर्देश दिया गया है, ताकि शरीर दोषों के असंतुलन से बच सके और रोगों से रक्षा हो।

4. व्यायाम और शारीरिक स्वास्थ्य: स्मृतियों में शारीरिक श्रम और व्यायाम का भी उल्लेख मिलता है। व्यक्ति को स्वस्थ और बलशाली बने रहने के लिए शारीरिक कार्य और व्यायाम को अनिवार्य बताया गया है। आयुर्वेद में भी व्यायाम को स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना गया है, जो शारीरिक

दोषों को संतुलित करता है और शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

5.रोग और चिकित्सा: यद्यपि स्मृतियों में चिकित्सा का गहन विवरण नहीं मिलता, लेकिन मनुस्मृति में कहा गया है कि रोगों का उपचार करने वाले वैद्य (चिकित्सक) का सम्मान किया जाना चाहिए। वैद्य को समाज में एक उच्च स्थान दिया गया है, जो आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की प्राचीनता और महत्त्व को दर्शाता है।

6. ध्यान और मानसिक स्वास्थ्य: स्मृतियों में मानसिक स्वास्थ्य और शांति के लिए ध्यान और आत्म-संयम पर जोर दिया गया है। मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में ध्यान और संयमित जीवनशैली को मानसिक संतुलन और शांति का साधन बताया गया है। यह आयुर्वेदिक चिकित्सा के मानसिक स्वास्थ्य सिद्धांतों से मेल खाता है, जहाँ ध्यान और योग को मानसिक विकारों और तनाव से मुक्ति के लिए महत्त्व पूर्ण माना गया है।

उपनिषदों में आयुर्वेद: उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य आत्मज्ञान, ब्रह्मविद्या, और आध्यात्मिक उन्नति है। ये वेदांत का हिस्सा हैं और उनमें विश्व, आत्मा, ब्रह्म, और मोक्ष के सिद्धांतों पर गहन चिंतन किया गया है। यद्यपि उपनिषदों का मुख्य केंद्र आध्यात्मिक ज्ञान है, फिर भी उनमें जीवन, शरीर और मानसिक शांति के लिए स्वास्थ्य के कुछ पहलुओं पर भी चर्चा मिलती है। आयुर्वेद, जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को समग्र रूप से देखता है, उपनिषदों में कुछ ऐसे सिद्धांतों से जुड़ता है जो जीवन और स्वास्थ्य के मूलभूत तत्त्वों से संबंधित हैं।

उपनिषदों में आयुर्वेद से संबंधित प्रमुख पहलू:

1. शरीर और आत्मा का संबंध: उपनिषदों में शरीर को आत्मा का निवास स्थान माना गया है। यद्यपि आत्मा अमर और शाश्वत है, शरीर के स्वस्थ और शुद्ध रहने से ही आत्मा की उन्नति संभव है। आयुर्वेद में भी शरीर और आत्मा के संतुलन पर जोर दिया गया है। उपनिषदों का यह दृष्टिकोण

आयुर्वेद के उस सिद्धांत से मेल खाता है, जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य को मानसिक और आत्मिक शांति के लिए आवश्यक माना गया है।

2. **प्रकृति और पंचमहाभूत सिद्धांत:** उपनिषदों में सृष्टि के निर्माण में पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) का वर्णन मिलता है, जो आयुर्वेद का भी मूलभूत सिद्धांत है। आयुर्वेद में माना जाता है कि शरीर और प्रकृति इन पंचमहाभूतों से निर्मित होते हैं, और इनके असंतुलन से रोग उत्पन्न होते हैं। उपनिषदों में भी पंचमहाभूतों का संतुलन जीवन की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

3. **मानसिक स्वास्थ्य और ध्यान:** उपनिषदों में मानसिक शांति और ध्यान पर विशेष बल दिया गया है। 'कठोपनिषद्, माण्डूक्य उपनिषद्, और छांदोग्य उपनिषद्' में ध्यान (ध्यान और समाधि) के महत्त्व को विस्तार से समझाया गया है। ध्यान के माध्यम से मन और आत्मा को शुद्ध किया जा सकता है। आयुर्वेद में भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए ध्यान, योग और प्राणायाम को आवश्यक माना गया है, ताकि मन शांत रहे और मानसिक विकारों से मुक्ति मिल सके।

4. **स्वास्थ्य और संयमित जीवन:** उपनिषदों में संयमित और संतुलित जीवन शैली पर जोर दिया गया है। जैसे कि 'बृहदारण्यक उपनिषद् और छांदोग्य उपनिषद्' में शारीरिक और मानसिक संतुलन के लिए संयमित आहार, नियमित दिनचर्या, और ध्यान का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद में भी आहार और जीवनशैली को त्रिदोषों के संतुलन के लिए आवश्यक बताया गया है, ताकि शरीर और मन स्वस्थ रहें।

5. **प्राण का महत्व:** उपनिषदों में "प्राण" को जीवन की ऊर्जा माना गया है। 'प्रश्नोपनिषद्' में प्राण और इसके विभिन्न प्रकारों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, और समान) का उल्लेख किया गया है, जो शरीर के विभिन्न कार्यों को नियंत्रित करते हैं। यह आयुर्वेदिक सिद्धांतों से मेल खाता है, जहाँ "प्राण वायु" शरीर के जीवन के प्रमुख स्रोतों में से एक माना गया है और

शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है।

6. सत्व, रजस, और तमस: उपनिषदों में त्रिगुणों (सत्व, रजस, और तमस) का भी वर्णन किया गया है, जो मन और जीवन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। **'छांदोग्य उपनिषद्(6.16) और बृहदारण्यक उपनिषद् (4.4)'** में सत्वगुण को शांति और स्पष्टता के रूप में वर्णित किया गया है, जबकि रजसगुण को क्रियाशीलता और तमसगुण को जड़ता और आलस्य के रूप में। आयुर्वेद में भी इन त्रिगुणों का विशेष उल्लेख है, जहाँ सत्व को मानसिक शांति और स्वास्थ्य के लिए श्रेष्ठ माना गया है, जबकि रजस और तमस को असंतुलन और विकारों का कारण माना गया है।

7. आत्मा और मोक्ष: उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त करना है, जो शरीर और आत्मा दोनों के संतुलन से ही संभव है। आयुर्वेद भी जीवन के चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में मोक्ष को अंतिम लक्ष्य मानता है। शरीर और मन के स्वास्थ्य को बनाए रखने से व्यक्ति मोक्ष की ओर अग्रसर होता है, यह उपनिषदों और आयुर्वेद दोनों का संयुक्त दृष्टिकोण है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः वैदिक वाङ्मय में आयुर्वेद की नींव बहुत गहरी और व्यापक है। वैदिक मंत्रों और आयुर्वेदिक सिद्धांतों का मुख्य उद्देश्य समग्र स्वास्थ्य (Holistic Health) की प्राप्ति है, जो केवल रोगों का उपचार नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलू में संतुलन प्राप्त करना है। इसके कई महत्त्व पूर्ण पहलूओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आयुर्वेद किसी एक ग्रन्थ का नाम नहीं है। आयुर्वेद एक विषय है जिसे अथर्ववेद के उपवेद के रूप में जाना जाता है। आयुर्विज्ञान सम्बंधित ज्ञान को आयुर्वेद कहा जाता है। आजकल उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर महर्षि चरक, महर्षि सुश्रुत, वाग्भट और धन्वंतरि आदि आचार्य ही आयुर्वेद के रचयिता हैं। उनके द्वारा लिखित चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांगहृदय और रोग

निदान नामक ग्रन्थ इस विषय में बहु उपयोगी हैं। सम्भवतः ही कोई ऐसी औषधि, ऐसे रोगे होंगे, जिनका वर्णन वेदों में प्राप्त नहीं होता हो। अतः वेदों का निर्माण मानव जाति के कल्याण के लिए ही हुआ है। यदि वर्तमान चिकित्सकों को भी असाध्य रोगों का उपचार ढूंढना हो तो वे भी वेदों का अध्ययन करें। निश्चित रूप से उन्हें उन असाध्य रोगों की औषधियों का विवरण भी वेदों में ही प्राप्त होगा। कुल 425 औषधियों का वर्णन वेदों में किया गया है। अतः इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि वैदिक वाङ्मय अपने भीतर सम्पूर्ण सृष्टि के ज्ञान को समेटे हुए है।

---o---

भारतीय योग परंपरा का संरक्षण

डॉ. अरुण रा. पवार

सहायक प्राध्यापक तथा संस्कृत विभागाध्यक्ष

वसंतराव नाईक शासकीय कला एवं समाजविज्ञान संस्था संविधान चौक

नेहरु मार्ग नागपुर, महाराष्ट्र

शोध सारांश-

योग परंपरा का संरक्षण से न केवल हम अपने सांस्कृतिक धरोहर को बचा सकते हैं, बल्कि समृद्धि, स्वास्थ्य और आत्मिक विकास के क्षेत्र में भी अच्छी गुणवत्ता के लिए एक महत्त्व पूर्ण स्रोत बना सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने योग को अधिक महत्त्व दिया और इसे एक स्वतंत्र दर्शन के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। वेद और उपनिषदों में वर्णित योग संबंधी विचार तथा विष्णु, गरुड़, मार्कंडेय, लिंग आदि पुराणों में तथा संहिता, भगवदगीता, मनुस्मृति, नारदस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति आदि अन्य स्मृतिग्रंथों में योगविषयक विवेचन को ध्यान में रखते हुए अपने योगशास्त्र की रचना की है ।

पतंजलि ने योगाभ्यास की पद्धति को विकसित कर उसे व्यावहारिक रूप दिया। आधुनिक समय में भी योग अन्य प्राचीन विद्याओं की तुलना में अधिक व्यावहारिक रूप से उपयोगी हो सकता है; इस प्रवाह को प्रवाहित करने के लिए कई विद्वानों ने योगसूत्र को परिभाषित कर महर्षि पतंजलि की इस परंपरा को जारी रखा है।

संकेत शब्द-

पतंजलि योगदर्शन, व्यासभाष्य, योगदर्शन भाष्य, तत्त्ववैशारदी, योगभाष्यविवरण, विज्ञानभिक्षुकृत योगवार्तिक, पातंजलरहस्य, 'राजमार्तण्ड', रामानंदयतिकृत मणिप्रभा, भावागणेशवृत्ति, नागोजीभट्टवृत्ति, नारायणतीर्थकृत योगसिद्धान्तचंद्रिका, सूत्रार्थबोधिनी,

सदाशिवेन्द्रसरस्वतीकृत, योगसुधाकर, अनंतदेवपण्डितकृत योगचंद्रिका, राजयोगाभ्यास, वैदिकवृत्ति, ऋतंभरा प्रज्ञा, भाष्यग्रंथ, टीकाग्रंथ, लघुवृत्ति, बृहत्वृत्ति, आनन्त्य-समापत्ति

उद्देश्य-

भारतीय योग परंपरा के सिद्धांत और मौद्रिक शिक्षा के प्रभाव को विश्व के योग अभ्यासी समुदायों के साथ साझा करना और उसे समृद्धि, स्वास्थ्य, और आत्मिक विकास के लिए सुरक्षित रखना है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के उपाय हैं। यदि कोई व्यक्ति संयमी, अनासक्त, वैरागी और अनावश्यक चीजों का त्याग करने वाला है, तो वह योग के मार्ग पर एक अधिकारी बन सकता है और योग का अभ्यास करके अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इसके लिए सभी को योगज्ञान और उसकी प्रणाली को जानना आवश्यक है।

प्रस्तावना-

भारतीय योग परंपरा एक आध्यात्मिक और शारीरिक अभ्यास है, जो सदियों से विकसित हो रहा है। इस योग परंपरा को संरक्षित रखना और उसकी मूल सिद्धांतों को आधुनिक समय में जीवित रखना महत्वपूर्ण है। महर्षि पतंजलि द्वारा लिखित योगसूत्र, योग पर उपलब्ध सबसे पुराना ग्रंथ है; याज्ञवल्क्यस्मृति, महापुराण और महाभारत में हिरण्यगर्भ को योग के आदि प्रवर्तक के रूप में उल्लेख किया गया है।[1] पतंजलि के योगसूत्र के प्रथम सूत्र, 'अथयोगानुशासनम्' से महर्षि पतंजलि योगदर्शन के प्रवर्तक नहीं रहे होंगे; क्योंकि 'अनुशासन' का अर्थ है पूर्व-स्थापित सिद्धांत का पुन:प्रचार करना है।[2] लेकिन हिरण्यगर्भ कौन था इस पर कोई सहमति

संदर्भ-सूची-

[1]) याज्ञवल्क्यस्मृति- १२.५., महाभारत- १०.३४९.६५., महापुराण-५.१९.१३

[2]) याज्ञवल्क्यस्मृति- १२.५., महाभारत १०.३४९.६५., महापुराण-५.१९.१३

नहीं बनी। हिरण्यगर्भ शब्द का प्रयोग वेद और वायुपुराणों में अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में किया गया है।[1]

महर्षि पतंजलि भारत के प्राचीनतम विद्वानों में से एक थे। पतंजलि व्याकरण महाभाष्य के कर्ता, योगदर्शन के प्रणेता और आयुर्वेद में चरक परंपरा के जनक थे। भर्तृहरि अपने 'वाक्यपदीय' के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में निम्नलिखित श्लोक लिखते हैं।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।[2]

पतंजलि ने योगाभ्यास की पद्धति को विकसित कर उसे व्यावहारिक रूप दिया। कई विद्वानों ने योगसूत्र को परिभाषित कर महर्षि पतंजलि की इस परंपरा को जारी रखा है। इनमें 'भाष्यकार' व्यास, 'तत्त्व वैशारदिकार' वाचस्पति मिश्र, वार्तिक के रचयिता विज्ञानभिक्षु, शंकर 'भाष्यविवरण' के रचयिता, आचार्य हरिहरानंद की भास्वती टीका, और भोजराज के राजमार्तण्ड प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सांख्य और योग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अतः सांख्य दर्शन में योग की प्रक्रिया को स्वीकार करना स्वाभाविक है। यद्यपि सांख्य और योग दो अलग-अलग नाम हैं, फिर भी उन्हें अभिन्न मानना चाहिए।

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ [3]

'षड्दर्शन' के अतिरिक्त तंत्रशास्त्र में भी योग का महत्त्व पूर्ण स्थान है। नाग संप्रदाय का 'हठयोग' प्रसिद्ध है। हठयोग को राजयोग का साधन

---

1) हिरण्यगर्भो समवर्तताग्रे। ऋग्वेद- १०.१२१.१., वायुपुराण- ७.७८

2) वाक्यपदीय- १.१४८

3) भगवद्गीता- ५.४/५

माना जाता है। 'केवलं राजयोगाय हठयोगोऽपदिश्यते' मुक्ति और कैवल्य के स्वरूपों में भेद मानना चाहिए। तंत्र के अनुसार मुक्ति के लिए भगवान शिव या विष्णु की भक्ति स्वीकार की जाती है। भगवद्गीता जीवन के हर पहलू में योग की उपयोगिता की बात करती है। कर्मयोग, कर्मसन्यासयोग, भक्तियोग, सांख्ययोग, मन्त्रयोग, लययोग आदि प्रत्येक अध्याय में 'योग' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[1]

राजयोग और हठयोग योग की ये दो प्रथाएं भारतीय दार्शनिक परंपरा में प्रचलित हैं। राजयोग पतंजलि पुरस्कृत है और यह मन, बुद्धि और अन्य इंद्रियों के नियंत्रण पर चर्चा करता है। हठयोग में इसके विपरीत अभ्यास है। इससे अनेक शारीरिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। उदा. इसे अमर जीवन की चाह कह सकते हैं।

पतंजलि योगदर्शन-

याज्ञवल्क्यस्मृति ग्रंथ के कुछ वचन और ज्ञान योगात्मक है। योग और उनके आठ अंग को जीवात्मा और परमात्मा का संयोजन माना है।[2] पतंजलि योग भी जीवात्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव कराता है। याज्ञवल्क्यस्मृति में, यह स्पष्ट है कि अष्टांग योग गुरुशिष्य परंपरा में सिखाया जाता था। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि योग के आठ अंग बताया गए हैं।[3] पतंजलि ने भी योग के आठ ही अंग कहे हैं।[4]

---

1) भारतीय मानासशास्त्र एवं पातंजल योगदर्शन- परिच्छेद २२ पृ. १५५

2) ... ज्ञानं योगात्मकं विद्धि योगश्चाष्टांगसंयुतः। ... याज्ञवल्क्यस्मृती-१.४९.,२.१.

3) ..... यमश्च नियमश्चैव आसनं च तथैव च। प्राणायामास्तथा गार्गि प्रत्याहाराश्च धारणा।। ..... तत्रैव -१.४९.

4)यमनियमाऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि। पातञ्जलयोगदर्शनम् - २.२९

याज्ञवल्क्यस्मृति में दस यम हैं,[1] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, मिताहार और शौच है। तप, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरपूजा, सिद्धांत श्रवण, ह्री, मती, जप और व्रत दस नियम है।[2] परंतु पतंजलि ने शास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने के बाद अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के रूप में पांच यमों को परिभाषित किया।[3] शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान को नियमों के रूप में कहा है।[4] इसकी तुलना में, यदि कोई व्यक्ति पतंजलि के यमों और नियमों का सावधानीपूर्वक पालन करता है, तो उसका योग समाज को समृद्ध करेगा और साथ ही उसका स्वयं का उत्थान भी करेगा। यही कारण है कि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित यम और नियम सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत हो गए। योगसूत्र में समाधिपाद, साधनापद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद सहित चार पाद हैं और कुल 195 सूत्र शामिल हैं।

प्राचीन ग्रंथों को कैसे समझें? इसका अर्थ कैसे लागू करें? आदि उन सभी साहित्य सामग्रियों के मूल स्वरूप, भाषा और रचना शैली की खोज स्वाभाविक है। इसलिए बाद के विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के संबंधित साहित्यों का विकास किया। यह सभी प्रकार के साहित्य पर लागू होता है। योगसूत्र अपवाद नहीं है। योगसूत्र बहुत संक्षिप्त हैं, यहां तक कि पारंपरिक टिप्पणियों में भी कई बिंदुओं पर अस्पष्ट और भ्रमित करने वाली व्याख्याएं हैं। योगसूत्र पर टीकाओं और टिप्पणियों के लिए गहन चिंतन और उचित मूल्यांकन की आवश्यकता है।

---

1) ..... अहिंसा सत्यम स्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। याज्ञवल्क्यस्मृती-१.४९

2) तपस्सन्तोषमास्तिक्यं दानमिष्वरपूजनम्। सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रिर्मतिश्च जपो व्रतम्।।
तत्रैव -२.१

3) तत्रैव २.३०

4) तत्रैव २.३२

व्यासभाष्य (५०० इ.स.) महर्षि पतंजलि के बाद महर्षि व्यास का योगशास्त्र परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान है। व्यास ने अपने योगभाष्य में पतंजलि के सूत्रों के रहस्यों को उजागर किया और रहस्य को आम पाठकों तक पहुँचाने का काम किया है। योग के इतिहास में उनका कार्य अविस्मरणीय है। महर्षि व्यास का 'योगभाष्य' योगशास्त्रों पर उपलब्ध साहित्य में सबसे प्रामाणिक भाष्यग्रंथ माना जाता है।

योगदर्शन भाष्य (१८४५-१९५०) व्यासभाष्य के अलावा, योगसूत्र पर स्वामी ज्ञानानंदकृत का योगदर्शन भाष्य उपलब्ध है। परिचयात्मक भाष्य में भाष्यकार व्यास की व्याख्या की विधि को अपनाया है और व्यासभाष्य बहुत संक्षिप्त है और दुर्बोध कहा है। इस भाष्य में योगसूत्र पर विस्तृत भाष्य है। व्यासभाष्य के अनुसार लेकिन अलग प्रकारसे अन्य भाष्यकारों और विद्वानों के मतों को शामिल किया है।[1]

व्यासभाष्य एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो पतंजलि योगदर्शन के अथाह रहस्य को सुलझाती है। कालानुक्रमिक रूप से, वाचस्पति मिश्र, श्री शंकर विज्ञानभिक्षु और हरिहरानंद ऐसे थे जिन्होंने आस्था के साथ योग का अध्ययन किया। इन महारथियों ने व्यासभाषा पर टिका लिखकर योग साहित्य की परम्परा को संरक्षित रखा। इसकी भव्यता और उत्कृष्टता को तत्त्ववैशारदी, योगभाष्यविवरण, योगवार्तिक और भास्वती की लोकप्रियता से देखा जा सकता है। इन भाष्यकारों ने निष्ठापूर्वक कार्य किया और योगतत्त्वों को सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

तत्त्ववैशारदी (८५० इ.स.) की रचना वाचस्पति मिश्र ने की है, जो 'द्वादशदर्शनकाननपंचानन' के हकदार हैं। इस भाष्य में व्यासभाष्य की पहेली को एक विद्वातापुर्वक सुलझाया गया है। नैयायिक शैली में विचारों की प्रस्तुति सामान्यतया जटिल, लेकिन कहीं-कहीं भाषा सरल और समझने में आसान है। संरचना सहज बनाकर योगविद्या के प्रवाह को

---

[1]) भूमिका, पातं. यो. सू. वि. तु. अ.- पृ. ४०

सुगम बनाया है ताकि सार को आसानी से समझा जा सके। वाचस्पति मिश्र वेदांत के अनुयायी होते हुए भी किसी शास्त्र की व्याख्या करते हुए संबंधित शास्त्र के रहस्य प्रकट करने की उनकी अनूठी शैली है। शास्त्रार्थ करते हुए उसी शास्त्र के प्रति पूर्ण निष्ठा से कार्य करने की तत्परता उल्लेखनीय है। मिश्र ने न्यायशास्त्र में सांख्य या सांख्य-योग में वेदांत की श्रेष्ठता का दावा नहीं किया है।[1]

योगभाष्यविवरण(७०० ई.स.) योगदर्शन की परम्परा में एक महत्त्व पूर्ण भाष्यग्रंथ है। इसमें विषय वस्तु को सही ढंग से समझाया है। ऐसा प्रतीत होता है कि योगतत्त्व का सूक्ष्म अध्ययन यहाँ किया गया है। साधनपाद में 'अनन्तविश्वम्' 'अनन्तभाव-अनन्त्यम्' जैसे अनंत शब्दों की परिभाषा योगाभ्यास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

विज्ञानभिक्षुकृत 'योगवार्तिक'(१५००-१६०० ई.स.) व्यासभाष्य की एक महत्वपूर्ण टिका है। योगवार्तिक के अलावा भिक्षु द्वारा एक योगसार संग्रह टीका ग्रंथ भी है। योगवार्तिक एक व्यापक ग्रंथ है और इसमें व्यासभाष्य के साथ-साथ तत्त्ववैशारदि के सिद्धांतों पर भाष्य है। सांख्य-योग पर भिक्षु की व्याख्या भी बड़ी मार्मिक है। योगवार्तिक भाष्य में अवसर के अनुसार विभिन्न दार्शनिक मतों का समन्वय किया गया है। मुख्यत्वे पुराण,[2] वैनाशिकमत, क्षणिकवाद,[3] विज्ञानवाद,[4] दृष्टिसृष्टिवाद[5] और न्यायवैशेषिक[6] आदि राय सम्मिलित हैं।

व्यासभाष्य पर स्वामी हरिहरानंदकृत 'भास्वती'(२० शतक) टीका ग्रंथ योगज्ञान की अमूल्य निधि है। उनके मतानुसार भास्वती संक्षिप्त,

1) भारतीय दर्शन, उमेश मिश्र- पृ.३१९

2) सा. यो. पा. द- योगवार्तिकम् । १.२.,१.२१

3) तत्रैव- १.१८.,२.१९.,४.२०

4) तत्रैव- ४.१६

5) तत्रैव- २.१९

6) तत्रैव- १.४., १.५.,१.७.,२.१३.,३.५१.,४.१३.,४.२०

सरल, और संदेह से मुक्त हैं। वास्तव में उनका कथन बिल्कुल सही है। भास्वती में टीकाकार के आशय कों ठीक ही समझाया है। अपना मत प्रस्तुत करते समय उन्होंने अन्य मतों का खण्डन नहीं किया।

पातंजलरहस्य (२०वें शतक) तत्त्ववैशारदी की एक शाखा है और राघवानंद सरस्वती द्वारा रचित है। इसमें तत्त्ववैशारदी के कठिन से कठिन शब्दों और वाक्यों को बोधगम्य और सरल बनाने का प्रयास किया गया है। पातंजल रहस्य की परिभाषा संक्षिप्त है और तत्त्ववैशारदी के सिद्धांतों को प्रस्तुत करने का प्रयास विशेष नहीं लगता। पातंजल रहस्य के अंतिम पुष्पिका से पता चलता है कि राघवानंद सरस्वती अद्वय-भगवत्पाद के शिष्य थे।[1]

पतंजलि योगसूत्र पर 'राजमार्तण्ड', 'मणिप्रभा'। 'योगप्रदीपिका', नागेशभट्टी की 'लघुवृत्ति' के साथ-साथ 'बृहत्वृत्ति', 'योग-सिद्धातचंद्रिका', 'सूत्रार्थबोधिनी' और 'योगसुधाकार' आदि लिखे गए। भोजदेव के 'राजमार्तण्ड', नारायणतीर्थ के 'सूत्रार्थबोधिनी', अनंतदेवपंडित के 'पादचंद्रिका' और सदाशिवेंद्रसरस्वतीर के 'योगसुधाकर' आदि वृत्य ग्रंथों में 'सूत्रार्थप्रधानवृत्ति' वृत्ति की विशेषता का वर्णन किया गया है। इन ग्रंथों में सूत्रार्थ स्पष्ट और सरल है।

'राजमार्तण्ड' (११वें शतक) ग्रंथ 'भोजवृत्ति' के नाम से भी प्रसिद्ध है।[2] यद्यपि यह ग्रन्थ व्यासभाष्य से प्रभावित है, तथापि यह सूत्र की स्वतंत्र रूप से व्याख्या करता है। विद्वानों ने सूत्रार्थ की व्याख्या करने में राजमर्तण्डवृत्ति की भूमिका को विशेष माना है। भले ही लेखक विशेष रूप से अन्य मतों का खंडन करने के इच्छुक नहीं हैं, अन्य मतों का उल्लेख और खंडन किया जाता है। ग्रंथ के अंत में वेदांत मत का उल्लेख है। यह मुख्य रूप से आत्मा के ‘आनंदमयत्व’ के सिद्धांत का खंडन करता है। इस दृष्टि से

---

[1]) सांख्यदर्शन का इतिहास- उदयवीर शास्त्री पृ.३४८-३६०

[2]) सा. द. इ., उदयवीर शास्त्री- पृ.४०३

'नैय्यायिक', 'मीमांसक' आदि मतों का जगह-जगह खण्डन किया गया है। अन्य मतों का खंडन प्रायः कैवल्य पाद में देखा जाता है।[1] समाधिपाद में संवेग पाद की परिभाषा अन्य शास्त्रों की तुलना में अद्वितीय है, और यहां द्रष्टा और दृश्य के संयोजन का सूक्ष्म विवरण दिया गया है।[2] आसनसिद्धि अध्याय में 'आनन्त्य-समापत्ति' का वर्णन अत्यन्त उपयोगी समझना चाहिए।[3] सम्प्रज्ञात, आसन और विराम आदि पारिभाषिक और विशिष्ट अर्थपूर्ण शब्द भोजवृत्ति से ही निकले हैं। कुछ व्युत्पत्ति विषम हैं।[4] भोज कहीं-कहीं भ्रामक व्याख्या भी करते हैं। इसमें सस्मिता समाधि, विदेह और प्राकृतालय से संबंधित व्याख्याएँ हैं।[5]

रामानंदयतिकृत 'मणिप्रभा' (१५९२ ई.स.) योगसूत्र पर एक वृत्तिग्रंथ है और व्यासभाष्य अनुगामिनी है।[6] मणिप्रभा की भाषा बहुत सरल है और संक्षिप्त है। इसमें सूत्रार्थ करते समय इसकी टीका सुनियोजित ढंग से की जाती है। अतः यह समझने में सहायक है। 'मणिप्रभावृत्ति' में व्यासभाष्य के कथन अनेक स्थानों पर उद्धृत हैं।[7] कहीं-कहीं सूत्रार्थ की व्याख्या करते समय भाष्यार्थ का प्रयोग भी मिलता है।[8]

भावागणेशवृत्ति(१७वें शतक) योगवार्तिक पर आधारित भावागणेश की 'योगसूत्रवृत्ति' 'योगदीपिका' के नाम से प्रसिद्ध है।

---

1) विप्रतिपत्तिसमुत्थभ्रान्ति-निराकरणेन युक्त्या कैवल्यपादोऽयमारभ्यते। भोजवृत्ति-३.१

2) तत्रैव, २.२३

3) तत्रैव, २.४७

4) वर्तते गन्धविषये इति कृत्वा वृत्तेध्राणेन्द्रिया-ज्ज्ञाता वार्ता गन्धसंवित्। तत्रैव- ३.३६

5) तत्रैव- १.१७.,१.१९

6) पतंजलि सूत्रकृतं प्रणम्य, व्यासंमुनिं भाष्यकृतंच अक्त्या/भाष्यानुगां यांगमणिप्रभाऽख्यां ... । मणिप्रभा- पृ.-१

7) तदाह भाष्यकार : यस्त्वेकाग्रे चेतसि सदभूतमर्थ प्रद्योतयति, क्षिणोतिच क्लेशान। मणिप्रभा पृ.- २

8) तत्रैव

भावागणेश दार्शनिक शिरोमणि श्री विज्ञानभिक्षु के शिष्य थे। ग्रंथकार के मतानुसार उन्होंने कहीं-कहीं वार्तिक-आधारित भाष्य को संक्षिप्त एवं विस्तृत रूप देकर गुरु परम्परा का पालन करते हुए योगदीपिका की रचना की है।[1] विभिन्न स्थानों पर व्याख्या करते हुए वार्तिक का उल्लेख मिलता है। इसमें मुख्य रूप से पञ्चतय्य:, संवेग:, ज्वलनम्, विदुष आदि विवादित शब्दों की व्याख्या भी शामिल है।[2] योगसूत्र पर अन्य टीकाकारों के मतों का भी उल्लेख है।[3] भावागणेश 'तत्त्वयथार्थ्यदीपन' के रचयिता हैं तथा आचार्य पंचसिख ने इस ग्रंथ का विश्लेषण में सहयोग किया है।[4]

नागोजीभट्टवृत्ति (१७०० ई.स.) 'लघु' और 'बृहद्-वृत्ति' से सभी विद्वान परिचित हैं। लघुवृत्ति और बृहद्-वृत्ति शैलीगत योगवार्तिक पर आधारित हैं। तत्त्वार्थ विवेचना में बृहद्-वृत्ति को योगवार्तिक तथा तत्त्ववैशारदि पर आधारित मानना चाहिए। कहीं-कहीं श्रीभोज और भावागणेश के भावों का अनुकरण भी किया गया है।[5] इसमें भावागणेश के मतों का प्रयोग किया है, कहीं-कहीं भोज को ज्यों का त्यों स्वीकार किया है।[6] नागेशभट्ट ने अपने विश्लेषण में बिना किसी प्रकार के मतभेद के विज्ञानभिक्षु और वाचस्पति मिश्र पर न्यायपूर्वक भाष्यार्थ देने का सफल प्रयास किया है, तथा चतुराई से दोनों के मतों का खंडन भी किया है।[7]

नारायणतीर्थकृत 'योगसिद्धान्तचंद्रिका'(१७ शतक) योगभाष्य का एक महत्त्व पूर्ण वृत्तिग्रन्थ है। इसमें ध्यान, निद्रा, स्मृति के रूप में प्रणव का अर्थ, उसकी व्याख्या और ऋतंभहरा प्रज्ञा की उपयोगिता आदि का

---

1) भाष्ये परिक्षितो योऽर्थो वार्तिके गुरुर्भि: स्वयम्। ... भावागणेशवृत्ति:- १.३

2) इतिवातिके गुरुचरणै: प्रसाधितं प्रपंचतंच। तत्रैव- १.४

3) विज्ञानवादनिरस्य दृष्टि-सृष्टि-वादंनिरस्यति। तत्रैव- १.१०., ४.१६.

4) सा.यो.द., उदयवीर, पृ,३२४.

5) नागोजीभट्टवृत्ति:- १.४६. ., २.५., २.६., २.१२., ३.२५.,४.३., ४.४., ४.५

6) तत्रैव, ४.३.

7) तत्रैव, २.९.,४.१७., १.४., १.७., १.२४., २.१३., ४.१०., ४.१०., ४.२१., ४.२३

विवेचन एवं विवेचन किया गया है तथा उसके रहस्य को अत्यंत सरल भाषा में उद्घाटित किया गया है।[1] नारायणतीर्थ योग के प्रकांड विद्वान थे। वह 'विषय'[2] 'संज्ञा'[3] 'पुरुषख्याते'[4] 'उपाय'[5] आदि। पतंजलि के शब्दों की प्रासंगिकता बताकर इसका उचित समाधान किया है। इस में एक ओर भक्तियोग और दूसरी ओर हठयोग दोनों के समन्वय की व्यवस्था की गई है। क्रियायोग, चर्चायोग, कर्मयोग, हठयोग, मंत्रयोग, ज्ञानयोग, अद्वैतयोग, लक्ष्ययोग, ब्रह्मयोग, शिवयोग, सिद्धियोग, वासनायोग, लययोग, ध्यानयोग और प्रेमभक्तियोग आदि के रहस्य को सरल भाषा में प्रकट किया गया है।[6] साथ ही राजयोग को इन सभी प्रकार के योगों के महायोग के रूप में लोकप्रिय किया गया है। अवतारवाद, षटकर्म,[7] कुण्डलिनी-शक्ती,[8] आदि नए विषयों पर भी चर्चा हुई है।

सूत्रार्थबोधिनी(१७वें शतक) 'योगसिद्धांतचंद्रिका' में व्याख्या सीधी और सरल है, जबकि 'सूत्रार्थबोधिनी' में नारायणतीर्थ द्वारा दी गई व्याख्या तुलनात्मक रूप से जटिल है। इससे यह देखा जा सकता है कि योग के पूर्व प्रतिपादकों में उनकी आस्था है। सूत्रार्थबोधिनी के भाष्य में तत्त्ववैशारदी और योगवार्तिक दोनों का विपरीत कोटि का प्रयोग किया गया

---

1) अ) ब्रह्मसंस्थोSमृतत्वमिति प्रणवैनैव- प्रणवमेवानुसन्धध्यात्

2) ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एवते। अद्यन्तवन्त: कौन्तेय न तेषु रमते बुध:।। तत्रैव- १.१५

3) वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं क्वचिव्दिरागो व्यतिरेकसंज्ञ:। तत्रैव- १.१५

4) सम्प्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ता: कृतात्मानो वीतरागा: प्रशान्ता:। तत्रैव– १.१६

5) तत्रैव- २.१६

6) निदिध्यासनंचैकतानतादिरुपो राजयोगापरपर्याय: समाधि:। ... तत्रैव- पृ. -२

7) धौती वस्ती तथानेति त्राटकं नौलिकं तथा कपालभाती चैतानि षट् कर्माणी प्रचक्षते। ... तत्रैव -पृ.- १३

8) क) सर्वासामेव नाडीनां चालनं बिन्दुधारणम्। जारणं तु कषायस्य पातकानां विनाशनम्।। ... तत्रैव - पृ.- १२०

है। नारायणतीर्थ ने किसी विचारधारा का खंडन किए बिना अपने ग्रंथ की रचना की; फलस्वरूप दोनों ग्रंथों में नाना प्रकार के विचार प्रवाहित होते दिखाई देते हैं।[1]

अनंतदेवपण्डितकृत 'योगचंद्रिका'(१९वें शतक) के दृष्टिकोण में भोजवृत्ति के आधार पर केवल शब्दार्थ कथन किया गया है। योगचंद्रिका बहुत संक्षिप्त है। कुछ जगहों पर सूत्र के विभक्ति और समास की योजना बनाई गई है। इसमें सूत्र में शब्दों के क्रम को आगे-पीछे बदल दिया गया है।[2]

सदाशिवेन्द्रसरस्वतीकृत 'योगसुधाकर'(१९वें शतक) योगसूत्रों का एक संक्षिप्त और सरल वृत्तिका है, इसमें योग की सूक्ष्म और मौलिक विमर्श शामिल हैं। इस वृत्ति के सूत्रार्थ से योग के प्रति असीम आस्था प्रकट होती है। योगज्ञान परंपरा में इस वृत्ति ने अपना विशिष्ट स्थान स्थापित किया है। इस पर 'मणिप्रभा' का प्रभाव देखा जाता है।[3]

राजयोगाभ्यास (१९वें शतक) ग्रंथ शंकराचार्य और सी.टी. केंगे द्वारा संपादित है। यंह १८९६ में प्रकाशित किया गया था। इसकी भाषा संस्कृत है। अनंतकृष्णशास्त्री ने राजयोगाभ्यास का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। इस ग्रंथ को ‘विज्रांभितयोगसूत्राभ्यास’ के नाम से भी जाना जाता है। दो या चार पांडुलिपि की प्रतियां से निर्मित यंह ग्रंथ अध्यायों में विभाजित किया गया है। इस ग्रंथ में ‘त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषद्’ के संदर्भ यहां और वहां पाए जाते हैं।

वैदिकवृत्ति (२०वें शतक) हरिप्रसादस्वामी की कृति पतंजलि योगसूत्र पर आधारित है। हरिप्रसादस्वामी उदासिन सम्प्रदाय के संपादक आचार्य

---

1) व्या.दृ.पा.यो.स.अ., पृ.- २४

2) यो.चं., १.१०

3) ते च मन्त्रा व्दिविधा: वैदिकास्तान्त्रिकाश्च। वैदिका: प्रगीतागीतभेदेन द्विविधा: ... तत्रैव- २.३२

[1] योगश्चित्तवृत्तेर्निरोधः। योगसूत्र- 1.2

आत्माराम के शिष्य थे। इस वृत्ति में व्यासभाष्य का प्रभाव अनेक स्थानों पर देखा जाता है। हरिप्रसादस्वामी के मतानुसार वह व्यासभाष्य के सिद्धान्त को स्वीकार करके संबंधित ग्रन्थ की व्याख्या की है।

निष्कर्ष-

योग परंपरा को संरक्षित करने का पहला कदम उसे जनता के बीच पहुँचाना है। योग शिक्षा केंद्रों, आध्यात्मिक संस्थाओं और सार्वजनिक स्थानों पर प्रसार किया जा सकता है। प्राचीन योग ग्रंथों, उपनिषदों और योगसूत्रों के अध्ययन का समर्थन करना चाहिए ताकि विशेषज्ञता और ज्ञान का संरक्षण हो सके। योग के क्षेत्र में नए अनुसंधानों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि इसे आधुनिक समय की मांगों और चुनौतियों के साथ मिलाया जा सके। योग की प्राचीन तकनीकों को बचाए रखने का कार्य कर रहे योग संगठनों का समर्थन करना चाहिए। योग को स्वास्थ्य और आत्मिक विकास का एक माध्यम माना जा रहा है, इसलिए सार्वजनिक स्थानों पर और स्वास्थ्य संगठनों में इसे प्रोत्साहित करने का कार्य किया जा सकता है। योग शिक्षा को उच्चतम मानकों पर लाने के लिए योग शिक्षकों को अच्छी प्रशिक्षण और समर्थन प्रदान करना चाहिए। भारतीय योग परंपरा का संरक्षण और प्रचार-प्रसार आत्म-समर्पण, स्वास्थ्य और आत्मिक विकास के क्षेत्र में एक महत्त्व पूर्ण स्रोत के रूप में कैसे योगदान कर सकता है। हम योग प्रवाह को एक जीवंत और समृद्धिशील धारा बनाएं रखना है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची-

१) कृष्णाजी केशव कोल्हटकर, 'भारतीय मानसशास्त्र अथवा सार्थ आणि सविवरण पातंजल योगदर्शन', आदित्य प्रतिष्ठान कर्वेनगर, पुणे - २०१०

२) बलदेव उपाध्याय, 'भारतीय दर्शन', शारदा मंदिर वाराणसी- २०१६

३) बलदेव उपाध्याय, 'पुराण-विमर्श', चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी- १९८७

४) P. V. Karambelkar, 'Patanjal Yoga Sutra', Kaivalyadham

Lonawala- 2012
५) गायत्री मिश्रा, 'योगतत्त्वविमर्श', पद्मजा प्रकाशन इलाहबाद- २०१२
६) स्वामी सनातनदेव, 'योगसारसंग्रह', मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी- सं.२०१४
७) उमेश मिश्र, 'भारतीय दर्शन', हिन्दी समिती सूचना विभाग उत्तरप्रदेश, लखनऊ
८) उदयवीर शास्त्री, 'सांख्यदर्शन का इतिहास', विरजानंद वैदिक संस्थान, ज्वालापुर, सहारनपुर- १९५०
९) 'पातंजल योगसूत्र', संपा. बलराम सदाशिव अग्निहोत्री,प्रवीण प्रकाशन, औंध पुणे- २०००
१०) 'योगसूत्रम् (षट्टीकोपेतम्)', संपा. ढुण्ढिराज शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान् वाराणसी- २००९
११) 'पातंजलयोगदर्शनम्', संपा. रामशंकर भाट्टाचार्य, (तत्त्ववैशारदीसहित)- १९६३
१२) सांख्य-योगदर्शनम् अर्थात् पातंजलदर्शनम्', संपा. गोस्वामी दामोदर शास्त्री चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी- २०१८
१३) 'योगवार्तिक', विज्ञानभिक्षु, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी प्र. सं.- १९७१
१४) 'भावागणेशवृत्ति', संपा. रमाशंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी
१५) 'योगसिद्धान्तचन्द्रीका', संपा. नारायणतीर्थ, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
१६) 'मनुस्मृति अर्थात मानवधर्मशास्त्र', संपा. गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, मुंशी नवलकिशोर सी.आई.ई. छापखाना लखनऊ.१९९७

'याज्ञवल्क्यस्मृतिः', संपा. उमेशचंद्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी- १९९४

---०---

योग और स्वास्थ्य लाभ

डॉ. चन्द्र भूषण
सहायक प्राध्यापक
एस एल के कालेज, सीतामढ़ी

सारांश-

योग अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही प्राचीन जीवन पद्धति है जो शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का एवं आध्यात्मिक चेतना व ऊर्जा का श्रेष्ठ साधन है। "योग" शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना। युज्यतेऽनेनेति योगः। अर्थात् शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में जोड़ना। योग के महान् ग्रंथ पतंजलि योग दर्शन में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है- **योगश्चित्तवृत्तिर्निरोधः**। अर्थात् चित्त (मन) की वृत्तियों पर नियंत्रण करना ही योग है। पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग को अष्टांग कहा गया है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों को अपने दैनिक चर्या में धारण कर हम अपने जीवन को स्वस्थ और आनंदमय बना सकते हैं। आज के प्रदूषित वातावरण में योग के विभिन्न आसनों के अभ्यास से विभिन्न रोगों मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोगों से मुक्ति पा सकते हैं। यथा श्वासन उच्च रक्तचाप को सामान्य करता है, वक्रासन हमें अपच जैसे अनेक रोगों से बचाता है। अद्यतन कंप्यूटर युग में दिन भर उसके सामने बैठकर काम करने से अनेक लोगों को कमर और गर्दन में दर्द की शिकायत एक आम बात सी हो गई है ऐसे में शलभासन और ताड़ासन हमें बिना दर्द निवारक दवा के उस दर्द से मुक्ति दिलाता है। पवन मुक्तासन अपने नाम के अनुरूप पेट से गैस की समस्या को दूर कर करता है मेरुदंड आसन गठिया नामक रोग से मुक्ति दिलाता है इस प्रकार

योग में अनेकों ऐसे आसन हैं जिनको जीवन में अपनाने से कई रोग समाप्त हो जाते हैं और खतरनाक रोगों के प्रभाव भी कम होने लगते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास हृदय रोगियों के लिए संजीवनी औषधि है उनके नियमित अभ्यास से फेफड़ों की कार्य क्षमता में सुधार होता है। आज की भागमभाग जिंदगी में आए तनाव को कम करने में प्रणाम अत्यंत कारगर है। इसके अलावा उच्च रक्तचाप को काम करने में और नींद की गुणवत्ता सुधारने में प्राणायाम अत्यंत प्रभावी हैं। प्रतिदिन ध्यान लगाने से मानसिक शांति मिलती है चित्त एकाग्र होता है। स्मृति में वृद्धि होती है। इस प्रकार यदि हम अपने व्यस्ततम दिनचर्या में कुछ समय निकालकर योग का अभ्यास करते हैं तो हम अपने को तंदुरुस्त रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त योग हमें सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। योग के नियमित अभ्यास से हमारे शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। ये कहना अतिशयोक्ति ना होगा कि योग हमारे लिए सर्वविध लाभदायक हैं। ये हमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करते हैं। इन्हीं महत्त्वों से अवगत हो कर पूरा विश्व योग को अपना रहा है और प्रतिवर्ष 21 जून को योग दिवस मना कर उसे अपने दैनिक चर्या में धारण करने का संकल्प ले रहा है। योग की शिक्षा को ना केवल भारत में अपितु विश्व के अनेक देशों में विभिन्न शिक्षण संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यचर्या में सम्मिलित कर उसका अध्ययन एवं अध्यापन कराया जा रहा है तथा इस पर अनेक अनुसंधान कार्य संपादित किए जा रहे हैं।

परिचय-

योग स्वस्थ जीवन जीने की कला एवं विज्ञान है जो शरीर, मन और आत्मा के मध्य सामंजस्य स्थापित कर व्यक्तिगत चेतना का सार्वभौमिक चेतना के साथ एकाकार कर देता है। योगदर्शन के प्रवर्तक महर्षि पतंजलि "योग" शब्द का अर्थ चित्तवृत्ति का निरोध करते हैं।[1]

---

[1] योगश्चित्तवृत्तेर्निरोधः। योगसूत्र- 1.2

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति ये पञ्चविध वृत्तियाँ[1] जब अभ्यास और वैराग्य[2] द्वारा निरुद्ध हो जाती हैं और आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है[3], तब **योग** होता है। महर्षि व्यास योग का अर्थ **समाधि**[4] करते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में जीवात्मा और परमात्मा के संयोग (मिलन) को **योग** कहा गया है।[5] व्याकरणशास्त्र में युज् धातु से घञ प्रत्यय करने पर योग शब्द व्युत्पन्न होता है- **युज्यते अनेनेति योगः** अर्थात् शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में जोड़ना। महर्षि पाणिनि ने धातुपाठ में **समाधि** (युज समाधौ), **योग** (युजिर् योगे) तथा **संयम** (युज संयमने) अर्थ में युज् धातु का पाठ किया है। इसप्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि संयम पूर्वक साधन करते हुए आत्मा का परमात्मा के साथ संयोग कर समाधि का आनंद लेना ही **योग** है। योगाभ्यास का उद्देश्य सभी त्रिविध दुखों से आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करना है जिससे प्रत्येक व्यक्ति जीवन में स्वास्थ्य, पूर्ण स्वतंत्रता, प्रसन्नता और सामंजस्य का अनुभव कर सके।

योग का उद्भव एवं विकास-

अनेक साक्ष्यों से सिद्ध है कि योग का अभ्यास भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से किया जाता रहा है और यह अलग-अलग युगों में अलग-अलग रूपों में विकसित हुआ है। यद्यपि वर्तमान में प्रचलित आधुनिक योग मूल रूप से बहुत अलग है तथापि इसके मूल सिद्धांत और स्वास्थ्य-लाभ समान है। योग के विकासवादी चरणों की पहचान निम्न प्रकार से की गई है-

---

[1] प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। योगसूत्र 1/6

[2] अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र- 1/12

[3] तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्। योगसूत्र- 1/3

[4] योगः समाधिः। व्यासभाष्य योगसूत्र- 1/1

[5] संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो। याज्ञवल्क्यस्मृति

पूर्व वैदिक काल (3000 ईसा पूर्व से पहले)-

पुरातत्त्वविदों के अनुसार हड़प्पा और मोहनजोदारो के उत्खनन में अनेक योग मुद्राओं के चित्रण पाए गए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उस समय योग का अभ्यास किया जाता था।[1]

वैदिक काल (3000 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व)-

वैदिककालीन योग- योग की परिभाषा (**युज्यते अनेनेति योगः**) के बहुत करीब था अर्थात् व्यक्तिगत स्वयं(आत्मा) का परमात्मा के साथ मिलन। इस काल में योगाभ्यास एकाग्रता विकसित करने और जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्ति पाने का अनुष्ठान(सोपान) था।[2] इस काल में यज्ञ और योग का बहुत महत्त्व था जिसकी पुष्टि ऋग्वेद की एक ऋचा से होती है जिसमें उल्लेख है कि योग के बिना विद्वान् का भी यज्ञ सफल नहीं होता-

यस्मादृते न सिद्ध्यति यज्ञो विपश्चितश्चनः।
स धीनां योगमन्विति। ऋग्वेद 1.18.7

उत्तर वैदिक काल (800 ईसा पूर्व से 250 ईसा पूर्व)-

इस काल के महत्त्व पूर्ण ग्रंथों उपनिषद्, रामायण, महाभारत और भगवद्गीता में अनेकत्र योग के वर्णन प्राप्त होते हैं। भगवद्गीता वर्णित योग योग के विभिन्न रूपों में सम्मिलित है[3]- ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और राजयोग। योग प्राणायाम और आसन से संबंधित अभ्यास के बजाय जीवन शैली का अधिक हिस्सा था।

---

[1] वर्मा, डॉ. विनोद, सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए योग, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, पृ० सं० 23

[2] योग का इतिहास लिंक- https://hi.wikipedia.org/wiki/ योग_का_इतिहास से आहरित

[3] लोके अस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।। गीता 3.3

शास्त्रीय काल (184 ईसा पूर्व से 148 ईसा पूर्व)-

इस काल में पतंजलि ने वेदों में विकीर्ण योग विद्या को प्रथम बार समग्र रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने योग को 195 सूत्रों में संक्षिप्त रूप में संकलित किया।[1] योग पर पतंजलि का दृष्टिकोण राजयोग के नाम से जाना जाता है। पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग के आठ अंग हैं[2]- यम (सामाजिक आचरण), नियम (व्यक्तिगत आचरण), आसन (शारीरिक मुद्राएं), प्राणायाम (श्वास का नियमन), प्रत्याहार (इंद्रियों को उनके विषयों से वापस लेना), धारणा(एकाग्रता), ध्यान और समाधि (पारगमन)। यद्यपि पतंजलि ने योग में आसन और प्राणायाम को स्थान दिया है लेकिन उनका उपयोग केवल ध्यान और समाधि के बाद की प्रथाओं के रूप में किया गया। पतंजलि के सूत्र किसी आसन या प्राणायाम का नाम नहीं लेते।

इस अवधि में योग से संबंधित अनेक ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें पतंजलि का योगसूत्र, योगयाज्ञवल्क्य, योगाचार भूमिशास्त्र और विशुद्धिमग्ग प्रमुख हैं।

उत्तरशास्त्रीय काल (500 ईसा से 1500 ईसा)-

इस काल में पतंजलि के अनुयायियों ने शरीर और मन के शुद्धि के लिए आसन, क्रिया और प्राणायाम को अधिक से अधिक महत्त्व देकर योग को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। शरीर और मन की शुद्धि से अभ्यासकर्त्ताओं को समाधि जैसे अभ्यास के उच्च स्तर तक पहुँचने में सहायता मिली।[3] योग का यह रूप **हठयोग** कहलाता है।

---

[1] योग का इतिहास लिंक-https://hi.wikipedia.org/wiki/योग_का_इतिहास से आहरित

[2] यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयो अष्टावङ्गानि। योग सूत्र 2/29

[3] योग का इतिहास लिंक- https://hi.wikipedia.org/wiki/योग_का_इतिहास

आधुनिक काल-

सर्वप्रथम स्वामी विवेकानंद ने योग को शेष विश्व से परिचित कराया जब उन्होंने अमेरिका के शिकागो में आयोजित धर्मसंसद में अपने ऐतिहासिक भाषण में इसका उल्लेख किया। महर्षि महेश योगी, परमहंस योगानन्द, रमन महर्षि, महर्षि अरविन्द, स्वामी सत्यानंद प्रभृति अनेक योगियों ने अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के माध्यम से पश्चिमी दुनिया को गहराई से प्रभावित किया और धीरे-धीरे पूरे विश्व में योग को अनुष्ठान आधारित धार्मिक सिद्धान्त के बजाय एक धर्मनिरपेक्ष आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में स्वीकार किया गया।[1] इसके बाद टी. कृष्णमाचार्य ने तीन शिष्यों बी.के.एस. अयंगर, पट्टाभिजोइस, टी.वी.के. देसिकाचर को प्रशिक्षित किया। इन योगगुरुओं ने योग को विश्वस्तर पर लोकप्रिय बनाया है। तदनंतर स्वामी रामदेव ने योग का प्रचार-प्रसार विश्व में जन जन तक पहुंचा कर शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जनमानस को जागृत किया है।

27.09.2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में भारतीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के विश्व में शांति और सद्भाव के लिए अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने के प्रस्ताव को महासभा द्वारा स्वीकार किया गया और 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में घोषित किया गया। प्रथम अंतर्राष्ट्रीय योग 21 जून 2015 को मनाया गया।[2]

योग के अंग-

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योग के आठ अंग हैं-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।।

यो० दर्शन 2/29

---

[1] वहीं

[2] वहीं

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम-

यम योग का प्रथम सोपान है जो एक निषेधात्मक आचरण है। इसके पाँच अंग हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।[1]

अहिंसा- किसी भी प्राणी को मनसा, वाचा और कर्मणा शारीरिक अथवा मानसिक कष्ट न पहुँचाना अहिंसा कहलाता है।

सत्य- जैसा देखा, सुना और जाना वैसा ही भाव मन, वचन और कर्म से व्यक्त करना सत्य कहलाता है।

अस्तेय- मन वचन और कर्म से चोरी न करना अस्तेय है। अन्यायपूर्ण तरीके से किसी दूसरे का अधिकार व धन छिनना।

ब्रह्मचर्य- वीर्य की रक्षा योग व आयुर्वेद की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। दूसरा अर्थ मन पर नियंत्रण करना है।

अपरिग्रह- आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना अपरिग्रह है।

नियम-

यह योग का द्वितीय अंग है। जहाँ यम निषेधात्मक प्रकृति के हैं वहीं नियम विधेयात्मक प्रकृति के हैं। नियम के भी पाँच अंग है[2]

शौच- अन्तः और बाह्य से शरीर की शुद्धि व पवित्रता शौच है।

संतोष- पूर्ण प्रयत्न व पुरुषार्थ के पश्चात् किए हुए कर्म का जो भी फल मिले उससे संतुष्ट रहना संतोष है।

तप- अपने लक्ष्य की प्राप्ति में आने वाले विघ्न व बाधाओं को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना तप है।

---

[1] यमाः पंचधा- अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः।। योगसूत्र- 2/30

[2]शौचसंतोषतपस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। योगसूत्र- 2/32

स्वाध्याय- आत्मसाक्षात्कार और मोक्ष-साधक शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है।

ईश्वरप्रणिधान- किए गए समस्त कर्मों को फल सहित ईश्वर को समर्पित करना ईश्वरप्रणिधान कहलाता है।

आसन-

आसन योग का तृतीय अंग है। आसन शरीर को साधने का उत्तम माध्यम है। महर्षि पतंजलि ने स्थिररूप से तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया को आसन कहा है।[1] पातंजल योगसूत्र में आसनों का नामशः उल्लेख नहीं किया गया है परंतु परवर्ती योगाचर्यों ने अनेक आसनों की कल्पना की है।

प्राणायाम-

प्राणायाम योग का चतुर्थ अंग है। पतंजलि के अनुसार आसन के सिद्ध होने पर श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है-

तस्मिन् सति श्वासप्रवासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।। योगसूत्र- 2/49

प्राणायाम मन की चंचलता और विक्षुब्धता पर नियंत्रण प्राप्त करने में परम सहायक है।

प्रत्याहार-

यह योग का पंचम अंग है। महर्षि पतंजलि के अनुसार जो इंद्रियाँ चित्त को चंचल कर रही हैं, उन इंद्रियों का विषयों से हट कर एकाग्र हुए चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना प्रत्याहार है।[2]

धारणा-

यह पातंजल योग का छठा अंग है। योगदर्शन के अनुसार किसी स्थान विशेष पर चित्त को दृढ़तापूर्वक स्थिर करने की प्रक्रिया को **धारणा** कहा जाता है[3] अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार द्वारा

---

[1] स्थिरसुखमासनम्। योगसूत्र 2/32

[2] स्वविषयात्संयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।। योगसूत्र- 2/54

[3] देशबंधश्चित्तस्य धारणा।। योगसूत्र- 3/1

इंद्रियों को उनके विषयों (रूप, रस, गंध, शब्द और स्पर्श) से हटाकर चित्त में स्थिर किया जाता है, स्थिर एवं एकाग्र किये गए चित्त को एक 'स्थान विशेष' पर रोक लेना ही धारणा है।

इससे पूर्व के पांच अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार योग (समाधि) के बाह्य अंग (साधन)[1] तथा धारणा, ध्यान और समाधि योग के अंतरंग[2] साधन कहे गये हैं।

ध्यान-

किसी एक स्थान या वस्तु पर निरन्तर चित्त का स्थिर होना ही ध्यान है। जब ध्येय वस्तु का चिन्तन करते हुए चित्त तद्रूप हो जाता है तो उसे ध्यान कहते हैं।[3] पूर्ण ध्यान की स्थिति में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान अथवा उसकी स्मृति चित्त में प्रविष्ट नहीं होती।

समाधि-

यह चित्त की परम अवस्था है जिसमें चित्त ध्येय वस्तु के चिंतन में पूरी तरह लीन हो जाता है।[4] योगदर्शन समाधि के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति को संभव मानता है।

योग की पूर्ण साधना के लिए इन आठों अंगों का क्रमशः ज्ञान एवं अभ्यास आवश्यक होता है। क्रमशः एक-एक अंग पर पूर्ण अधिकार होने के पश्चात् अगले अंग में प्रवृत्त होना चाहिए। इनके अनुष्ठान से क्लेश रूपी अशुद्धि दूर होती है और सम्यक् ज्ञान का प्रकाश बढ़ता है-

योगाङ्गानुष्ठादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योगसूत्र 2/28

---

[1] तदपि बहिरंगं निर्बीजस्य।। योगसूत्र- 3/8

[2] त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः।। योगसूत्र- 3/7

[3] तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। योगसूत्र- 3/2

[4] तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।। योगसूत्र- 3/3

स्वास्थ्य-

"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" संसार में सर्वविध उन्नति का मूल कारण शरीर है[1]। मानव जीवन का लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय की साधना करते हुए परमतत्त्व की प्राप्ति करना है। अतः व्यक्ति को सभी कार्य छोड़कर सर्वप्रथम शरीर के स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए-

सर्वमन्यं परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावे हि भावानां सर्वभावः शरीरिणाम्।।[2]

स्वस्थ व्यक्ति ही आत्मिक और सामाजिक उन्नति कर सकता है। अस्वस्थ व्यक्ति कथमपि इस लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। प्रायशः स्वस्थता का अभिप्राय शारीरिक स्वस्थता से लिया जाता है परन्तु शरीर के साथ-साथ मन, बुद्धि और आत्मा की स्वस्थता भी अनिवार्य है। आयुर्वेद स्वास्थ्य को सम्पूर्ण रूप में इन शब्दों में परिभाषित करता है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

सुश्रुत संहिता 15/48

अर्थात् वही व्यक्ति पूर्णरूपेण स्वस्थ है जिसके वात, पित्त व कफ रूप तीनों दोष सम हों, जठराग्नि समुचित पाचनकार्य में सक्षम हो, शरीर धारक धातुएँ समानुपात में हों, मलमूत्रविसर्जन की क्रिया अबाधतया होती हो तथा जिसका आत्मा, मन और इंद्रिय प्रसन्न हों।

---

[1] आयतनं सर्वविद्यानां मूलं धर्मार्थकाममोक्षाणाम्।
प्रेयः किमन्यत् शरीरमजरामरं विहायैकम्।।
भद्रसेन, आचार्य, योग और स्वास्थ्य, विजय कुमार गोविंदराम हासानंद, 2017, पृ.सं. 10 से आहरित

[2] चरक संहित- 6/7

1948 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य को सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की सुस्थिति के रूप में परिभाषित किया था, न कि केवल बीमारी या दुर्बलता की अनुपस्थिति के रूप में।[1]

स्वास्थ्य में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, व्यावसायिक, नैतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक आयाम सम्मिलित है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य एक गतिशील और बहुआयामी अवस्था है। इसलिए उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति केवल समग्र दृष्टिकोण के उपयोग से ही संभव है जो इसके प्रत्येक आयाम को पूरा करता है। योग इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उत्तम व श्रेष्ठ साधन है।

योग और स्वास्थ्य-

उपर्युक्त स्वास्थ्य की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य एक गतिशील और बहुआयामी अवस्था है तथा उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति केवल समग्र दृष्टिकोण के उपयोग से ही संभव है जो इसके प्रत्येक आयाम को पूरा करता है। योग इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उत्तम व श्रेष्ठ साधन है।

शारीरिक स्वास्थ्य-

शारीरिक स्वास्थ्य में योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। योग के आठ अंगों में तृतीय और चतुर्थ अंग **आसन** व **प्राणायाम** के सतत् अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है। योगासनों के अभ्यास से शारीरिक शक्तियां विकसित होती हैं जिससे शरीर हृष्ट पुष्ट बनता है।[2] उससे अंग प्रत्यंग की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं नीरोग बनता है। आसन और प्राणायाम के नियमित अभ्यास से सभी अंग सुचारु रूप से

---

[1] Health is a state of complete physical, mental, social and spiritual well-being and not merely the absence of disease or infirmity – W.H.O , 1948

[2] हठयोगप्रदीपिका 2.78

कार्य करते हैं तथा अन्तःस्रावी तंत्र प्रभावित होता है तथा ग्रंथियों के स्राव संतुलित होते हैं जिससे शरीर स्वस्थ होता है।

वही हठयोग के षट्कर्मों के अभ्यास द्वारा शरीर में व्याप्त मल बाहर निकलते हैं। शरीर शुद्ध होता है। कुपित वात, पित्त और कफ संतुलित होता है। वमन से कफ व पित्त की निवृत्ति होती है। इस प्रकार तीनों दोषों की सम अवस्था प्राप्त होती है। यही साम्यावस्था ही पूर्ण स्वास्थ्य है जिसे आयुर्वेद में मान्यता दी गई है।[1]

योग के अनुष्ठान से शरीर के रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। वर्तमान में प्रदूषित वातावरण तथा जीवनशैली के कारण फैल रहे अनेक मनोदैहिक रोगों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। योग के विभिन्न आसनों के अभ्यास से मधुमेह[2], उच्च रक्तचाप[3], कमरदर्द, पीठदर्द जैसे अनेक रोगों से मुक्ति पा सकते हैं। शीर्षासन, सर्वांगासन, मयूरासन, धनुरासन, शलभासन आदि योगासनों का अग्न्याशय पर विशेष प्रभाव होने के कारण मधुमेह के उपचार में अचूक औषधि है। पद्मासन, वीरासन, हलासन, सिद्धासन प्रभृति आसन उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने में अत्यन्त उपयोगी है। वज्रासन हमें अपच जैसे अनेक रोगों से बचाता है। पवनमुक्तासन अपने नाम के अनुरूप पेट के गैस की समस्या को दूर करता है। मेरुदंड आसन गठिया से बचाता है। शलभासन और ताड़ासन कमर, पीठ और गर्दन में दर्द से बिना किसी दर्दनिवारक दवा के मुक्ति दिलाता है।

---

[1] सुश्रुत संहिता 15/48

[2] पल्लव सेनगुप्ता, योग और प्राणायाम के स्वास्थ्य प्रभाव:एक अत्याधुनिक समीक्ष, पी एम सी, 2012, पृ.सं. 7

[3] तनेजा देवेन्द्र कुमार,योग और स्वास्थ्य, इंडियन जे कम्यूनिटी मेड, 2014 अप्रैल-जून; 39 (2); 68-72 https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC4067931/

प्राणायाम के अभ्यास से वायु का शुद्ध सात्विक अंश शरीर में अधिक से अधिक मात्रा में प्रवेश करता है जिससे जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है तथा प्रश्वास के द्वारा अधिक से अधिक मात्रा में विजातीय द्रव्य बाहर निकलते हैं तथा मन एकाग्र तथा शरीर को स्थिरता प्राप्त होती है। मनुस्मृति के अनुसार प्राणायाम से मन आदि इंद्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं जैसे अग्नि में तपाने से सुवरनाड़ी धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं।[1] **प्राणायाम** हृदय रोगियों के लिए संजीवनी औषधि है उनके नियमित अभ्यास से फेफड़ों की कार्यक्षमता में सुधार होता है जिससे दमा, कोरोनरी[2] जैसे रोगों के प्रभाव कम हो जाते हैं। आज के व्यस्ततम एवं प्रतिस्पर्धा पूर्ण जीवन में आए चिंता, तनाव एवं अवसाद को दूर करने में अत्यन्त प्रभावी है। मोटापा तथा अधिक वजन जैसी विश्वव्यापी समस्या व रोग को जिसके कारण मानसिक तनाव व अवसाद होते हैं आसन तथा प्राणायाम के अभ्यास से दूर व नियंत्रण किया जा सकता है।[3]

इस प्रकार आसन और प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से जीवन से साध्य रोग समाप्त हो जाते हैं तथा असाध्य रोगों के प्रभाव कम हो जाते हैं। आज विश्व स्वास्थ्य संगठन भी इस बात को मान्यता देता है कि वर्तमान में व्याप्त शारीरिक व मानसिक रोगों के उपचार में योग एक अचूक चिकित्सा पद्धति है जिसके द्वारा शारीरिक क्षमता में वृद्धि कर शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में योग के शारीरिक महत्त्व को इस प्रकार वर्णन किया गया है-

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।। श्वेता. उपनि. 2/12

---

[1] दह्यन्ते ध्मायमानानां धातुनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।। मनुस्मृति 6/71

[2] वहीं

[3] वहीं

मानसिक स्वास्थ्य-

योग मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति में परम सहायक है। **ध्यान** और **धारणा** हमारे मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं। आज के भौतिक समाज में दूषित एवं व्यस्ततम जीवनशैली तथा स्पर्धायुक्त परिवेश के कारण चिंता, तनाव, अवसाद[1] जैसे विभिन्न मानसिक रोगों में निरन्तर बृद्धि होती जा रही है। मानसिक रोग भयावहता का रूप लेते जा रहे हैं जिनका निराकरण करने में आधुनिक विज्ञान व चिकित्सा पद्धति असमर्थ है। इन रोगों के उपचार में योग एक अचूक चिकित्सा पद्धति है। मानसिक रोग मन से उपजते हैं। प्राणायाम, ध्यान व धारणा के नियमित अभ्यास से व्यक्ति का मन पर नियंत्रण हो जाता है जिसके कारण उसे मानसिक एकाग्रता तथा परम शांति मिलती है।

सामाजिक स्वास्थ्य-

अष्टांग योग के **यम** और **नियम** नैतिकता और सामाजिक आचरण के सार्वभौमिक नियम हैं।[2] वे सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामुदायिक चिकित्सा के आधुनिक सिद्धांतों के समान हैं। यम और नियम हमारे व्यवहार और चरित्र को शुद्ध सात्विक व निर्मल बनाते हैं। चारित्रिक स्वास्थ्य की प्राप्ति ही इनका मूल उद्देश्य है।

योग का महत्त्व जितना वैयक्तिक स्तर पर पाया जाता है उतना ही सामाजिक स्तर पर भी पाया जाता है। समाज का निर्माण व्यक्तियों से मिलकर हुआ है। यदि समाज में रहने वाले व्यक्ति यम और नियम का पालन करते हैं, तो उससे सुंदर, अनुशासित, सभ्य एवं संयमी समाज का

---

[1] वहीं

[2] एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।। योगदर्शन. 2/31

निर्माण होता है। योग साधना में प्रवृत्त व्यक्ति चरित्रवान्, दृढ़ता से सत्पथ पर चलने वाला तथा लोकमंगल के लिए समर्पणकर्ता होता है।[1]

भावनात्मक स्वास्थ्य-

हमारे भावनात्मक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में अष्टांग योग अत्यन्त सहायक है। **प्राणायाम** और **प्रत्याहार** के निरन्तर अभ्यास हमारे भावनात्मक स्वास्थ्य को बेहतर व श्रेष्ठ बनाते हैं। योग के अभ्यास से मन पर नियंत्रण हो जाता है जिसके कारण मनोगत भावनाएं नियंत्रित होती हैं तथा नकारात्मक भाव व विचार दूर हो जाते हैं परिणामस्वरूप व्यक्ति का विश्वास बढ़ कर जीवनी शक्ति का विकास होता है जिससे दुःख, निराशा तथा अंतर्वेदना पर नियंत्रण पाया जा सकता है।[2]

आध्यात्मिक स्वास्थ्य व विकास-

मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। इसका माध्यम हमारा मन है। यह मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है- **"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः"**

योग के नियमित अभ्यास से मन पर नियंत्रण प्राप्त करके मन को ईश्वरोन्मुख बना कर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। योग के आध्यात्मिक महत्त्व को घेरण्ड संहिता में वर्णित करते हुए कहा गया है- जिस प्रकार क ख अक्षराम्भ का अभ्यास करते करते व्यक्ति शास्त्र का विद्वान् बन जाता है उसी प्रकार योग का अभ्यास करते करते तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार योग मोक्ष को प्राप्त करने का श्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम साधन है।[3]

---

1 यादव अमरजीत और तातेड़ सोहन राज, योग एवं समग्र स्वास्थ्य, शालज पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2023, पृ.सं. 1

2 भद्रसेन, आचार्य, योग और स्वास्थ्य, विजय कुमार गोविंदराम हासानंद, 2017, पृ.सं. 221

3 अभ्यासात्कादिवर्णानां यथा शास्त्राणि बोधयेत्।
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं लभ्यते।। घेरण्डसंहिता 1/5

आर्थिक महत्त्व-

मनुष्य के जीवन में योग और अर्थ का साक्षात् संबंध है। मानव जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मूल में आरोग्य की प्राप्ति कर धर्म के साथ-साथ अर्थ का उपार्जन किया जा सकता है।[1] अपने आर्थिक स्तर को वही मनुष्य उच्च स्तर का बना सकता है जो स्वस्थ होगा। स्वस्थ मनुष्य ही अपनी आय के साधनों का समुचित विकास कर अपनी आय को बढ़ा सकता है।

यौगिक अभ्यास के अंतर्गत कर्मयोग हमें निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देता है जिससे कर्मयोगी अपने व्यवसाय को विस्तृत कर अधिक आय उपार्जित कर सकता है। योगाभ्यास से कार्यक्षमता विकसित कर बड़े-बड़े उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों और कर्मचारियों की कार्यक्षमता एवं कुशलता को बढ़ाया जा सकता है जिससे आर्थिक क्षेत्र में लाभ व उत्पाद में वृद्धि की जा सकती है। अस्वस्थ होने पर व्यक्ति का आर्थिक स्तर प्रभावित होता है। रोगोपचार में होने वाले व्यय व इसके दुष्प्रभाव शारीरिक और मानसिक रूप से भी व्यक्ति को प्रभावित करते हैं और कार्यक्षमता भी प्रभावित होती है। योग के नियमित अभ्यास से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर मनुष्य अपने जीवन में आर्थिक सुसम्पन्नता ला सकता है।

नैतिक विकास व महत्त्व-

योग व्यक्ति के जीवन में नैतिक मूल्यों और सद्गुणों को विकसित करने में परम सहायक है। अष्टांग योग के व्यावहरिक व चिकित्सीय पक्ष है। यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान) हमारे व्यवहार की शुद्धि कर

---

1 धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम् ।
उत्तराखंड मुक्त विश्वविश्वविद्यालाय, स्वस्थवृत्त, आहार और पोषण से आहरित
https://www.uou.ac.in

नैतिक मूल्यों का विकास करते हैं। आधुनिक शिक्षा प्रणाली आधारित नैतिक शिक्षा बालकों में समुचित रूप में नैतिक मूल्यों को विकसित नहीं कर पाती है प्रत्युत योगाभ्यास से बालक व सभी वर्ग के व्यक्ति में नैतिक मूल्य तथा सदाचार विकसित किए जा सकते हैं।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि योग एक ऐसा पूर्ण विज्ञान है, जीवन शैली है, अनुशासन है, चिकित्सा पद्धति है एवं अध्यात्मविद्या है जिसका हमारे जीवन के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक, नैतिक व चारित्रिक प्रत्येक पक्ष पर अत्यधिक विकासात्मक प्रभाव पड़ता है। अष्टांग योग के निरन्तर अभ्यास द्वारा हम अपने जीवन शैली को सुव्यवस्थित, सुसंयमित, सुसंस्कारित एवं अनुशासित बना कर अपने जीवन को स्वस्थ और आनंदमय बना सकते हैं तथा आज के व्यस्ततम जीवन व प्रदूषित वातावरण में जनित विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से निवृत्ति पा सकते हैं तथा उनका प्रबंधन कर सकते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त यह योग आज केवल योगियों तक सीमित नहीं है प्रत्युत जन-जन के बीच लोकप्रिय व आदर्श जीवन पद्धति बन चुकी है। प्रत्येक मनुष्य अपने स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए शारीरिक व मानसिक रोगों के उपचार हेतु तथा कार्यक्षमता में वृद्धि हेतु, तनाव से मुक्ति हेतु व जीवन को दीर्घायुष्य प्रदान करने व दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिए योग का अनुसरण करते हुए देखा जा सकता है। प्रतिवर्ष 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग के रूप में मनाना योग की महत्ता व लोकप्रियता को सिद्ध करता है। योग की उत्कर्षता का वर्णन गीता में इस प्रकार से किया गया है-

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। गीता 6/46

अर्थात् योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना जाता है। कर्मकाण्डियों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तुम योगी बनो।

----०----

योग का मानव जीवन पर प्रभाव

डॉ. शीतल ए अग्रवाल
श्री और श्रीमती पी.के.कोटावाला आर्ट्स कॉलेज
पाटन, गुजरात

सारांश: योग पद्धति प्राचीन काल से अनवरत प्रचलित रही है। ऋषि-मुनियों द्वारा साधना में प्रयोग में लाई जाने वाली ये पद्धति उनकी साधना में तो सहायक रही हैं, साथ ही यह उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभदायक रही। हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा खोजी गई अनुपम विद्या योग सम्पूर्ण मानवता के लिए बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हुई हैं। यह विद्या मनुष्य को उसके सम्पूर्ण दु:खों से मुक्ति का सर्वोत्तम मार्ग प्रशस्त करती हैं। योग विज्ञान और कला के साथ-साथ एक सम्पूर्ण जीवन शैली हैं। यह मनुष्य को केवल मुक्ति या स्वरुप स्थिति का ही मार्ग नहीं बताता बल्कि उसके दैनिक और सांसारिक जीवन में आने वाली सम्पूर्ण व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में भी सहायक होता हैं। जीवन शैली के साथ-साथ योग एक चिकित्सा पद्धति के रुप में भी आज मान्यता प्राप्त कर चुका हैं। यह विद्या आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए जितनी प्रभावकारी हैं उतनी ही सांसारिक या गृहस्थ जीवन जीने वालों के लिए भी हैं। योग व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण के साथ-साथ उसके पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा मानवीय समस्याओं के समाधान में भी उपयोगी सिद्ध हुआ हैं।

प्राचीन ऋषि-मुनियों ने क्लेश, अतृप्ति, वासना इत्यादि को दूर करने के लिए जप-तप, भक्ति, कर्मकाण्ड आदि मार्ग बतलाये। इन साधनों को अपनाकर व्यक्ति सुख, सफलता प्राप्त कर सांसारिक जीवन को सुखमय बनाकर स्वर्ग की अभिलाषा भी रख सकता है। किंतु परमानंद की प्राप्ति, आत्मा का अंतिम लक्ष्य व सच्चा ज्ञान, कैवल्य, मोक्ष को प्राप्त करने के

लिए इन साधनों से उच्च साधन की आवश्यकता है। इन साधनो को हम योग विद्या से प्राप्त कर सकते है। क्योंकि योग विद्या पूर्णत:क्रियात्मक है। योग एक दर्शन, कला और विज्ञान है। योग एक व्यावहारिक पद्धति है। योग के द्वारा मानव शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त कर सकता है। योग के द्वारा मानव इस संसार को अन्दर तथा बाहर से देख, परख और अनुभव करने योग्य बनता है। योगसूत्र आज से दो हजार वर्षो पूर्व महर्षि पतंजलि द्वारा निर्मित सूत्रों का संग्रह है जिसकी प्रमाणिकता आज भी सिद्ध है। अन्य प्रकार के योग भी "योग सूत्र" पर आधारित है। इन सूत्रो से ज्ञानवर्धन के साथ-साथ साधक स्वयं में परिवर्तन कैसे करे, मन को नियंत्रण में कैसे लायें, बंधनों पर विजय प्राप्त कर लक्ष्य "कैवल्य" को प्राप्त करता है। मनुष्य के जीवन में समस्त दुखों को दुर करने के लिए महर्षि पंतजलि में अष्टांग योग का एक मार्ग दिया है। जिस पर चलकर हम जीवन को सुखमय बना सकते है।

1.यम-

यम का अर्थ है नियंत्रित करना इंद्रियो और मन पर नियंत्रण करना ही यम है यम के पांच विभाग है- सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, असत्य, और अपरिग्रह। अपने व्यावहारिक जीवन में इन पांच व्रतों का अभ्यास किए बिना मन की शांति और एकाग्रता सभंव ही नहीं है।

सत्य: जो जैसा सुना या जाना गया है, उसको उसी तरह से कहना सत्य है, न्याय और समानता पूर्वक व्यवहार सत्य आचरण है। मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण सर्वश्रेष्ठ धर्म है। कबीर ने भी कहा है सांच बराबर तप नहीं, और झूठ बराबर पाप। जाकों हृदय सांच है। ताको हृदय आप। महात्मा गांधी ने अपने पूरे जीवन को सत्य पर आधारित किया और उन्होंने कहाँ सत्य ही ईश्वर है। अपने व्यावहारिक जीवन में सत्य को बिना उतारे मन की शांति, एकाग्रता आना सभंव ही नही है। यह आपसी विश्वास और प्रेम बढाने का सबसे अच्छा माध्यम है।

अहिंसा: मन, वाणी तथा कर्म से किसी को भी कोई हानि न पहुंचाना अहिंसा है। पर दोष, निंदा, चुगली, क्रोध, कटुवाणी आदि के द्वारा किसी को भी कष्ट देना तथा इसके लिए किसी को उकसाना हिंसा है। यदि अपने मन तथा चित्त को शुद्ध एवं निर्मल करना है तो इससे बचना होगा। शुद्ध प्रेम ही इसका आधार है।

अस्तेय: अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। किसी दूसरे व्यक्ति की किसी वस्तु को मन, वाणी या कर्म से अपना बनाने का प्रयास करना चोरी है। सरकारी या व्यक्तिगत किसी के धन या वस्तु को अनीति पूर्वक लेना चोरी है।

ब्रह्मचर्य: ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है ब्रहम और चर्य। यहां पर ब्रह्म का तात्पर्य महान तथा चर्य का तात्पर्य आचरण है। इस प्रकार महान आचरण करने वाला ब्रह्मचारी है। मनुष्य का सबसे महान कर्म या आचरण मन, इंद्रिय पर नियंत्रण है। इसलिए अपने जीवन में ब्रह्मचर्य को मह्त्व देना आवश्यक है।

अपरिग्रह: अप्रिग्रह का अर्थ न पकडना या न ग्रहण करना है। अपनी आवश्यकता से अधिक वस्तु और धन का संग्रह करना अनुचित है। वे लोग जो संग्रह करने मे विश्वास करते है, उनका सारा समय वस्तुओं की रक्षा करने की चिंता तथा फिक्र में ही बीत जाता है। ऐसे व्यक्ति का मन सदा अशांत बना रहता है।

2. नियम-

मन को नियंत्रित करने के लिए उसे नियमों के कड़े अनुशासन में रखना चाहिए। पांच प्रकार के नियम बताए गए हैं इन नियमों को सही प्रकार से निभाते हुए आप जीवन को सही रुप से सुखमय बना सकतें है। शौच, तप, संतोष, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधानि।

शौच: अपने मन को एकाग्र करने के लिए शारीरिक व मानसिक स्वच्छता एवं पवित्रता बहुत आवश्यक है। स्नान द्वारा शारीरिक सफाई तथा

झाड़ू-पोछा द्वारा अपने अगल-बगल की चीजों को साफ सुथरा रखना बाहरी शुद्धता हैं। ईमानदारी एवं परिश्रम की कमाई का भोजन अपने शरीर निर्वाह के लिए करना यह सब शौच के अंतर्गत आता है इसी तरह शाकाहार लेना, मांस मदिर, ध्रुम तथा मधपान का त्याग करना शुचिता है इसी के साथ मन की पवित्रता आंतरिक शौच है। राग द्धेष ईर्षय, घृणा, लोभ तथा मोह जैसे मानसिक विकार मन को गंदा कर हमें आंतरिक अशुद्धि देते है। इनका त्याग कर मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा का जीवन में आचरण आंतरिक शुद्धता है।

संतोष: पूरी शक्ति के साथ कर्म करना तथा उसका जो भी फल मिले उसे यथावत् स्वीकार कर लेना संतोष है। जो व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो सकता है वह एकाग्र नहीं हो सकता है। जिसने कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है, वही पूर्ण संतुष्ट हो सकता हैं।

तप: सत्य के मार्ग पे चलते हुए मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं का धैर्य की चट्टान पर स्थित होकर सामना करना तप हैं। सुख-दुख, लाभ-हानि, तथा जय-पराजय में समान रहना तप है।

स्वाध्याय: स्व का अर्थ है स्वयं तथा अध्याय का अर्थ है अध्ययन या शिक्षण अपने-आप का अध्ययन स्वाध्याय है। आत्मशुद्धि वही कर सकता है जो रोज-रोज स्वंय की गलतियों पर प्रकाश डाले तथा उनमें निरंतर सुधार करने का प्रयत्न करता रहे।

ईश्वर प्रणिधानि: जो व्यक्ति अहंकार अपने सिर पर किए संसार घुमता है। वह कभी एकाग्र चित्त नहीं हो सकता है। निर्भयता और एकाग्रता उसी में आ सकती है जो सब कुछ ईश्वर, गुरु या कर्म सिद्धांत पर शरणागति करना सीख लें।

3. आसन:

अष्टांग योग का तीसरा अंग आसन हैं। आसन का तात्पर्य शरीर की एक विशेष स्थिति हैं। किसी एक विशेष आसन मे बिना हिले-डुले

सुख पूर्वक अधिक देर तक बैठे रहने से उस आसन विशेष में दक्षता मिलती है। मन को एकाग्र करने में शरीर की स्थिरता बहुत जरुरी है आसन शरीर की स्थिरता प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। इसलिए आसन का अभ्यास जरुरी है।

4. प्राणायाम:

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास का रुक जाना प्राणायम कहलाता है। श्वास को अंदर लेना पूरक, अंदर रोकना कुभंक तथा बहार निकालना रेचक है। ये प्राणायाम के तीन अंग है। प्राणायाम शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि में सहायक है। इसके अभ्यास से नाड़ियां शुद्ध होती हैं तथा पूरे शरीर में प्राण शक्ति का संचार होता है। इसलिए प्राणायाम का अभ्यास जरुरी है।

5. प्रत्याहार:

प्रति का अर्थ है लोटाना तथा आहर का अर्थ है भोजन करना। इस प्रकार प्रत्याहार का अर्थ हुआ भोजन न करना। जब इंद्रिया अपना आहार (रुप, रस, गंध शब्द तथा स्पर्श) न लेकर अपने संचालन केंद्र चित्त की और लौट आती हैं, तब वह प्रत्याहार हैं इंद्रिया का बहिर्मुखता का अंतर्मुख होना ही प्रत्याहार है जैसे ही इंद्रिया हमारी अंदर प्रवेश केरने लगती हैं वैसे ही हमारा मन ज्यादा शांत और एकाग्र होने लगता है और हम ना सिर्फ जीवन में बल्कि अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकते है।

6. धारणा:

शरीर के भीतर और बाहर कहीं भी किसी एक स्थान या बिंदु पर चित्त को ठहराना धारणा हैं शरीर के भीतर हृदय, चक्र, मध्य, श्वास प्रश्वास या बाहर किसी महापुरुष मूर्ति या चित्रादि मैं चित्त को बांधना धारणा है।

योग दर्शन के अनुसार- देशबंधशिचत्तस्य धारणा किसी स्थान (मन के भीतर के बहार) विशेष पर चित्त को स्थिर करने का नाम धारणा है।

7. ध्यान :

किसी एक विषय की धारणा करके मन को एकाग्र करना होता है। ध्यान करने के लिए स्वच्छ जगह पर, स्वच्छ आसन पर बैठ कर साधक अपनी आंखे बंध करके अपने मन को दूसरे सभी संकल्प- विकल्पो से हटाकर शांत कर देता है और ईश्वर, गुरु, मूर्ति, आत्मा, निराकार, परब्रह्म या किसी की भी धारणा करके उसने अपने मन को स्थिर करके उसमें ही लीन हो जाता है। ध्यान से एकाग्रता बढ़ती है, अंदर आध्यात्मिक शक्तियों का जागरण होने लगता है मन प्रसन्न और सदा चित्त खुश रह्ने लगता है।

8. समाधि :

ध्यान की उच्च अवस्था को समाधि कहते है। इस अवस्था में विचार शून्य हो जाते है। जो व्यक्ति समाधि को प्राप्त करता है उसे स्पर्श, रस, गंध, रुप एवं शब्द इन पांच विषयों की इच्छा नहीं रहती तथा उसे भूख-प्यास, शरदी-गर्मी, मान-अपमान तथा सुख-दु:ख आदि किसी की अनुभूति नहीं होती। ऐसा व्यक्ति शक्ति संपन्न बनकर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। उसके जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है।

निष्कर्ष:

योग वास्तविक जीवन के लिए एक उपयुक्त संतुलन प्रदान करता है, जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित रखने में मदद करता है। इसका अध्ययन और अनुभव सबको सिखाता है कि स्वस्थ और संतुलित जीवन जीने के लिए योग एक महत्त्व पूर्ण साधन है। योग से हम शांति, संतुलन और समृद्धि की दिशा में आगे बढ सकते है। जीवन को सुखमय बनाने से लेकर अगर आप मोक्ष तक के मार्ग पर आगे बढना चाहते है तो आपको अष्टांग योग को जीवन में उतारना होगा। अष्टांग योग सभी प्रकार के दुखों को दूर करने के लिए एक चावी का काम करता है।

सन्दर्भ:

1. रोग और योग, स्वामी सत्यानंद सरस्वती
2. योग साधन व योग चिकित्सा रहस्य: स्वामी सत्यानंद सरस्वती

3. प्राणायाम मुद्रा, स्वामी सत्यानन्द रामदेव
4. योग दर्शन, पं श्री राम शर्मा आचार्य
5. योग दर्शन, व्यास भाष्य
6. योगासन, स्वामी कुवल्यान्नद जी
7. प्राणयाम, स्वामी कुवल्यान्नद जी
8. प्राणयाम रहस्य, स्वामी रामदेव
9. भारतीय मनोविज्ञान, डॉ. रामनाथ शर्मा
10. योग परिचय, डॉ. पीताम्बर

----०----

योग की दार्शनिर्शनिकता

(The Philosophy of Yoga)

Vishal Goswami & Dr. C.V. Baldha
Department of Sanskrit, Saurashtra University

सारांश (Abstract)-

योग एक प्राचीन भारतीय परंपरा है, जो केवल शारीरिक व्यायाम नहीं बल्कि एक गहन दार्शनिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती है। यह जीवन का एक संपूर्ण मार्ग है जिसमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य के संतुलन पर जोर दिया जाता है। योग की जड़ें वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता और पतंजलि के योगसूत्रों में गहराई से समाहित हैं। यह दर्शन व्यक्ति को आत्मा (आत्मान) और परमात्मा (ब्रह्मन) के साथ जुड़ने का मार्ग प्रदान करता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य योग की दार्शनिर्शनिकता का विस्तृत अध्ययन करना है, जिसमें इसके प्रमुख सिद्धांतों, शाखाओं और उद्देश्यों का विश्लेषण शामिल है। योग की परिभाषा और इसके मूल सिद्धांतों की चर्चा करते हुए, यह पेपर पतंजलि के अष्टांग योग पर विशेष जोर देता है। अष्टांग योग आठ अंगों में विभाजित है: यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि। ये सभी अंग योगी के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। पतंजलि के अनुसार, योग का मुख्य उद्देश्य 'चित्तवृत्ति निरोधः' है, अर्थात् मन की वृत्तियों का निरोध करना, जिससे व्यक्ति आत्मज्ञान की ओर अग्रसर हो सके। योग का संबंध सांख्यदर्शन से भी है, जिसमें प्रकृति (प्रकृति) और पुरुष (आत्मा) के द्वैत को माना गया है। योग इस द्वैत को समाप्त कर आत्मा को प्रकृति से अलग करने का प्रयास करता है। वेदांत दर्शन में योग को आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति के रूप में देखा जाता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार आत्मा और परमात्मा एक ही हैं, और योग इस

अद्वैत को समझने और अनुभव करने का माध्यम है। योग के उद्देश्यों का विश्लेषण करते हुए, यह पेपर तीन प्रमुख क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करता है- आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उद्देश्य। आध्यात्मिक उद्देश्यों में मोक्ष और आत्मज्ञान की प्राप्ति शामिल है। मानसिक उद्देश्यों में मानसिक शांति, ध्यान और एकाग्रता की प्राप्ति शामिल है। शारीरिक उद्देश्यों में स्वस्थ शरीर और रोगों से मुक्ति शामिल है। योग की विभिन्न शाखाओं जैसे हठयोग, राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग का विश्लेषण भी किया गया है, जिनमें से प्रत्येक शाखा अपने विशिष्ट लक्ष्यों और विधियों के माध्यम से व्यक्ति के संपूर्ण विकास में योगदान देती है। आधुनिक जीवन में योग का महत्त्व निरंतर बढ़ रहा है। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए, बल्कि मानसिक और आत्मिक शांति के लिए भी आवश्यक हो गया है। आज के तनावपूर्ण और गतिशील जीवन में, योग एक महत्त्व पूर्ण साधन बन गया है जो संतुलन और सामंजस्य प्रदान करता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी योग के फायदों को मान्यता देने लगा है, और इसे विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगों के उपचार में सहायक माना जाता है।

निष्कर्षतः योग की दार्शनिकता एक व्यापक और गहन दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो जीवन के हर पहलू को समाहित करती है। इसके अध्ययन से न केवल व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य सुधरता है बल्कि मानसिक और आत्मिक शांति भी प्राप्त होती है। योग के विभिन्न सिद्धांतों और शाखाओं का गहन विश्लेषण करके हम इसके दार्शनिर्शनिक पहलुओं को और अधिक समझ सकते हैं और अपने जीवन में संतुलन और शांति स्थापित कर सकते हैं।

प्रस्तावना (Introduction):

योग भारतीय संस्कृति और दर्शन का एक महत्त्व पूर्ण अंग है, जिसकी जड़ें प्राचीन भारतीय ग्रंथों और परंपराओं में गहराई से निहित हैं। योग केवल शारीरिक व्यायाम का एक संग्रह नहीं है, बल्कि यह एक

व्यापक प्रणाली है जो जीवन के सभी पहलुओं- शारीरिक, मानसिक और आत्मिक को संतुलित और समृद्ध करने का उद्देश्य रखती है। योग का उद्देश्य व्यक्ति को आत्मा (आत्मान) और परमात्मा (ब्रह्मन) के साथ जोड़ना है, जिससे अंतिम मोक्ष या आत्मज्ञान की प्राप्ति हो सके।

योग का उल्लेख वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता और विशेष रूप से पतंजलि के योगसूत्रों में मिलता है। वेदों और उपनिषदों में योग को आत्मा के ज्ञान और ब्रह्म के साथ एकता की प्राप्ति के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को योग के विभिन्न मार्गों- कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और ध्यानयोग का उपदेश दिया है। पतंजलि के योगसूत्र, जो योग दर्शन का सबसे प्रमुख ग्रंथ माना जाता है, ने योग के आठ अंगों (अष्टांग योग) को विस्तृत रूप से वर्णित किया है।

योग का शाब्दिक अर्थ है 'जुड़ना' या 'सम्बंधित होना'। यह जुड़ाव व्यक्ति के भीतर आत्मा और शरीर के बीच मन और आत्मा के बीच और अंततः आत्मा और परमात्मा के बीच हो सकता है। इस जुड़ाव का लक्ष्य व्यक्ति को मानसिक और आत्मिक शांति, शारीरिक स्वास्थ्य, और जीवन के उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर ले जाना है।

योग की दार्शनिकता का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह हमें आत्मज्ञान और मोक्ष के मार्ग की ओर ले जाता है। इसके सिद्धांत और प्रथाएँ न केवल शारीरिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में सहायक हैं, बल्कि मानसिक स्थिरता और आध्यात्मिक उन्नति भी प्रदान करती हैं। योग की विभिन्न शाखाओं- जैसे हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, और ज्ञानयोग का अध्ययन करके हम इसके विभिन्न पहलुओं को समझ सकते हैं और अपने जीवन में संतुलन और शांति स्थापित कर सकते हैं।

इस शोध पत्र का उद्देश्य योग की दार्शनिर्शनिकता का विस्तृत और गहन अध्ययन करना है। इसमें योग के प्रमुख सिद्धांतों, उद्देश्यों, और शाखाओं का विश्लेषण किया जाएगा, साथ ही योग के माध्यम से

आत्मानुभूति और मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग को भी समझाया जाएगा। योग का अध्ययन हमें न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करता है, बल्कि आत्मिक उन्नति और जीवन के उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति में भी सहायक हो सकता है।

योग की दार्शनिकता का यह अध्ययन हमारे लिए महत्त्व पूर्ण है क्योंकि यह हमें भारतीय दर्शन और जीवन के गहरे रहस्यों को समझने का अवसर प्रदान करता है। योग केवल व्यक्तिगत उन्नति का साधन नहीं है, बल्कि यह समाज और विश्व के व्यापक हित के लिए भी महत्त्व पूर्ण है। योग के माध्यम से हम अपने भीतर शांति और संतुलन स्थापित कर सकते हैं, जो हमारे बाहरी जीवन में भी प्रतिबिंबित होता है।

योग भारतीय संस्कृति और दार्शनिकता का एक महत्त्व पूर्ण अंग है जिसका उल्लेख वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता और पतंजलि के योगसूत्रों में मिलता है। योग केवल शारीरिक क्रियाओं का संग्रह नहीं है बल्कि यह मानसिक, आध्यात्मिक और दार्शनिर्शनिक उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन है। इस पेपर का उद्देश्य योग के दार्शनिर्शनिक पहलुओं का विस्तृत अध्ययन करना है।

योग की परिभाषा (Definition of Yoga)

योग का शाब्दिक अर्थ है 'जुड़ना' या 'सम्बंधित होना'। इसका उद्देश्य व्यक्ति को आत्मा (आत्मान) के साथ परमात्मा (ब्रह्मन) से जोड़ना है। पतंजलि ने योग को 'चित्तवृत्ति निरोधः' के रूप में परिभाषित किया है, जिसका अर्थ है मन की वृत्तियों का निरोध करना।

योग के प्रमुख सिद्धांत (Major Principles of Yoga):

योग भारतीय संस्कृति और दर्शन का एक अभिन्न अंग है जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रदान करता है। इसके प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन प्राचीन भारतीय ग्रंथों में मिलता है, विशेष रूप से पतंजलि के योगसूत्रों में। योग के ये सिद्धांत व्यक्ति को आत्मज्ञान,

मोक्ष और संपूर्ण शांति की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। इस खंड में, हम योग के प्रमुख सिद्धांतों का विस्तृत विश्लेषण करेंगे।

1. अष्टांग योग (Ashtanga Yoga):

पतंजलि के योगसूत्रों में वर्णित अष्टांग योग योग की एक व्यापक और गहन प्रणाली है। इसका अर्थ है 'आठ अंगों का योग', जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक माने जाते हैं। अष्टांग योग योगी को आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में मार्गदर्शन करता है। अष्टांग योग के ये आठ अंग निम्नलिखित हैं:

क. यम (Yama): यम नैतिक अनुशासन और सामाजिक आचरण के नियम हैं। ये नियम योगी को समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करते हैं। पाँच प्रमुख यम इस प्रकार हैं:

अहिंसा (Ahimsa): अहिंसा का अर्थ है हिंसा से बचना और सभी जीवों के प्रति करुणा और प्रेम का भाव रखना। यह शारीरिक, मानसिक और वाणी के स्तर पर अहिंसा का पालन करना है।

सत्य(Satya): सत्य का पालन करना और सच्चाई बोलना। सत्य का अर्थ है विचार, वचन और कर्म में सत्यता का पालन।

अस्तेय (Asteya): चोरी न करना और दूसरों की वस्तुओं का अनधिकार ग्रहण न करना। यह ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का पालन करना है।

ब्रह्मचर्य (Brahmacharya):* आत्मसंयम और यौन संयम का पालन करना। यह ऊर्जा को संरक्षित रखने और आत्मिक उन्नति की दिशा में लगाने का अभ्यास है।

अपरिग्रह (Aparigraha): अनावश्यक वस्त्रों और संपत्तियों का संग्रह न करना। यह मितव्ययिता और संतोष का पालन करना है।

ख. नियम (Niyama): नियम व्यक्तिगत अनुशासन और आत्मशुद्धि के नियम हैं। ये नियम योगी को आत्मिक उन्नति की दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। पाँच प्रमुख नियम इस प्रकार हैं:

शौच (Shaucha): शारीरिक और मानसिक शुद्धि। यह शरीर और मन की स्वच्छता का पालन करना है।

संतोष (Santosha): संतोष और संतुष्टि का भाव रखना। यह परिस्थितियों में संतोष और संतुष्टि का अभ्यास करना है।

तप (Tapas): आत्मसंयम और कठिन परिश्रम। यह शरीर और मन को अनुशासित करने के लिए कठिन साधना का पालन करना है।

स्वाध्याय(Svadhyaya):आत्म-अध्ययन और आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन। यह आत्मज्ञान की दिशा में आत्मनिरीक्षण और ग्रंथों का अध्ययन करना है।

ईश्वरप्रणिधान (Ishvarapranidhana): ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति। यह ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति का पालन करना है।

ग. आसन (Asana): आसन शारीरिक मुद्राएँ हैं, जो शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्थिरता प्रदान करती हैं। योग में विभिन्न आसनों का अभ्यास शरीर को लचीला, मजबूत और स्वस्थ बनाता है। आसनों का उद्देश्य शरीर को ध्यान और ध्यान के उच्चतर चरणों के लिए तैयार करना है।

घ. प्राणायाम (Pranayama): प्राणायाम श्वास नियंत्रण की तकनीकें हैं, जो जीवन ऊर्जा (प्राण) को नियंत्रित और संतुलित करने में सहायक होती हैं। इसमें श्वास की गति, गहराई और अवधि का नियंत्रण शामिल है। प्राणायाम का अभ्यास मानसिक शांति और शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देता है।

प्रत्याहार (Pratyahara): प्रत्याहार का अर्थ है इंद्रियों का नियंत्रण और बाहरी वस्तुओं से मन का विचलन। यह आंतरिक ध्यान और आत्म-संवेदनशीलता को बढ़ावा देता है। प्रत्याहार का अभ्यास मन को बाहरी विक्षेपों से मुक्त करके आत्म-संवेदनशीलता की दिशा में ले जाता है।

च. धारणा (Dharana): धारणा का अर्थ है एकाग्रता। इसमें मन को किसी एक बिंदु, वस्तु या विचार पर केंद्रित करना शामिल है। यह ध्यान की तैयारी के लिए आवश्यक है। धारणा का अभ्यास मानसिक एकाग्रता और स्थिरता को बढ़ाता है।

छ. ध्यान (Dhyana): ध्यान एक निरंतर और गहन ध्यानावस्था है, जिसमें मन पूर्णतः एकाग्र और शांत होता है। यह मानसिक शांति और आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग है। ध्यान का अभ्यास मन की शांति और आत्मिक उन्नति को बढ़ावा देता है।

ज. समाधि (Samadhi): समाधि योग का अंतिम और सर्वोच्च अंग है, जिसमें योगी आत्मज्ञान और परम शांति की अवस्था में प्रवेश करता है। इसमें आत्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव होता है। समाधि की अवस्था में व्यक्ति आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति करता है।

2. सांख्यदर्शन (Sankhya Philosophy):

सांख्यदर्शन भारतीय दर्शन की छ: प्रमुख दर्शनों में से एक है और यह योग दर्शन का एक महत्त्व पूर्ण आधार भी है। सांख्यदर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल माने जाते हैं। यह दर्शन आत्मा और प्रकृति के द्वैतवाद पर आधारित है और जीवन और ब्रह्मांड की उत्पत्ति तथा इसके विकास का एक तार्किक और दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत करता है। संख्य दर्शन योग के प्रमुख सिद्धांतों को समझने में मदद करता है और योग की विभिन्न प्रथाओं का दार्शनिर्शनिक आधार प्रदान करता है।

क. द्वैतवाद (Dualism):

सांख्यदर्शन का मुख्य सिद्धांत द्वैतवाद है, जिसमें दो मूल तत्व माने जाते हैं: प्रकृति (प्रकृति) और पुरुष (आत्मा)।

प्रकृति (Prakriti): प्रकृति निर्जीव, परिवर्तनशील और जड़ तत्त्व है, जिसमें सभी भौतिक वस्तुएं, शरीर और मन शामिल हैं। यह त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस) होती है।

सत्व (Sattva): यह गुण प्रकाश, शुद्धता और संतुलन का प्रतीक है।

रजस (Rajas): यह गुण गतिशीलता, क्रिया और इच्छा का प्रतीक है।

तमस (Tamas): यह गुण जड़ता, अज्ञान और निष्क्रियता का प्रतीक है।

पुरुष (Purusha): पुरुष शुद्ध, चेतन और अविकारी आत्मा है। यह साक्षी भाव में रहता है और प्रकृति के साथ मिलकर संसार का सृजन करता है, लेकिन स्वयं में अपरिवर्तनीय और शुद्ध रहता है।

ख. सृष्टि का सिद्धांत (Theory of Creation):

सांख्यदर्शन के अनुसार, सृष्टि प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न होती है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से महत (बुद्धि), अहंकार और तत्पश्चात मन, इंद्रियां, और पंच महाभूतों का सृजन होता है। यह सृष्टि का क्रम इस प्रकार है:-

महत् (Buddhi): यह बुद्धि या महत तत्त्व है, जो निर्णय शक्ति का प्रतीक है।

अहंकार (Ahamkara): यह अहंकार या 'मैं' का भाव है, जो व्यक्तिगत पहचान का प्रतीक है।

मन (Manas): यह मन है, जो संवेदी और मोटर इंद्रियों को नियंत्रित करता है और विचारों का उत्पत्ति केंद्र है।

पंच महाभूत (Pancha Mahabhuta): ये पाँच भौतिक तत्त्व हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, जिनसे सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि बनी है।

ग. त्रिविध दुःख (Three Types of Suffering):

संख्य दर्शन में जीवन के तीन प्रकार के दुःखों का वर्णन है, जिनसे मुक्ति पाना ही जीवन का उद्देश्य है:

I. आधिदैविक दुःख (Adhidaivika Dukha): ये प्राकृतिक आपदाओं, जैसे तूफान, भूकंप, और प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न होते हैं।

II. आधिभौतिक दुःख (Adhibhautika Dukha): ये अन्य जीवों या मनुष्यों द्वारा उत्पन्न कष्ट हैं, जैसे हिंसा, चोरी, और शोषण।

III. आध्यात्मिक दुःख (Adhyatmika Dukha): ये स्वयं के शरीर और मन के कष्ट हैं, जैसे रोग, मानसिक तनाव, और शारीरिक पीड़ा।

घ. मोक्ष का मार्ग (Path to Liberation):

सांख्यदर्शन के अनुसार, मोक्ष का मार्ग आत्मा (पुरुष) और प्रकृति (प्रकृति) के बीच के भेद को समझने और पहचानने में निहित है। जब आत्मा (पुरुष) अपनी शुद्ध अवस्था को पहचानता है और प्रकृति के साथ अपनी पहचान को अलग करता है, तो वह मुक्ति या मोक्ष की स्थिति में पहुँच जाता है। यह मोक्ष जीवन के चक्र (जन्म और मृत्यु) से मुक्ति और अनंत शांति की प्राप्ति है।

विवेक ज्ञान(Discriminative Knowledge):

सांख्यदर्शन में विवेक ज्ञान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। यह ज्ञान आत्मा और प्रकृति के बीच भेद को स्पष्ट रूप से समझने और पहचानने की क्षमता है। विवेक ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति जान सकता है कि आत्मा शुद्ध, अचल और अविनाशी है, जबकि प्रकृति परिवर्तनशील, जड़ और नाशवान है। यही ज्ञान मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग है।

3. वेदांत दर्शन(Vedanta Philosophy):

वेदांत दर्शन भारतीय दर्शन की छ: प्रमुख दर्शनों में से एक है और इसे उपनिषदों पर आधारित माना जाता है। "वेदांत" शब्द का शाब्दिक अर्थ है "वेदों का अंत" या "वेदों का अंतिम ज्ञान"। यह दर्शन वेदों, विशेष रूप से उपनिषदों, ब्रह्मसूत्रों, और भगवद्गीता पर आधारित है। वेदांत का मुख्य लक्ष्य आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध करना है और व्यक्ति को मोक्ष (मुक्ति) की दिशा में मार्गदर्शन करना है। वेदांत दर्शन के कई उप-सम्प्रदाय हैं, जिनमें अद्वैत वेदांत, विशिष्टाद्वैत वेदांत और द्वैत वेदांत प्रमुख हैं।

क. अद्वैत वेदांत(Advaita Vedanta):

अद्वैत वेदांत, शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित, वेदांत का सबसे प्रमुख और व्यापक रूप से स्वीकृत दर्शन है। इसके मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या(Brahma Satyam Jagat Mithya): अद्वैत वेदांत के अनुसार, केवल ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या या भ्रम है। यह जगत ब्रह्म के ज्ञान के आभाव के कारण अनुभव होता है।

जीव, ईश्वर और ब्रह्म की एकता(Unity of Jiva, Ishvara, and Brahman): अद्वैत वेदांत के अनुसार, जीव, ईश्वर

और ब्रह्म एक ही हैं। आत्मा (जीव) और परमात्मा (ब्रह्म) में कोई भिन्नता नहीं है। यह ब्रह्म ही विभिन्न रूपों में प्रकट होता है।

माया(Maya): माया वह शक्ति है जो ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को छिपा देती है और जगत् का निर्माण करती है। यह अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है और आत्मज्ञान से समाप्त होती है।

आत्मज्ञान(Self-Knowledge): अद्वैत वेदांत में आत्मज्ञान को मोक्ष का मार्ग माना जाता है। आत्मज्ञान के माध्यम से व्यक्ति ब्रह्म के साथ अपनी एकता का अनुभव करता है और माया के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

ख. विशिष्टाद्वैत वेदांत(Vishishtadvaita Vedanta):

विशिष्टाद्वैत वेदांत, रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित, अद्वैत वेदांत से थोड़ा भिन्न है। इसके मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

ब्रह्म और जीव की समानता(Qualified Non-Dualism): विशिष्टाद्वैत वेदांत के अनुसार, ब्रह्म और जीव दोनों एक हैं, लेकिन जीव ब्रह्म का अंश है। जीव और जगत् ब्रह्म की विशेषताएँ हैं, जो उससे अलग नहीं हैं, लेकिन उनके रूप में भिन्नता रखते हैं।

भक्ति(Devotion): विशिष्टाद्वैत वेदांत में भक्ति को मोक्ष का प्रमुख साधन माना जाता है। ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

सर्वेश्वरवाद (Supremacy of God): रामानुजाचार्य के अनुसार, विष्णु या नारायण ही परम ब्रह्म हैं और सभी जीव और जगत् उनसे उत्पन्न होते हैं और उन्हीं में विलीन होते हैं।

ग. द्वैत वेदांत(Dvaita Vedanta):

द्वैत वेदांत, माध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित, वेदांत का एक अन्य महत्त्व पूर्ण सम्प्रदाय है। इसके मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

जीव और ब्रह्म की भिन्नता(Dualism): द्वैत वेदांत के अनुसार, जीव और ब्रह्म दो अलग-अलग वास्तविकताएँ हैं। जीव परमात्मा का अंश नहीं है, बल्कि उससे अलग है।

ईश्वर की सर्वोच्चता(Supremacy of God): द्वैत वेदांत में विष्णु को सर्वोच्च ब्रह्म माना गया है और जीव उनके शरणागत होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

भक्ति और सेवा(Devotion and Service): द्वैत वेदांत में भक्ति और सेवा को मोक्ष का प्रमुख साधन माना गया है। भगवान के प्रति प्रेम, भक्ति, और सेवा के माध्यम से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

वेदांत दर्शन के प्रमुख सिद्धांत:

वेदांत दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों में निम्नलिखित तत्व शामिल हैं:

ब्रह्म(Brahman): ब्रह्म वेदांत दर्शन का सर्वोच्च सत्य है, जो निर्गुण (गुणरहित) और निराकार (रूपरहित) है। यह अनंत, अचिन्त्य और अनिर्वचनीय है।

आत्मा(Atman): आत्मा वह शुद्ध चेतना है, जो प्रत्येक जीव में विद्यमान है। वेदांत के अनुसार, आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं।

माया(Maya): माया वह शक्ति है जो ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को छिपाती है और जगत का निर्माण करती है। यह भ्रम और अज्ञान का प्रतीक है।

मोक्ष(Moksha): मोक्ष का अर्थ है जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति और ब्रह्म के साथ एकता की प्राप्ति। यह आत्मज्ञान के माध्यम से प्राप्त होता है।

भक्ति(Devotion): भक्ति वेदांत के विभिन्न सम्प्रदायों में मोक्ष का एक महत्वपूर्ण साधन मानी जाती है। ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

4. हठयोग(Hatha Yoga):

हठयोग योग की एक प्रमुख शाखा है, जो शारीरिक मुद्राओं (आसनों), श्वास नियंत्रण (प्राणायाम) और आंतरिक शुद्धि (शुद्धि क्रियाओं) पर विशेष ध्यान देती है। "हठ" शब्द का अर्थ है "बलपूर्वक," जो इस योग की तीव्रता और साधना की आवश्यकता को दर्शाता है।

मुख्य सिद्धांत

1. **आसन(Asana):** विभिन्न शारीरिक मुद्राएँ जो शरीर को लचीला, मजबूत और संतुलित बनाती हैं।

2. **प्राणायाम(Pranayama):** श्वास की गति और नियंत्रण के माध्यम से जीवन ऊर्जा (प्राण) का संतुलन और नियंत्रण।

3. **शुद्धि क्रियाएँ(Shatkarmas):** आंतरिक शुद्धि के लिए विशेष क्रियाएँ, जैसे नेति, धौति, बस्ति, नौलि, कपालभाति, और त्राटक।

4. **बंध और मुद्रा(Bandhas and Mudras):** शारीरिक और मानसिक ऊर्जा को नियंत्रित करने के लिए विशेष तकनीकें।

5. **ध्यान(Dhyana):** मानसिक शांति और एकाग्रता के लिए ध्यान की प्रथाएँ।

उद्देश्य:

हठयोग का मुख्य उद्देश्य शरीर और मन को शुद्ध करना और ध्यान के लिए तैयार करना है। यह शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के साथ-साथ आत्मज्ञान की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

5. राजयोग(Raja Yoga)

राजयोग जिसे "राजमार्ग" या "राजाओं का योग" भी कहा जाता है, योग की एक प्रमुख शाखा है जो मानसिक और आध्यात्मिक अनुशासन

पर केंद्रित है। यह ध्यान और मानसिक एकाग्रता के माध्यम से आत्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित योगसूत्रों में वर्णित अष्टांग योग (आठ अंगों का योग) राजयोग का प्रमुख आधार है।

राजयोग के आठ अंग(Eight Limbs of Raja Yoga):

1. **यम(Yama):** नैतिक अनुशासन और सामाजिक आचरण के पाँच नियम:

- अहिंसा(Ahimsa): सभी जीवों के प्रति अहिंसा का पालन।
- सत्य(Satya): सत्य बोलना और सत्य का पालन।
- अस्तेय(Asteya): चोरी न करना।
- ब्रह्मचर्य(Brahmacharya): आत्मसंयम और यौन संयम।
- अपरिग्रह(Aparigraha): अनावश्यक वस्त्रों और संपत्तियों का संग्रह न करना।

2. **नियम (Niyama):** व्यक्तिगत अनुशासन और आत्मशुद्धि के पाँच नियम:

- शौच(Shaucha): शारीरिक और मानसिक शुद्धि।
- संतोष(Santosha): संतोष और संतुष्टि का भाव।
- तप(Tapas): आत्मसंयम और कठिन परिश्रम।
- स्वाध्याय(Svadhyaya): आत्म-अध्ययन और आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन।
- ईश्वरप्रणिधान(Ishvarapranidhana): ईश्वर के प्रति समर्पण और भक्ति।

3. **आसन(Asana):** शारीरिक मुद्राएँ जो शरीर को लचीला, मजबूत और स्थिर बनाती हैं।

4. **प्राणायाम(Pranayama):** श्वास नियंत्रण की तकनीकें, जो प्राण (जीवन ऊर्जा) को नियंत्रित और संतुलित करती हैं।

5. **प्रत्याहार(Pratyahara):** इंद्रियों का नियंत्रण और बाहरी वस्तुओं से मन का विचलन।

6. **धारणा(Dharana):** एकाग्रता, जिसमें मन को किसी एक बिंदु, वस्तु या विचार पर केंद्रित किया जाता है।

7. **ध्यान(Dhyana):** ध्यान की अवस्था, जिसमें निरंतर और गहन ध्यानावस्था में मन को स्थिर किया जाता है।

8. **समाधि(Samadhi):** आत्मज्ञान और मोक्ष की अवस्था, जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव होता है।

राजयोग के लाभ:

मानसिक शांति: ध्यान और ध्यान की प्रथाओं के माध्यम से मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है।

आध्यात्मिक उन्नति: आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

एकाग्रता और स्मरण शक्ति: धारणा और ध्यान की प्रथाओं के माध्यम से मन की एकाग्रता और स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य: आसनों और प्राणायाम के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य को सुधारता है।

6. कर्मयोग(Karma Yoga):

कर्मयोग, योग की एक प्रमुख शाखा है, जो निष्काम कर्म (स्वार्थरहित कार्य) और निःस्वार्थ सेवा पर आधारित है। यह योग भगवद्गीता में विशेष रूप से वर्णित है और इसका उद्देश्य व्यक्ति को उसके

कर्तव्यों का पालन करते हुए आत्मज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति की दिशा में मार्गदर्शन करना है। कर्मयोग के सिद्धांत व्यक्ति को उसकी कर्मों के परिणामों से मुक्त करने और ईश्वर के प्रति समर्पण के भाव को विकसित करने में सहायक होते हैं।

कर्मयोग के प्रमुख सिद्धांत

1. निष्काम कर्म(Nishkama Karma): निष्काम कर्म का अर्थ है बिना किसी फल की इच्छा के कर्म करना। व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए कर्मों के फल की चिंता नहीं करता है और उन्हें ईश्वर को अर्पित करता है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि व्यक्ति अपने कर्मों के बंधन से मुक्त हो सके।

2. कर्मफल का त्याग(Renunciation of the Fruits of Actions): कर्मयोग में कर्मफल का त्याग अत्यंत महत्वपूर्ण है। व्यक्ति को अपने कर्मों का फल ईश्वर को समर्पित करना चाहिए और उनसे संबंधित अपेक्षाओं को छोड़ देना चाहिए। यह मानसिक शांति और आत्मिक संतुलन को बढ़ावा देता है।

3. कर्तव्यपरायणता(Duty and Responsibility): कर्मयोग व्यक्ति को उसके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है। यह कर्तव्यों को ईश्वर की पूजा के रूप में मानता है और उन्हें पूर्ण समर्पण और निष्ठा के साथ पूरा करने की प्रेरणा देता है।

4. समत्व(Equanimity): कर्मयोग में समत्व का अर्थ है सभी परिस्थितियों में मानसिक संतुलन बनाए रखना। व्यक्ति को सुख और दुःख, लाभ और हानि, सफलता और असफलता में समान भाव रखना चाहिए। यह मानसिक शांति और स्थिरता को बढ़ावा देता है।

5. सेवा और परोपकार(Service and Benevolence): कर्मयोग में सेवा और परोपकार का महत्वपूर्ण स्थान है। निःस्वार्थ सेवा

और परोपकार के माध्यम से व्यक्ति अपने अहंकार को समाप्त करता है और आत्मज्ञान की दिशा में अग्रसर होता है।

कर्मयोग के लाभ:

मानसिक शांति: निष्काम कर्म और समत्व का अभ्यास मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है।

आत्मिक उन्नति: निःस्वार्थ सेवा और कर्मफल के त्याग के माध्यम से आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

कर्तव्यपरायणता: व्यक्ति को उसके कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

सामाजिक सेवा: निःस्वार्थ सेवा और परोपकार के माध्यम से समाज में योगदान करने की प्रेरणा देता है।

अहंकार का नाश: सेवा और परोपकार के माध्यम से व्यक्ति अपने अहंकार को समाप्त करता है।

भगवद्गीता में कर्मयोग:

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग के सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। वे बताते हैं कि अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए निष्काम कर्म करना ही मोक्ष का मार्ग है। भगवान कृष्ण के अनुसार, कर्मयोग के माध्यम से व्यक्ति अपने कर्मों के बंधन से मुक्त हो सकता है और आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है।

7. भक्तियोग(Bhakti Yoga):

भक्तियोग भक्ति और प्रेम पर आधारित है। इसमें व्यक्ति अपने इष्ट देवता या ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण और भक्ति भाव रखता है। भक्तियोग का उद्देश्य भक्ति के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति और आत्मज्ञान की प्राप्ति है।

भक्तियोग योग की एक प्रमुख शाखा है, जो भक्ति और प्रेम के माध्यम से आत्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है। यह योग भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण, प्रेम, और आस्था पर आधारित है। भगवद्गीता,

भागवत पुराण, और अन्य धार्मिक ग्रंथों में भक्तियोग के सिद्धांतों और अभ्यासों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

भक्तियोग के प्रमुख सिद्धांत:

1. **प्रेम और समर्पण(Love and Devotion):** भक्तियोग का मूल सिद्धांत भगवान के प्रति प्रेम और समर्पण है। व्यक्ति अपने समस्त कर्म, विचार और भावनाओं को भगवान को अर्पित करता है और पूर्ण समर्पण के साथ उनकी सेवा करता है।

2. **स्मरण(Remembrance):** भक्तियोग में निरंतर भगवान का स्मरण और उनकी लीलाओं का चिंतन महत्वपूर्ण है। यह स्मरण व्यक्ति के मन को शुद्ध करता है और उसे भगवान के प्रति स्थायी प्रेम का अनुभव कराता है।

3. **कीर्तन और भजन(Chanting and Singing Hymns):** भगवान के नाम का कीर्तन और भजन भक्तियोग का महत्त्व पूर्ण अभ्यास है। यह भगवान के प्रति प्रेम और भक्ति को अभिव्यक्त करने का माध्यम है और मन को शुद्ध करता है।

4. **सेवा(Service):** भगवान की सेवा और उनके भक्तों की सेवा भक्तियोग का एक प्रमुख अंग है। सेवा के माध्यम से व्यक्ति अपने अहंकार को समाप्त करता है और भगवान के प्रति अपनी भक्ति को प्रदर्शित करता है।

5. **आत्मसमर्पण(Self-Surrender):** भक्तियोग में आत्मसमर्पण का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति अपने जीवन, कर्म और फल को भगवान को समर्पित करता है और उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करता है।

भक्तियोग के नौ रूप(Navadha Bhakti):

भक्तियोग में नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन किया गया है, जिन्हें नवधा भक्ति कहा जाता है। ये नौ प्रकार हैं:

1. श्रवण(Shravan): भगवान की महिमा, लीलाओं और गुणों का श्रवण।

2. कीर्तन(Kirtan): भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन और भजन।

3. स्मरण (Smaran): भगवान का स्मरण और चिंतन।

4. पादसेवन (Padasevan): भगवान के चरणों की सेवा।

5. अर्चन (Archan): भगवान की पूजा और अर्चना।

6. वंदन (Vandan): भगवान के प्रति प्रणाम और वंदना।

7. दास्य(Dasya): भगवान के दास के रूप में सेवा।

8. साख्य(Sakhya): भगवान के साथ मित्रता का भाव।

9. आत्मनिवेदन(Atmanivedan): भगवान के प्रति आत्मसमर्पण।

भक्तियोग के लाभ:

मानसिक शांति: भगवान के प्रति प्रेम और समर्पण के माध्यम से मानसिक तनाव और चिंता को कम करता है।

आत्मिक उन्नति: भगवान के प्रति भक्ति और सेवा के माध्यम से आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा में मार्गदर्शन करता है।

आतरिक शुद्धि: भगवान के नाम का स्मरण, कीर्तन और सेवा के माध्यम से मन और हृदय को शुद्ध करता है।

अहंकार का नाश: भगवान के प्रति समर्पण और सेवा के माध्यम से व्यक्ति के अहंकार को समाप्त करता है।

भगवद गीता में भक्तियोग:

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को भक्तियोग की महिमा का वर्णन किया है। भगवान कृष्ण के अनुसार, भक्तियोग के माध्यम से व्यक्ति भगवान के प्रति अपनी भक्ति को प्रकट कर सकता है और उनके अनुग्रह से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति उन्हें प्रेम और भक्ति से स्मरण करता है, वह उन्हें प्रिय होता है और वे उसे मोक्ष प्रदान करते हैं।

8. ज्ञानयोग(Jnana Yoga):

ज्ञानयोग योग की एक प्रमुख शाखा है, जो ज्ञान और विवेक के माध्यम से आत्मज्ञान और मोक्ष प्राप्त करने पर केंद्रित है। यह योग दर्शन और आत्मनिरीक्षण के माध्यम से सत्य की खोज का मार्ग है। "ज्ञान" का अर्थ है "सच्चा ज्ञान" या "आध्यात्मिक ज्ञान," और ज्ञानयोग का उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध करना है।

1. **विवेक (Viveka):** विवेक का अर्थ है सही और गलत, असली और नकली के बीच भेदभाव करना। ज्ञानयोग में विवेक का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह व्यक्ति को आत्मा और माया के बीच भेदभाव करना सिखाता है।

2. **वैराग्य(Vairagya):** वैराग्य का अर्थ है सांसारिक वस्त्रों और सुखों से विरक्ति। ज्ञानयोग में वैराग्य के माध्यम से व्यक्ति माया के बंधनों से मुक्त हो सकता है और आत्मज्ञान की दिशा में अग्रसर हो सकता है।

3. **षट्संपत्ति(Shatsampatti):** छह गुणों का अभ्यास, जो आत्मज्ञान की दिशा में सहायक होते हैं:-

- शम(Shama): मन का संयम।
- दम(Dama): इंद्रियों का संयम।
- उपरति(Uparati): बाहरी विकारों से निवृत्ति।

- तितिक्षा(Titiksha): सहनशीलता और धैर्य।
- श्रद्धा(Shraddha): गुरु और शास्त्रों में विश्वास।
- समाधान (Samadhana): मन का स्थिरता और एकाग्रता।

4. **मुमुक्षुत्व(Mumukshutva):** मोक्ष की तीव्र इच्छा। ज्ञानयोग में मोक्ष की तीव्र आकांक्षा व्यक्ति को आत्मज्ञान की दिशा में प्रेरित करती है।

5. **आत्मानुभूति(Self-Realization):** आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव करना। ज्ञानयोग का अंतिम उद्देश्य आत्मानुभूति के माध्यम से मोक्ष प्राप्त करना है।

ज्ञानयोग के चरण(Stages of Jnana Yoga):

1. **श्रवण(Shravana):** शास्त्रों और उपदेशों को सुनना। यह प्रथम चरण है, जिसमें व्यक्ति गुरु या शास्त्रों से ज्ञान प्राप्त करता है।

2. **मनन (Manana):** शास्त्रों के ज्ञान का चिंतन और मनन करना। यह चरण व्यक्ति को सुने हुए ज्ञान पर गहराई से विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

3. **निदिध्यासन(Nididhyasana):** ध्यान और ध्यानावस्था में प्राप्त ज्ञान का अनुभव करना। यह अंतिम चरण है, जिसमें व्यक्ति आत्मज्ञान का प्रत्यक्ष अनुभव करता है।

ज्ञानयोग के लाभ:

आत्मिक शांति: आत्मज्ञान के माध्यम से मानसिक और आत्मिक शांति प्राप्त होती है।

माया से मुक्ति: विवेक और वैराग्य के माध्यम से माया के बंधनों से मुक्ति मिलती है।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति: आत्मा और ब्रह्म की एकता का बोध होता है।

मोक्ष: आत्मज्ञान के माध्यम से जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति

मिलती है।

भगवद गीता में ज्ञानयोग:

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञानयोग के महत्व के बारे में बताया है। उन्होंने कहा है कि सच्चे ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव कर सकता है और मोक्ष प्राप्त कर सकता है। भगवान कृष्ण ने ज्ञानयोग को आत्मज्ञान और मोक्ष का सर्वोत्तम मार्ग बताया है।

निष्कर्ष(Conclusion):

योग की दार्शनिर्शनिकता एक गहन और व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो केवल शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं है। यह आत्मज्ञान, मोक्ष और मानसिक शांति की प्राप्ति के मार्ग को दर्शाती है। योग की विभिन्न शाखाओं और सिद्धांतों का अध्ययन करके हम इसके दार्शनिर्शनिक पहलुओं को गहराई से समझ सकते हैं। आधुनिक जीवन में योग का महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि यह हमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य प्रदान करता है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची (References):

1. पतंजलि, "योगसूत्र", मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2012
2. भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. स्वामी विवेकानंद, "राजयोग", अद्वैत आश्रम, 1896
4. जॉर्ज फेयरशिल्ड, "दि फिलॉसफी ऑफ योगा", न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, 2002
5. बि.के.एस. अयंगर, "लाइट ऑन योगा", हार्पर कॉलिन्स, 1966

यह शोध-पत्र योग की दार्शनिर्शनिकता पर एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है, जिसमें इसके विभिन्न सिद्धांतों, उद्देश्यों और शाखाओं का विश्लेषण किया गया है। योग का गहन अध्ययन हमारे जीवन में संतुलन और शांति स्थापित करने में सहायक हो सकता है।

----o----

योग दर्शन: परम्परा और भविष्य

श्रवण कुमार उपाध्याय
स्कूल शिक्षा
अल्फा एडवांस स्कुल, जोधपुर

भारतीय ज्ञान परम्परा में योग दर्शन की परम्परा बहुत ही प्राचीन है। योग की आवधारण हमें वेद, उपनिषद्, पुराण सहित सम्पूर्ण वांग्मय में मिलती है। आधुनिक समय में जो योग हमें दिखाई दे रहा है इसका इतिहास दस हजार वर्ष पुराना है। "योग " शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में "युज" से होता है। जिसका अर्थ जोड़ना या मिलना। दो सत्ताओं का मिलना ही योग हैं। पाणिनी व्याकरण के अनुसार "युज" तीन गणों में पाया जाता हैं। "युज समाधौ", "युजिर योगे", युज् संयमने" इसमें योग शब्द को समाधि, जोड़ और संयम के अर्थ में परिभाषित किया गया है। योग शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार "योग" शब्द "युज समाधौ" आत्मने पदी द्विवादिगणीय धातु में "घ" प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। योग शब्द का शाब्दिक अर्थ संयोग, सम्पर्क, युक्ति, उपाय, नियम, विधान, सूत्र, उपयुक्तता, वशीकरण, ध्यान, चित्तवृत्ति निरोध, निर्वाण, अवधान, समाधि है। पारमार्थिक सत्ता में आत्मा और परमात्मा का मिलना योग है तो व्यवाहारिक जगत् में शरीर, मन और भावना का समन्वय योग कहलाता है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने योग को परिभाषित करते हुए लिखा है कि- **"संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मो"** इसका भाव इस प्रकार से किया जा सकता है कि जीवात्मा व परमात्मा का संयोग होना ही योग है। श्री कृष्ण ने योग को गीता में व्याख्यायित करते हुए कहा है कि "योग कर्मसु कौशलम्" इसका अर्थ है कि कर्मों में कुशलता ही योग है। अर्थात् विशेष प्रकार के कर्म करने की कुशलता, युक्ति अथवा चतुराई योग है। दुसरा गीता का योग **"समत्वं' योग उच्यते"** अर्थात् समत्व ही योग है।

गीता का प्रथम योग व्यावहारिक योग तथा दूसरा आध्यात्मिक योग है। इसे एक को हम साधन तथा दुसरें को साध्य कह सकते है। योग वशिष्ठकार ने योग का शब्दिक अर्थ बताते हुए कहा कि संसार सागर से पार जाने की युक्ति ही योग है। तन्त्र शास्त्र में योग को परिभाषित करते हुए लिखा गया है कि मूलाधार में स्थित शाक्ति का सहस्र सार में शिव से मिलन ही योग है। उपनिषदों में योग शब्द आध्यात्मिक अर्थ को प्रकाशित करता है। जिसके अंतर्गत ध्यान, तप, समाधि के साथ ही ब्रह्म का साक्षात्कार करने की क्रिया को कहा जाता हैं। जैन एवं बोद्ध परम्परा में योग साधना आत्मा की शुद्धि करने वाली क्रियाएं मानी गई है तत्त्व मीमांसी दृष्टिकोण से योग ब्रह्म तथा जीव का संयोग है। योग शास्त्र के अनुसार यथार्थ ज्ञान केवल योगाभ्यास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। ऋक् संहिता के अनुसार योग के बिना विद्वान कोई भी यज्ञ कर्म सिद्ध नही कर सकता है।

योग दर्शन के प्रवर्तक पंतजलि ने अपने योग सूत्र में लिखा है कि- **"योगाश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** यानि की चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है। योग सूत्र में चार पाद (अध्याय) हैं। चार पादों में सूत्र संख्या इस प्रकार हैं। समाधिपाद 55, साधनपाद 51, विभूतिपाद 55, एवं कैवल्यपाद 34 इस प्रकार सूत्रों की संख्या 195 हैं। 195 सूत्रों को पंतजलि ने तीन सौपान अभ्यास, वैराग्य, क्रियायोग एव अष्टांग योग। इन सूत्रों में योग का व्यवस्थित ढंग से दार्शनिक विवेचन किया है। पतंजलि के अनुसार चित्त को नियन्त्रण करना ही योग है। क्योंकि चित्त बड़ा ही चंचल है। इसे हम इस प्रकार से कह सकते है कि शरीर, मन और आत्मा को एक सूत्र में जोड़ना। योग का मूल विचार शरीर, मन और श्वास को जोड़ना है। योग के द्वारा शरीर, मन और इन्द्रियों में अनुशासन आता है। अनुशासन से ही चित्तवृत्तियों का निरोध सम्भव है। अनेक दर्शनों में सैद्धांतिक पक्ष पर अधिक विचार किया गया है वहीं योग दर्शन में

व्यावहारिक पक्ष को उठाया गया। महर्षि पतंजलि ने योग सूत्र में साधना व योग दर्शन का बहुत ही सुन्दर समन्वय किया है। उन्होंने अष्टांग योग के द्वारा राजयोग का प्रतिपादन स्पष्ट व सरलता से किया। गीता ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्तियोग की बात करती हैं।

पतंजलि का योग दर्शन राजयोग को उद्घाटित करता है। पंतजलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध की बात कही है। उन्होनें चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए आठ सौपान बतायें:-

यमनियमाऽऽसनप्राणायमप्रत्याहारघारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गान।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,घारण, ध्यान और समाधि। अष्टांग योग भौतिक तथा पारमार्थिक दोनों उपलब्ध कराने में सक्षम है। योग तन और मन (पदार्थ तथा चेतना) दोनों का सौष्ठव व विकास करता है। अष्टांग योग, योग के आठ चरण शरीर के आठ अंग है। इनका आपस में जुड़ाव है। जिसमें विकास का एक सुनिश्चित अनुक्रम होता है। इनके अनुक्रम से ही योग की प्रक्रिया पूर्ण होती है। योगशास्त्र के अनुसार यथार्थ ज्ञान केवल योगाभ्यास के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। योग दर्शन में चित्तवृत्तियों का निरोध है। भगवान वेदव्यास ने चित्त की पांच अवस्था बताई **"क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमेकाग्रंनिरुद्धमिति चित्त भूमयः"** यानि कि क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्तवृत्ति शब्द दो शब्द से मिलकर बना है। वृत्ति का अर्थ- जिसमें जीवित रहे, तदाकार होना, रम जाना, भाव धारण करना, संलिप्त होना है। **"ज्ञान रुप समस्त अवस्थाएं जिसके अभाव में चित्त उसमें लीन हो जाए उस वृत्ति को चित्तवृत्ति कहा जाता हैं।"** जब व्यक्ति सत्य के स्वरूप को जान लेता है। क्लेशों का क्षय हो जाता है। कर्म बन्धन समाप्त हो जाते हैं वह चित्त वृति निरोध है। दुःख का वियोग योग है, सिद्धि-असिद्धि में समभाव योग है, दिव्य सत्ता के साथ मिलन योग है, अंहकार का नाश योग है, आत्मा की मोक्ष प्राप्ति योग है।

आधुनिक समय में हमारें चारों ओर असन्तुष्ट, अराजकता, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, तीव्र गति से बढ़ रहा है। जो सम्पूर्ण मानवता के लिए खतरा उत्पन्न कर रही है। योग के द्वारा मानव चेतना के सभी स्वाभाविक गुणों को प्राप्त किया जा सकता है। योग के द्वारा मानव का समग्रता के साथ विकास किया जा सकता है।

आज की 21वीं शताब्दी में भारतीय योग सम्पूर्ण विश्व में फैल रहा है। विश्व के लिए योग को सुलभ बनाने के लिए प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी ने 27 सितम्बर 2014 को सयुंक्त राष्ट्र संघ के सामने प्रस्ताव रखा। जिसके 177 देश सह प्रस्तावक बनें। सयुंक्त राष्ट्र संघ ने 11 दिसंबर 2014 को 193 सदस्यों द्वारा 21 जून 2015 को सर्वप्रथम विश्व योग दिवस के रूप में मनाया जाने की स्वीकृति मिली। प्रत्येक वर्ष 21 जून को योग दिवस मनाने की घोषणा सयुंक्त राष्ट्र संघ ने की। योग सम्पूर्ण मानवता को बचाने का एक प्रयत्न है। योग के द्वारा सम्पूर्ण मानवता का भविष्य सुरक्षित किया जा सकता है। योग विश्व के लिए इसका सुन्दर चित्र 21 जून 2015 को पहली बार राजपथ (योगपथ) पर देखने को मिला। योग विश्व के लिए प्रथम बार 192 देशों ने 275 शहरों में योग दिवस मनाया गया विश्व का भविष्य "योग शरणम्" से है।

मनुष्य एक शाक्ति का स्त्रोत है। वह इस विश्व का निर्माण व संहार दोनों कर सकता है। सकारात्मक रूप से कार्य करे तो निर्माण करता है। योग कर्म व्यक्ति को आत्म नियन्त्रण करता है। आज व्यक्ति आत्म नियन्त्रण खो रहा है। जिसके कारण योग का महत्त्व बढ़ रहा है। आत्मनियंत्रण यम, नियम के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। योग के द्वारा इच्छाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है। आज व्यक्ति इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा है जिसके कारण वह दुःखी और क्रोधित होता है। इच्छाओं पर नियंत्रण नहीं होने के कारण सहनशीलता समाप्त हो रही है।

योग के द्वारा शरीर की व्याधियों का शमन होता है, मन निर्मल होता है, हृदय की गति संतुलित होती है। चित्त की चंचलता का क्षय होता है जिससे व्यक्ति स्वस्थ होता है। योग के द्वारा व्यक्ति समाज में व्याप्त अनैतिकता की मुक्ति यम के द्वारा, भीतर और बाहर की शुद्धि नियम द्वारा, शारीरिक दुर्बलता का अन्त आसन के द्वारा तथा प्राणशक्ति की कमजोरी प्राणायाम द्वारा प्राप्त कर सकता है।

आधुनिक समय में योग का लक्ष्य व्यक्ति को आध्यात्मिक बनाना नहीं होकर व्यक्ति को स्वस्थ बनाना है। योग के पांच यम सत्य, अंहिसा, अस्तेय, ब्रह्माचार्य एवं अपरिग्रह तथा नियम के पांच सोपान शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राविधान समाज, राष्ट्र व विश्व को हिंसा, बलात्कार, आत्याचार, आंतकवाद, भष्टाचार से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। वर्तमान में योग व्यावहारिक पक्ष की ओर बढ़ रहा है। आज योग लौकिक जीवन की ओर जा रहा है। वर्तमान में चिकित्सकों द्वारा औषधि के साथ शारीरिक व्यायाम के रुप में आसन, प्राणायाम जैसी यौगिक क्रियायें करने के लिए कहा जाता है। योग शारीरिक व मानसिक व्याधियों की मुक्ति के लिए सर्वोत्तम साधन माना जा रहा है। योग से मानव को रोगों के आक्रांत से मुक्त किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, मुद्राओं एवं आसनों पर गहन चिंतन करने पर हम पाते हैं कि रोगों के शमन में योग महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। योग रोगों के उपचार का एक प्राकृतिक व प्रभावशाली उपक्रम है। योग भविष्य के लिए संस्कार शुद्धि के साथ संयम एवं शान्ति संवर्धन में महत्त्व पूर्ण भूमिका निभा सकता है। योग शरीर का संयम है। योग व्यक्ति के शारीरिक स्वस्थ्य, मानसिक शान्ति एवं आध्यात्मिक विकास की भूमिका निभाता है।

वर्तमान समय में नैतिकता पर अतिक्रमण हो रहा है। योग के द्वारा नैतिक सद्गुणों का विकास होता है। सद्गुणों के द्वारा ही जीवन में परम शुभ की स्थिति आती है। योग के द्वारा साधक को तीन शक्तियों प्राप्त होती

है। विचार शाक्ति, भावना शक्ति और क्रिया शक्ति। योग को जीवन में उत्तार कर काया को निरोगी रखा जा सकता है। काया को निरोग रखने के लिए प्राणायाम से दिनचर्या, ॠतुचर्या, रात्रिचर्या, आहार-विहार आदि नियमों का पालन कर निरोगता के साथ सौ साल तक की आयु को प्राप्त किया जा सकता है। योग से जीवन प्रबन्धन किया जा सकता है। योग गुरू बाबा रामदेव ने कहा है कि **"योग आत्मानुशासन, आत्मनियंत्रण, आत्मनियम, आत्मपरिचय, आत्मज्ञान, आत्मदर्शन एवं आत्म समाधान का पावन पथ है"।**

वर्तमान समय में योग का पुर्नजागरण हो रहा है। इसका कारण है योग किसी धर्म अथवा पथ का नहीं है। योग समावेशी रुप से सभी के हित में है। आज विश्व में योग नवीन उत्साह के साथ विस्तार कर रहा है। योग का विश्व में फैलने का कारण उसका कला और विज्ञान दोनों होना है। वर्तमान में योग शारीरिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। आज योग के वास्तविक स्वरुप को जानना आवश्यक है। आज के प्रदूषित वातावरण में योग को जीवन के नित्यकर्म में स्वीकार करना होगा।

आज के समय में शिक्षा के साथ व्याक्ति का नैतिक विकास भी करना होगा। हम योग दर्शन के नैतिक सिद्धांतों को अंगीकार करके **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया"** के साथ विश्व की अनेक समस्याओं को समाप्त कर सकते है। नैतिक मूल्य व्याक्ति के व्यवहार में परिवर्तन करते है जिससे शारीरिक व मानसिक विकास होता है। योग के द्वारा हम "सबका साथ सबका विकास" कर सकते है। इससे विश्व बन्धुत्व की भावना जागृत होगी। आज विश्व में चारों और हिंसा का वातावरण बन रहा है जिससे मानवता हताहत हो रही है। भावी भविष्य को देखते हुए योग के द्वारा विश्व के व्यक्तियों में सद्भावना, मैत्री भावना एवं विश्व बन्धुत्व का प्रकाश फैलाया जा सकता है। योग से आपसी स्नेह सुदृढ़ होते है। योग मानसिक एकता पर बल देता है।

आज योग का अभ्यास आश्रमों, संस्थाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों में बढ़ रहा है। आयुर्विज्ञान संस्थाओं में योग के क्रियात्मक प्रभाव पर अनुसंधान हो रहा है। शासकीय स्तर पर भी इसके प्रचार-प्रसार पर समर्थन व अनुदान प्राप्त हो रहा है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:-

1. भारतीय दर्शन, चटर्जी एव दत्त, पुस्तक भण्डार पब्लिकेशन्स हाऊस, गोविन्द मिश्रा रोड, पटना, वर्ष- 2014
2. समाज, धर्म एवं दर्शन-जटाशंकर तिवारी, श्री भुवनेश्वरी विद्या प्रतिष्ठान, 117, सी टैगोर टाउन, इलाहाबाद
3. श्रीमद्भागवतगीता, गीताप्रेस गोरखपुर
4. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, वर्ष- 2002
5. समकालीन भारतीय दर्शन, बसन्त कुमार लाल, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, वर्ष- 2001
6. शोध श्री सम्पादक विरेन्द्र शर्मा, राजकीय बालिका महाविद्यालय, अजमेर वर्ष- 2019
7. दार्शनिक त्रैमासिक, प्रधान सम्पादक डॉ. रमेश चन्द्र सिन्हा, अखिल भारतीय दर्शन परिषद् वर्ष 66 अंक 3 जुलाई-सितम्बर- 2012

----०----

योगनिरीक्षे ईश्वरप्रणिधानविमर्शः

रिया दत्तः
शोधच्छात्रा, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः

आस्तिकनास्तिकभेदे भारतीयदर्शनस्य द्वैविध्यं सुप्रसिद्धम्। आस्तिकदर्शनानि वैदिकप्रामाण्यं स्वीकुर्वन्ति, पक्षे नास्तिकदर्शनानि न स्वीकुर्वन्ति। षट्सु आस्तिकदर्शनेषु योगः अन्यतमः। ईश्वरप्रणिधानं यतो हि शोधपत्रस्यास्य मुख्यविषयः, अतश्च प्रथमं तावद् जिज्ञासा आपद्यते किमिति ईश्वरप्रणिधानम्। ईश्वरे प्रणिधानमिति ईश्वरप्रणिधानम्। 'ईष्टे इति' अर्थे 'ईश्' धातोरुत्तरं 'वरच्' प्रत्यययोगेन 'ईश्वरः' इति पदं निष्पन्नम्। प्रणिधीयते इति प्रणिधानम्। प्र-नि-पूर्वकात् 'धा' धातोरुत्तरं 'ल्युट्' प्रत्यययोगेन प्रणिधानमिति पदं निष्पन्नम्।

योगदर्शनेन प्रतिपाद्यौ प्रकृतिपुरुषौ व्यतिरिक्तः 'कोऽयमीश्वरः' इति प्रश्नस्योत्तरं पतञ्जलिप्रणीतेन येन योगसूत्रेण निर्देशितम्, तद्धि-

"क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।"[1] इति।

क्लेशाश्च कर्माणि च विपाकश्च, आशयाश्च क्लेशकर्मविपाकाशयाः, तैः असम्बद्धः पुरुषविशेषो हि ईश्वरः। उद्दिष्टे सूत्रे 'पुरुषविशेषेति पदेन पुरुषान्तरेभ्यो वैलक्षण्यञ्च ज्ञापितम्। क्लेशकर्मविपाकाशयाः यद्यपि मनसि वर्तमानाः, तथापि एते क्लेशादयः पुरुषस्य इति अभिमताः।

योगदर्शनप्रेक्षे अनेन शोधपत्रेण यो विचार उपस्थाप्यते, स विचार ईश्वरप्रणिधानेन सम्बद्धः। 'युज समाधौ' इति 'युज्' धातोरुत्तरं 'घञ्' प्रत्यययोगेन 'योग' शब्दस्य निष्पत्तिः। अनया व्युत्पत्त्या 'योग' शब्दस्य

---

[1] योगसूत्रम्- १/२४

'समाधिः' इत्यर्थो निर्धारितः। प्रसङ्गक्रमे प्रथमस्य योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये उच्यते-

"योगः समाधिः।"[1] **इति।**

प्रमाणादिचित्तवृत्तीनां निरोध एव योगः समाधिर्वा। योगानुशासनस्य न केवलं समाधिपादे ईश्वरप्रणिधानस्य प्रसङ्ग आपद्यते, अपि च साधनपादे उपस्थाप्यते। भवप्रत्यय उपायप्रत्ययः केषां सम्भवति इति वर्णनकाले समाधिलाभस्य तथा समाधिफलस्य च उपस्थापनं महर्षिणा पतञ्जलिना क्रियते। प्रसङ्गेऽस्मिन् ये द्वे योगसूत्रे वर्ण्येते, ते हि-

"तीव्रसंवेगानामासन्नः।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः॥"[2] **इति।**

वस्तुतो योगिनो नवप्रकारात्मकाः। प्रथमं तावन् मृदुमध्याधिमात्रभेदे योगिनः त्रयः। मृदुमात्रस्य योगिनः श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञा उपायाः न अतिरिक्ताः। मध्यमात्रस्य योगिनः श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञा उपायाः मध्यमरूपाः; न अत्युत्कृष्टाः, न अतिनिकृष्टाः। अधिमात्रस्य योगिनः श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञा उपायाः अत्युत्कटाः। पुनश्च एते त्रयो योगिनो मृदुमध्याधिमात्रभेदे विभज्यन्ते। मृदुमात्रस्य योगिनः त्रयः प्रकाराः, तद्यथा- मृदुसंवेगः, मध्यसंवेगः, तीव्रसंवेगः (अधिमात्रसंवेगो वा) चेति। 'संवेग'शब्दस्य 'वैराग्यम्' इत्यर्थः अत्र स्वीक्रियते। अपि च मध्यमात्रस्य अधिमात्रस्य योगिनः प्रकारत्रयं विद्यते। एवं प्रकारेण नव योगिन उपलभ्यन्ते। एतेषु मध्ये अधिमात्रोपायस्य योगिनः तीव्रसंवेगानां समाधिलाभः समाधिफलञ्च अचिरेण सम्भवति इति "तीव्रसंवेगानामासन्नः"[3]

---

[1] योगसूत्रम्- १, व्यासभाष्ये

[2] योगसूत्रम्- १/२१-२२

[3] योगसूत्रम्- १/२१

इति योगसूत्रेण निर्दिश्यते। न केवलं तीव्रसंवेगानां समाधिलाभ: समाधिफलञ्च आसन्न:, अपि च उपायान्तरेण समाधिलाभ: समाधिफलञ्च आसन्नतम इति उक्तयोगसूत्रद्वयात् परवर्तिना योगसूत्रेण प्रतिपद्यते। उपायान्तरस्य प्रसङ्गे पतञ्जलिप्रणीते योगानुशासने उच्यते-

"ईश्वरप्रणिधानाद्वा।"[1] इति।

योगानुशासनस्य साधनपादे कानि योगस्य अष्टौ अङ्गानि तथा कथं प्रकारेण योगाङ्गानि कर्तव्यानि इति च वर्ण्येते। अष्टसु अङ्गेषु नियम एव द्वितीय: अङ्ग:। नियम: पुनश्च पञ्चप्रकारात्मक:। विषयोऽयं येन योगसूत्रेण प्रमिणोति, तद्धि-

"शौचसन्तोषतप:स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:।"[2] इति।

अनन्तरं पञ्चानां नियमानां विशेषरूपेण उपस्थापनकाले ईश्वरप्रणिधानस्य प्रसङ्गे योगानुशासनस्य साधनपादे उच्यते-

"समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।"[3] इति।

अर्थात्, ईश्वरप्रणिधानेन समाधिसिद्धि: स्यात्। विवेकख्याते: तथा अशुद्धिक्षयस्य च क्षेत्रे ईश्वरप्रणिधानम् आवश्यिकम्।

एतस्याम् अवस्थायां शङ्का उत्पद्यते। योगानुशासनस्य 'समाधि:' इत्यभिहिते प्रथमपादे वा ईश्वरप्रणिधानं वैकल्पिकोपायरूपेण उपस्थापितम्, पुनश्च 'साधनम्' इत्यभिहिते द्वितीयपादे ईश्वरप्रणिधानम् आवश्यिकोपायरूपेण प्रतिपादितम्। अथ ईश्वरप्रणिधानं वैकल्पिकम् आवश्यिकं वेति जिज्ञासा उत्थाप्यते। जिज्ञासा इयं भाष्येण निराकृता। समाधिपादे उद्दिष्टम् 'ईश्वरप्रणिधानं' साधनपादे उद्दिष्टात् 'ईश्वरप्रणिधानात्'

---

[1] योगसूत्रम्- १/२३

[2] योगसूत्रम्- २/३२

[3] योगसूत्रम्- २/४५

पृथक्। प्रथमाध्याये प्रयुक्तेन ईश्वरप्रणिधानेन भक्तिविशेषो द्योत्यते। प्रसङ्गेऽस्मिन् "ईश्वरप्रणिधानाद्वा"[1] इति योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये उच्यते-

"प्रणिधानात् भक्तिविशेषात् आवर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण, तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतम: समाधिलाभ: फलञ्च भवति।"[2] इति।

द्वितीयपादे ईश्वरप्रणिधानम् आवश्यिकोपायरूपेण प्रतिपादितम्। अथ ईश्वरप्रणिधानं वैकल्पिकम् आवश्यिकं वेति जिज्ञासा उत्थाप्यते। अस्या जिज्ञासाया नि:सरणाय भाष्यस्य सहायता ग्रहणीया। भाष्यमाध्यमेन उपलभ्यते यत् समाधिपादे उद्दिष्टम् 'ईश्वरप्रणिधानं' साधनपादे उद्दिष्टात् 'ईश्वरप्रणिधानात्' पृथक्। प्रथमाध्याये प्रयुक्तेन ईश्वरप्रणिधानेन भक्तिविशेषो द्योत्यते। प्रसङ्गेऽस्मिन् "ईश्वरप्रणिधानाद्वा"[3] इति योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये उच्यते-

"प्रणिधानात् भक्तिविशेषात् आवर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णाति अभिध्यानमात्रेण, तदभिध्यानादपि योगिन आसन्नतम: समाधिलाभ: फलञ्च भवति।"[4] इति।

अर्थात्, ईश्वरे उपासनाद् भक्तिविशेषात् ईश्वर: सन्तुष्ट: सन् तमुपासिनं योगनं वा तादृशेन अभिध्यानमात्रेण अनुगृह्णाति। तदनन्तरं योगिन: समाधिलाभ: समाधिफलञ्च आसन्नतमो भवति। सूत्रस्योक्तस्य अवतारभाष्ये 'वा' इति पदस्य अर्थप्रसङ्गे 'अन्योऽपि' इति प्रयुज्यते। उद्दिष्टे सूत्रे 'वा' वैकल्पिकेऽर्थे गृहीत इति 'अन्य'शब्दस्य प्रयोगेण निर्धार्यते।

---

[1] योगसूत्रम्- १/२३

[2] योगसूत्रम्- १/२३, व्यासभाष्ये

[3] योगसूत्रम्- १/२३

[4] योगसूत्रम्- १/२३, व्यासभाष्ये

पुनश्च द्वितीयाध्याये प्रयुक्तेन ईश्वरप्रणिधानेन ईश्वरे सर्वभावप्रदानम् इति बोध्यते। "समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्" इति योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये उच्यते-

"ईश्वरार्पितसर्वभावस्य समाधिसिद्धिर्यया सर्वमीप्सितं जानाति, देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च, ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति।"[1] इति।

अर्थात्, ईश्वरे सर्वभावप्रदानात् समाधिसिद्धि: योगनिष्पत्तिर्वा भवति। समाधिसिद्धौ सति योगी अभीष्टवस्तुसमुदायं जानाति। न केवलं सन्निहितविषयं जानाति, अपि च देशान्तरे देहान्तरे कालान्तरे च असन्निहितविषयं प्रकृष्टरूपेण जानाति। अपि च "शौचसन्तोषतप:स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा:"[2] इति योगसूत्रस्य व्यासभाष्ये ईश्वरप्रणिधानस्य व्याख्यानकाले उच्यते-

"ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्"[3] इति।

अनेन प्रकारेण प्रतीयते यत् समाधिपादे प्रयुक्तम् 'ईश्वरे भक्तिविशेषम् ईश्वरप्रणिधानं' बहिरङ्गरूपेण प्रयुज्यते, तथा साधनपादे प्रयुक्तम् 'ईश्वरे सर्वकर्मार्पणरूपम् ईश्वरप्रणिधानम्' अन्तरङ्गरूपेण च प्रयुज्यते इति। उपर्युक्ता जिज्ञासा भाष्यमाध्यमेन तथा वृत्तिविश्लेषणेन निराक्रियत इति शम्।

----o----

[1] योगसूत्रम्- २ /४५, व्यासभाष्ये

[2] योगसूत्रम्- २/३२

[3] योगसूत्रम्- २/३२, व्यासभाष्ये

वर्तमान युग में योग के लाभ तथा उसका महत्व

डॉ. मंजु लता
एसोसिएट प्रोफेसर
कालिंदी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार

योग शब्द संस्कृत की मूल धातु युज से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना। योग की शास्त्रीय तकनीकें 5000 साल से भी प्राचीन हैं। योग के संस्थापक पतंजलि के अनुसार **"स्थिरं सुखं आसनं"** कहा गया है जिसका अर्थ है जो मुद्रा दृढ़ और सरल प्रतीत हो वही आसन है। योग में कई प्रकार के आसन या योग मुद्राएँ हैं। वर्तमान समय मशीनी युग है सभी कार्यों के लिए इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों का उपयोग अधिक मात्रा में होने लगा है, जीवन इतना सरल तथा सुविधाजनक हो गया है कि एक क्लिक करने पर सभी वस्तुएँ सरलता से उपलब्ध हो जाती हैं। कई संस्थाओं ने कार्य स्थलों के साथ ही साथ घर पर कार्य करने की छूट दे रखी है जिसके कारण व्यक्ति का शारीरिक परिश्रम लगभग समाप्त सा हो गया है। यही कारण हैं कि वह अस्वस्थ रहने लगा है तथा गंभीर रोगों से ग्रस्त होने लगा है। योग ने उसे अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आधुनिक काल में जनमानस में योग के प्रति आस्था का विकास हुआ है। लोगों ने इसका आश्रय लेकर जानलेवा रोगों से छुटकारा पाया है अतः लोगों को इसका महत्व समझ आने लगा है जिस कारण योग के प्रति उनका रुझान बढ़ गया है। योग से शरीर की कार्य प्रणाली में सुधार आता है, यह तनाव का स्तर कम करता है, शरीर में लचीलापन बढाता है, रक्तचाप कम करता है, हड्डियाँ तथा मांस पेशियाँ मजबूत करता है वृद्धावस्था को दूर करता है, मधुमेह से छुटकारा दिलाता

है इत्यादि। योग शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करता है। योग शरीर और मन को एक साथ लाता है। योग ने आधुनिक मानव को शांति तथा आत्म चिकित्सा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया है। इस प्रकार यह योग अनुशासन पुनर्जीवित हुआ तथा आधुनिक युग में लोकप्रिय हुआ। योग से समाज में एक स्वस्थ वातावरण बना जो कि आधुनिक व्यस्त जीवन के लिए आवश्यक है। **भगवद्गीता में भी कहा गया है कि "योग स्वयं की यात्रा है, स्वयं तक , स्वयं के मध्यम से"**। योग हमारे पूर्वजों द्वारा दिया गया वह उपहार है जो हमारी सुप्त क्षमताओं को जगाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अपने शोध प्रबंध के द्वारा में आधुनिक मानव के लिए योग के क्या लाभ हैं तथा इसका क्या महत्व है यह परिभाषित करने का प्रयास करूंगी।

शब्द संकेत- योग, लाभ, महत्व, मानव, रोग, संतोष इत्यादि।

शोध पत्र-

योग शब्द संस्कृत मूल युज से लिया गया है जिसका अर्थ है जुड़ना या जोड़ना। योग शास्त्रों के मतानुसार योग का निरंतर अभ्यास व्यक्तिगत चेतना को सार्वभौमिक चेतना के साथ संयुक्त करता है जो मन तथा शरीर, मनुष्य तथा प्रकृति के मध्य पूर्ण एकात्मकता का संकेत देता है। जिस मनुष्य ने मुक्ति, निर्वाण या मोक्ष की स्थिति को प्राप्त कर लिया है वह योगी कहलाता है योग की उत्पत्ति हजारों साल पूर्व हुई थ। योग विद्या में शिव को प्रथम योगी या आदि योगी या आदि गुरू के रूप में माना जाता है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, राजयोग, मन्त्रयोग, हठयोग और भक्तियोग, यह योग की 6 शाखाएं मानी गयी हैं।

वर्तमान युग में एक सम्पूर्ण जीवन जीने की इच्छा में मानव आध्यात्मिकता तथा शांति से पृथक होता जा रहा है, स्वयं के लिए समय निकालना उसके लिये असंभव होता जा रहा है। परिवार, काम को संतुलित एवं सुव्यवस्थित करने की तथा अपनी इच्छा पूर्ति के लिए स्वयं के

लिए कुछ समय निकालना मानो सपना सा बन गया है। इस प्रकार की चिंताओं से जो तनाव उत्पन्न होता है वह अक्सर रोगों को उत्पन्न करता है। योग ने आधुनिक व्यक्ति को ऐसे विषाक्त को बाहर निकालने तथा आत्मिक शांति एवं आत्म चिकित्सा प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया है। योग हमें शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक जीवन जीने के लिए समर्थ बनता है। योग विश्राम और ध्यान के साथ शक्ति एवं लचीलेपन के व्यायामों को जोड़ता है। यह जोड़ों की मुद्राओं में सुधार करता है, श्वसन तथा पाचन अंगों की प्रक्रियाओं में सहायता करता है, ऑक्सीजन की पूर्ति करता है एवं इसके साथ ही साथ यह मानव के मनोवैज्ञानिक कल्याण में भी मदद करता है। यह मन को शांत करके एकाग्रता को बढ़ाता है, व्यक्ति को भावनात्मक रूप से स्थिर करता है। यह व्यवहार से विकार, सम्बंधित नर्वस ब्रेकडाउन तथा मेनियाक डिप्रेशन को सही करने में भी सहायक सिद्ध हुआ है इसका उदाहरण है जब कोविड-19 महामारी आई थी और शारीरिक तथा सामाजिक गतिविधियाँ समाप्त हो चुकी थी और व्यक्ति एक ही प्रकार के मानसिक तनाव में फंसा हुआ था तब योग ही हमारी व्यक्तिगत शक्ति को बढाने का एकमात्र स्रोत था। योग हमारे शरीर के साथ ही साथ दिमाग को भी स्वस्थ बनता है। इसके कुछ लाभ इस प्रकार हैं-

मानसिक संतोष और स्पष्टता- योग शरीर की मांसपेशियों को सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ ही साथ मानसिक संतुलन बनाये रखने में भी सहायक है। चिकित्सक अनुसंधान कर्ताओं के अनुसार यह तनाव रहित जीवन के अलावा भूख तथा पाचन तंत्र को सही करता है एवं दिमाग को शांति प्रदान करता है। नियमित योग के अभ्यास से जैसे-जैसे मन केंद्रित होता जाता है वैसे-वैसे व्यक्ति जीवन की चुनौतियों का सामना अत्यधिक स्पष्टता से कर पाता है। सुखी तथा तनाव मुक्त जीवन जीने के लिए मानसिक संतोष परम आवश्यक है जो योग के द्वारा ही संभव है।

तनाव मुक्त जीवन में सहायक- योग को दैनिक दिनचर्या में शामिल करके आप स्वयं को तनाव मुक्त कर सकते हैं क्यूँकि नवीन सर्वेक्षण से यह पता चला है कि आज हर दूसरा व्यक्ति तनाव ग्रस्त है किसी को वेतन बढ़ने की चिंता है, किसी को नये घर की चिंता है, किसी को अपने रोग से मुक्त होने की चिंता है, किसी को कुछ, अर्थात् व्यर्थ के अवसादन में प्रत्येक व्यक्ति तनाव ग्रस्त है। जब आप योग कर रहे होते है तो आपका सारा ध्यान उसी योग की मुद्रा पर केन्द्रित होता है, जिसके कारण दिमाग धीरे धीरे तनाव मुक्त होता जाता है तथा उन परेशानियों से दूर होता जाता है जो हमें तनाव देती है।

शारीरिक स्वास्थ्य के विकास में सहायक- योग करते समय मांसपेशियों में खिंचाव जैसे कई क्रियाएं होती हैं जिसके कारण शरीर खिंचाव मुक्त होकर तरोताजा महसूस करता है। नियमित योग का अभ्यास करने से योग मुद्रा में सुधार तथा शारीरिक रोगों का जोखिम भी कम होता है। यह सभी उम्र के लोगों के लिए सुलभ है। योग से शरीर रोगमुक्त होता है जिसके कारण ह्रदय रोग , मधुमेह ,अस्थमा ,केंसर और भी कई जानलेवा रोगों से मुक्त होने में यह हमारी सहायता करता है।

वज़न पर काबू पाने में सहायक- मशीनी युग होने के कारण आज देश का 95% आबादी मोटापे से ग्रस्त है जो जानलेवा रोगों की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। निरंतर योगाभ्यास हमारे शरीर को लचीला बनाता है जिसके परिणामस्वरूप हम रोगमुक्त हो सकते हैं। यह हमारे पाचन तंत्र को मजबूत करके शरीर को फिट रखने में मदद करता है। यदि योग को हम नियमित रूप से अपनी दिनचर्या में शामिल कर ले तो मोटापे से मुक्ति मिलता है तथा शरीर लचीला बनता है।

तंत्रिका तंत्र में सुधार- तंत्रिका तंत्र को शांत करने से रक्त परिसंचरण में सुधार होता है, मांसपेशियों में तनाव कम होता है, मन को सांस् को पर केन्द्रित करने की प्रक्रिया को बल मिलता है जिसके कारण

चिंता, एवं तनाव में कमी और एकाग्रचित्तता में वृद्धि तथा शरीर ऊर्जावान बनता है तथा कार्य करने की क्षमता का विकास होता है|

आयु में सुधार- योग का निरंतर अभ्यास वृद्धावस्था को दूर करता है। जरावस्था का मुख्य कारण तनाव है जिसे रोकने में योग कारगर है। योग से हमें इन्द्रियों को वश में करने में सहायता मिलती है। इन्द्रियों का वशीकरण भी जरावस्था को रोकने में कारगर सिद्ध होता है। प्राचीन ऋषि मुनियों ने योग का निरंतर प्रयोग करके ही हजारों साल का जीवन बिना रोग ग्रसित हुए जिया था।

रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास- योग का अभ्यास शरीर की हर कोशिका को स्वस्थ बनता है जिसके कारण शरीर में नव चेतना का संचार होता है जो रोग का अतिक्रमण करने में हमारी सहायता करता है परिणामस्वरूप रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

कोर ताकत में वृद्धि- शरीर का मजबूत होना कोर की ताकत पर निर्भर करता है। यह आपके सम्पूर्ण शरीर का भार संभालता है। यह चोटों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को बढाता है और आप बेहतर तरीके से ठीक हो जाये इस पर भी कार्य करता है।

जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण- नियमित स्तर पर योग करने से तंत्रिका तंत्र में कई हार्मोन स्थिर हो जाते हैं जिससे अधिक सकारात्मकता प्राप्त होती हैं जो जीवन जीने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। रोगावस्था जीवन में निराशा को उत्पन्न करती है जिसके कारण व्यक्ति का जीवन नीरस हो जाता है परन्तु निरंतर योगाभ्यास चित्त में सकारात्मक भाव उत्पन्न करता है तथा व्यक्ति को लम्बा जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है।

मानसिक शांति तथा विचारात्मक स्थिरता- साँस लेने तथा ध्यान लगाने से आप अपने व्यर्थ के विचारों से मुक्त हो जाते है इससे मानसिक शांति की प्राप्ति होती है और निरंतर इसका अभ्यास आपके जीवन जीने का एक आवश्यक हिस्सा बन जाता है। योग का निरंतर अभ्यास शरीर पर

नियंत्रण करने में सहायता प्रदान करता है और हमें संतुलित तथा ध्यान केन्द्रित करने में मदद करता है, क्रोध पर नियंत्रण होता है जिससे शत्रुता समाप्त होती है एकाग्रचित्तता आती है। निरंतर ध्यान करने से विचारों में स्थिरता आती है जो स्थिर जीवन जीने के लिए आवश्यक है।

योग के प्रमुख लाभदायक आसन- अनुलोम-विलोम, कपालभाती, भ्रामरी योग, प्राणायाम शीर्षासन (इसे सभी मुद्राओं का राजा भी माना जाता है), सूर्य नमस्कार यह शरीर के हर हिस्से को लाभ पहुंचाता है इत्यादि।

कार्टिलेज और जोड़ों के दर्द से राहत- योग ऑस्टियो आर्थराईटिस को रोकने में सहायता करता है। एक उम्र के पड़ाव पर हड्डियों के मध्य कार्टिलेज ख़राब हो जाती है जिससे जोड़ों में दर्द हो जाता है तथा चलने में कठिनाई उत्पन्न होती है योग के द्वार हम इन बीमारियों से भी राहत पा सकते हैं।

नींद की गुणवत्ता का विकास- नियमित रूप से योग करने पर जब तनाव कम होता है तो रोग-प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है, शरीर में लचीलापन आता है जिसके कारण व्यक्ति की नींद में भी सुधार आता है क्यूँकि एक सुखी तथा तनाव मुक्त जीवन जीने के लिए उपयुक्त नींद का आना परम आवश्यक है। नींद ना आने कारण व्यक्ति चिडचिडा हो जाता है तथा तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

रक्त संचार में सुधार तथा नवीन ऊर्जा का संचार- योग करने से पूरे शरीर में ऑक्सीजन तथा पोषक तत्वों का बेहतर परिवहन होता है, जो अंगों की स्वस्थता और त्वचा में चमक का संकेत देता है। योग में हमारे शरीर तथा मन को तरोताजा करने की क्षमता है। निरंतर योग करने वाले व्यक्ति में एक असाधारण ऊर्जा का संचार होता है। मन तथा शरीर साथ मिलकर कार्य करना प्रारंभ कर देते हैं। आत्मसम्मान में बढोतरी होती है तथा आत्म नियंत्रण बढता है।

योग का महत्व-

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हो गया है इसीलिए योग का उसके जीवन में एक अलग ही स्थान है योग के महत्व को हम विभिन्न पहलुओं के द्वारा समझ सकते हैं-

स्वास्थ्य से सम्बन्धित-

वर्तमान समय में फ़ैल रहे मानसिक तथा शारीरिक रोगों में योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। डब्ल्यू. एच. ओ. के अनुसार योग एक ऐसी वैज्ञानिक जीवन शैली है जिसके द्वारा हम प्राण नाशक रोगों से स्वयं को बचा सकते हैं। योगाभ्यास प्रतिदिन करने से हम शरीर को लचीला बना सकते है, प्राणायाम द्वारा शरीर में प्राण शक्ति को बढ़ा कर मन में स्थिरता ला सकते हैं, रक्त संचार को सही कर सकते हैं, तथा लोगों को योग के प्रति जागरूक बनाने के लिए स्वयं को एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।

शिक्षा से सम्बंधित-

आजकल बच्चों के स्कूल बेग तथा सिलेबस ऐसे हो गए है कि उनपर पढाई का जोर अधिक पड रहा है जिसके कारण वह छोटी सी उम्र में ही तनाव में आ जाते है। सरकार ने इस बात को समझ कर स्कूल तथा महाविद्यालयों में योग को एक जरूरी विषय के रूप में पढाना शुरू कर दिया है जिसके कारण बच्चों की एकाग्रता तथा स्मरण शक्ति का विकास हुआ है। योग के अष्टांग द्वारा इन बच्चों में अनुशासन स्थापित करने में मदद की है।

सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण में सुधार-

योग ने व्यक्ति के पारिवारिक मूल्यों तथा पारस्परिक प्रेम को बढ़ावा दिया है। लोगों को परिवार का अर्थ समझ में आने लगा है। आज के इस प्रतिस्पर्धा युग में व्यक्ति पर सामाजिक गतिविधियों का नकारात्मक

प्रभाव पड रहा है। एक दूसरे को नीचा दिखने में सब लगे हुए हैं ऐसे में विविध योग अवस्थायें रचनात्मक एवं शांति प्रदान करने वाली शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। ऋषियों ने स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का वास माना है। यदि व्यक्ति स्वस्थ होगा तभी वह अपने आय के स्रोतों को बढ़ा सकता है यदि वह रोगग्रस्त नहीं होगा तो बीमारी में प्रयुक्त होने वाली औषधियों के खर्चे से भी वह बचा रहेगा तथा स्वस्थ व्यक्ति ही राष्ट्र की उन्नति में अपना सहयोग दे सकता है।

आध्यात्मिकता से सम्बंधित- निरोगी काया सभी प्रकार से सुख प्रदान करने वाली होती है। व्यक्ति जब निरोगी होता है तो उसका मन आध्यात्मिकता की ओर स्वतः चला जाता है उसे मन की शांति के लिए इधर -उधर नहीं भटकना पड़ता। योग का एकमात्र ध्येय है सांसारिक माया प्रपंचों से मुक्ति जिससे व्यक्ति मोक्ष की ओर अग्रसर हो सके तथा इसके के निमित्त स्वस्थ काया का होना आवश्यक है। और अंत में हम कह सकते है कि योग एक ऐसा अप्रतिम स्रोत है जिसके नियमित अभ्यास के द्वारा हम सभी रोगों से मुक्त होकर अपना सांसारिक जीवन सुखपूर्वक जीकर अंत में उस परमात्मा की प्राप्ति करके मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-

- रोग और योग- डॉ. स्वामी कर्मानंद सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार
- पातंजल योगसूत्र, डॉ. पु. वि. करंबेलकर, कैवल्यधाम
- योग पर निबंध- विकास सिंह
- योग विकिपीडिया- गूगल

----o----

समृद्धजीवनचर्यायां योगस्य भूमिका

जयन्त मण्डलः
सहकारी अध्यापकः, संस्कृत-विभागः
दुःखुलाल-निवारणचन्द्रः महाविद्यालयः
अरङ्गावादः, मुर्शिदावादः,पश्चिमवङ्गः

सारांशः

आधुनिकसमाजे योगस्य महती आवश्यकता वर्तते। अष्टयोगाङ्गेषु प्रत्येकयोगाङ्गस्य पालनम् अत्यावश्यकम्। किन्तु वर्तमानकाले सर्वे न पालयन्ति। केचन योगाङ्गानाम् अङ्गद्वयं त्रयं वा पाल्यन्ते। आसनस्य प्राणायामस्य च प्रचलनम् अधुना बृद्धिर्भवति। एतदर्थं बहवः संस्थाः वर्तमानकाले आसनादीनां शिक्षां दास्यन्ति। विद्यालयेऽपि छात्रानां कृते एतद् आवश्यकं सहायकशिक्षाकार्यरूपेण विवेच्यते। नैतिकशिक्षार्थं यमनियमादीनां पालनम् अत्यावश्यकम्। यमनियमयोः पालनं प्राचीनकाले आसीत् परन्तु सम्प्रति तयोः ह्रासः भवति। मनोसंयोगार्थं प्रत्याहार-धारणाध्यानानाम् आवश्यकता वर्तन्ते। अतः अष्टाङ्गयोगाङ्गानां आधुनिकाले प्रयोजनीयता वर्तते। समाधि तु अन्तिमः साधनम्। परन्तु सर्वे एतत् प्राप्तुं न शक्यते। ये पूर्वोक्तः सप्तयोगाङ्गानां सम्यक्तया पाल्यन्ते ते एव अस्मिन् स्तरे गन्तुं शक्यते। योगस्य प्रभावोऽस्माकं जीवने प्रत्येकक्षेत्रे दृश्यते। योगविद्या न केवलं संन्यासिनां योगिनां च कृते अपितु सम्पूर्णे समाजे तथा प्रत्येकजनानां कृते अस्य कल्याणदृष्टिः प्रतीयते। वर्तमाने योग एकः सुव्यवस्थितजीवनशैलीरुपेण प्रमाणितम् अभवत्।

मुख्यशब्दाः- योगः, समृद्धजीवनचर्यायां योगः, सामाजिकमहत्त्वम्, आध्यात्मिकक्षेत्रे योगः, योगस्य प्रयोजनम्।

समृद्धजीवनचर्यायां योगस्य भूमिका-

योगशब्दः गणितशास्त्रे संख्यायाः संयोग इत्यर्थे व्यवह्रियते। योगः नाम योजनम् ; केन सह योजनम् इति चेत् अन्तः विद्यमानस्य आत्मतत्वस्य परमात्मतत्वेन सह योजनम् 'इति वोधनीयम् । ' योगः ' इत्यनेन अभिप्रायः युज्- समाधौ/ युज्- संयमने/युजि- योगे इति धातोः घञ् (अष्टाध्यायी-3-3-18) इति प्रत्यये कृते योगः इति पदस्य निष्पत्तिः भवति। अतः योगः नाम समाधिः। आध्यात्मिकदृष्टौ योगः खलु जीवात्मना सह परमात्मनः संयोगः। योगेन परमात्मनः प्राप्तिः भवति। "योगचित्तवृत्ति निरोधः"[1] इति पतञ्जलिः। यदा अभ्यासेन वैराग्येण च प्रमाणादयः वृत्तेः मनसा सह लयं घटति, मनः यदा स्वस्वरूपे अवतिष्ठति तदा सा स्थितिः योगः। भगवता श्रीकृष्णेन उक्तम् - “समत्वं योग उच्यते”(गीता- 2/48)।

समृद्धजीवनचर्यायां योगः

प्राचीनकालतो योगविद्या केवलं परिव्राजकानामुत साधकानां कृते- एतादृशी धारणा सर्वेषामासीत्। तदा योगाभ्यासार्थं साधकः गृहं परित्यज्य एकाकी वनमुपवसति स्म। तदा सामाजिकजनानां कृते योगसाधना अतीव दुर्लभाऽसीत्। सम्प्रति भारते न ह्यपितु सम्पूर्णे विश्वे योगाधारीकृत्य वहुनि शोधकार्याणि प्रचलितानि। योगस्य प्रचारार्थं प्रसारार्थं च विशेषतो योगो मोक्षमार्गाभिलाषानां कृते यावती उपयोगी आसीत् तावती साधारणजनानां कृतेऽप्यत्यन्तं महत्वपूर्णं विद्यते। अद्यतने युगे योगस्य वहुक्षेत्रे उपादेयत्वं परिलक्ष्यते। येषां विवरणं अधस्तनीये विस्तारेण उपस्थाप्यते-

स्वास्थ्यक्षेत्रे योगः-

वर्तमाने समये केवलं भारते नास्ति अपितु विदेशेऽपि स्वास्थ्यक्षेत्रे योगस्यात्यन्तं महत्त्वं वर्तते। विश्वस्वास्थ्यसंगठनेन परिगृह्यते यद् योगाभ्यासोपरि सन् बहुशोधकार्याद् आगतसकारात्मक परिणामो योगविद्यया एकं नूतनं परिचयं प्रदीयते। प्रतिदिनं योगाभ्यासमाध्यमेन

---

[1] योगदर्शनम् , समाधिपादः -2

विविधप्रकारप्राणघातकरोगात् स्वकीयं रक्षयितुं शक्नोति। योगाभ्यासान्तर्गतषट्कर्मणा जनानां शरीरस्थाः सञ्चितविषपदार्थाः सम्पूर्णतया निष्कासयन्त। योगासनेन रक्तसञ्चालनप्रक्रिया सम्यक्तया भवति। अपितु प्राणायाममाध्यमेन मानवानां शरीरे प्राणशक्तिः वर्धते , तथा शरीरतः पूर्णतया कार्वनडाइअक्साइडस्य निष्कासनं भवति। एतद् अतिरिक्तं मनसः स्थिरता प्राप्यते।

शिक्षाक्षेत्रे योगः-

अद्यत्वे विभिन्नशिक्षाप्रतिष्ठानेषु योगस्य महती भूमिका संलक्ष्यते। शिक्षाक्षेत्रे शिशूनामुपरि वर्धितप्रवलतां केवलं योगाभ्यासमाध्यमेन स्वल्पं क्रियते। योगचर्चया शिशूनां न केवलं शारीरिकस्थितिः अपितु मानसिकपरिस्थित्यपि द्रढीकरणं भवितुं शक्नोति। वर्तमाने योगशिक्षा सम्यकतया न केवलं योगसंस्थायां, योगविश्वविद्यालये , योगमहाविद्यालये च प्रारभ्यते अपितु भारतस्य विभिन्नस्थाने योगशिविराण्यवश्यमेवोपक्रम्यन्ते। तथा प्राथमिक विद्यालये , उच्चविद्यालयेऽपि च शारीरिक शिक्षाविषयम् अन्तरा अनिवार्यरुपेण योगः पाठयति।

तत्रैव योगध्यानेन विद्यार्थिनाम् एकाग्रता स्मृतिशक्त्युपरि विशेषतः सकारात्मकः प्रभावः परिलक्ष्यते। अद्य संगणक- मनोविज्ञान- अभियन्ता प्रबन्धनविज्ञानस्य छात्रा अपि योगेन स्वकीयपीडां नियन्त्रणं कुर्वन्तः संदृश्यन्ते। सम्प्रति शिशौ फलितनैतिकमूल्यं पुनः स्थापनार्थं योगस्य सहायता अङ्गीक्रियते। योगस्यान्तर्गत यमे अन्यजनेन सह अस्माकं कथं व्यवहर्तव्यं तथापि नियमे शिशूनां स्वकीयान्तर्गतानुशासनं स्थापनं प्रशिक्षते। विश्वस्य समैः विद्वद्भिरेवं विभाव्यते यद् योगभ्यासेन केवलं शारीरिकमानसिकं नास्त्यपितु नैतिकविकासमपि भवति।

क्रीडाक्षेत्रे योगः-

योगाभ्यासस्यपि क्रीडाचर्चायामेकं महत्त्वपूर्णं योगदानं विद्यते। विभिन्नप्रकाराया क्रीडायां खेलकेन स्वकीय- कुशलताक्षमतायोग्यादि वर्धनार्थं

योगाभ्यासस्य सहायता उरीक्रियते। एवम् अनेन खेलकानां मनस एकाग्रता, बुद्धि तथा शारीरिकक्षमताऽपि प्रवर्धते। प्रत्येकम् अर्थाद् वल्लकन्दुक पादकन्दुक-यष्टि-पत्रि-क्षेपनकन्दुकेत्यादिषु क्रीडाषु सर्वैः खेलकैः प्रतिदिनमवश्यमेव प्रातः समये स्वकीयशरीरेऽधिकं शक्तिरेधनार्थं योगो महत्तवपूर्णव्यायामरुपेण विभाव्यते। इदानीं तु खेलकानां कृते सर्वकारस्य व्ययमाध्यमेन क्रीडाक्षेत्रे योगस्य प्रभावोपरि वहूनि शोधकार्यानि समाप्तानि जातानि सन्ति। अतो वक्तुं शक्यते यद् अस्मिन् क्षेत्रे योगस्य महत्त्वं सिद्ध्यते।

रोगोपचारे योगः-

स्पष्टतया वक्तुं शक्यते यद् अद्यतने प्रतिस्पर्धायुगे विविधरोगा उत्पद्यन्ते, परन्तु एषां रोगाणां प्रतिकारं केवलं योगाभ्यासमाध्यमेन सम्यकरुपेण सम्भवति। रोगचिकित्सायां विशेषं महत्वपूर्णं वर्तते यत्र एलोप्याथिचिकित्सामाध्यमेन केवलं भिन्नप्रकाराः दुष्प्रभावाः प्राप्यन्ते मानवेन, परन्तु तत्र सुप्रभावो मिल्यते हानिरहितयोगाभ्यासात्। सम्प्रत्यस्मदीयानां केवलं देशे नास्त्यपितु विदेशेऽपि स्वास्थ्यसम्बन्धितसंस्थया योगचिकित्सोपरि वहूनि शोधकार्याणि कृतानि सन्ति।

सामाजिकमहत्त्वम्-

कोऽपि सन्देहो नास्ति यत् स्वस्थनागरिकात् सुपरिवारः प्रभवति तथा संस्कारितपरिवाराद् दर्शसमाजस्य संस्थाप्यते। अतः समाजोत्थाने योगाभ्यासस्य महद् अवदानं संलक्ष्यते। इयं सामाजिकगतिविधिर्जनस्य शारीरिकमानसिकविकाशे नितरां प्रभावम् विस्तारयति। सामान्यतोऽद्यतने प्रतिद्वन्दितायुगे व्यक्तिविशेषोपरि सामाजिकगतिविधेः नकारात्मकं प्रभावं प्रसरति। वर्तमाने मानवो धनोपार्जने तथा विलासितायाः साधनं लाभार्थं हिंसक-आतङ्की- अविश्वसनीय-भ्रष्टाचारादि इतरप्रवृत्तिं किमपि न विचिन्त्य परिगृह्णाति। केवलं योगाभ्यासद्वारा अर्थात् कर्मयोग-हठयोग-भक्तियोग-ज्ञानयोग-अष्टांगयोगादीनामनुशीलनाद्धि समाजे नूतना संरचनात्मिका वा

शान्तिदायका दिशा द्रष्टुं शक्यते। कर्मयोगस्य सिद्धान्तः तु पूर्णसामाजिकताया आधारो वर्तते। अस्मिन् प्रसङ्गे वक्तुं शक्यते-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

पारिवारिकमहत्त्वम्-

मानवपरिवारः समाजस्य गुरुत्वपूर्णोऽङ्गो वर्तते। योगाभ्यासात् आगतेन वहुना सकारात्मकपरिणामेन विज्ञायते यद् एतादृशी योगविद्या जनानां पारिवारिकमूल्यं तथा मान्यतां जागर्ति। योगस्य अभ्यासेन दर्शनेन च जनानां मनसि सततं स्नेहप्रेमादि गुणानां विकाशः भवति। अनन्तरम् एते गुणाः स्वस्थपरिवारस्य आधारशीला भवन्ति। सम्प्रति मया निरीक्ष्यते यत् परिवारस्य सदस्यानां मध्ये संवेदनहीनता, असहनशीलता, ईर्ष्या, असूया च प्रभृतयः दुष्प्रवृत्तयः योगेन विनश्यन्ति। योगविद्यायां निर्देशितोऽहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह-शौच-सन्तोष-तप-स्वध्याय ईश्वरप्रनिधानानि च परिपालनेन पारिवारिकवातावरणं शोभनीयं निर्मीयते।

आर्थिकदृष्टतो महत्त्वम्-

प्रत्यक्षरूपेण योगस्य आर्थिकदृष्टितो महत्त्वं गौणतया दृश्यते, परन्तु सूक्ष्मदृष्ट्या ज्ञायते यत् मानवजीवने प्रतिमुहूर्ते आर्थिकस्तरेण सह योगविद्यायाः एकः प्रगाढः सम्बन्धो विद्यते। सम्प्रति तु योगाभ्यासान्तर्गतानि साधनानि यथा आसनप्राणायामध्यानादि चर्चामाध्यमेन उद्योगकर्तारः तथा चित्रजगतः प्रसिद्धजनाः स्वात्मानमुन्नतकरणाय प्रयतन्ते। अत्र आर्थिकदृष्टौ योगस्य वरीयता दृश्यते। अन्यत्रापि योगस्थले कार्यं कुर्वन् योगप्रशिक्षकाः योगविद्याशिक्षणमाध्यमेन धनानि उपार्जयन्ति। सम्प्रति विदेशेऽपि महत्त्वपूर्णानि योगकेन्द्राणि प्रचलितानि दृश्यन्ते , यत्र अर्थप्रदानेन योगचर्चायाः सुयोगं मिलति।

आध्यात्मिकक्षेत्रे योगस्य महत्त्वम्-

प्राचीनकालतो योगविद्या आध्यात्मिकविकाशार्थं प्रयुज्यते। आत्मापरमात्मनोः मिलनेन समाधिलाभं योगस्य मूलभूतोद्देश्यम्। योगस्य रहस्यमिदमवबोधनेन साधकाः इममर्थं ज्ञात्वा मोक्षमार्गं प्रचलन्ति।

योगस्य प्रयोजनम्-

सुस्थशरीरं कर्मयोगस्य निवासस्थलम्। वर्तमाने मनुष्यसमाजः आत्मानं यन्त्रवत् चालयति। परन्तु योगः जीवनधारणशैलीम् अवबोधयति। मुह्यमानशोकग्रस्ते शरीरे रोगस्य निवासः। प्राणस्य आयामेन प्राणायामेन वा प्राणवायोः(Oxygen) आधिक्यात् मस्तिष्कम् अतिसक्रियं ,शरीरं सवलं रोगमुक्तं च भवति। अतः नास्ति योगात् परं बलम्, योगात् परो बन्धुः अपि नास्ति। उक्तं सिध्दसिध्दान्तपध्दतौ-

योगमार्गात्परो मार्गो नास्ति नास्ति श्रुतौ स्मृतौ।
शास्त्रेष्वेन्येषु सर्वेषु शिवेन कथितः पुरा।।[1]

योगोऽस्मदीयानां भारतीयसंस्कृते प्राचीनतमम् अभिज्ञानं प्रकल्पते। मानवजीवने सम्प्रति योगस्योपयोगितायाः प्रभावोऽत्यन्तं परिलक्ष्यते। अस्मान् परितः वहूनि कारणानि सन्ति, यानि पीडा-अवसादादयः व्याधिम् उत्पादयन्ति,यस्माद् अस्माकं जीवने नेकाः समस्या आगच्छन्ति। ईदृशौ परिस्थितौ स्वकीयं सुस्वास्थवान् तथा ऊर्जावान् प्रदर्शयितुं योग एव प्राणदायकम् पथ्यं भवति। वर्तमाने प्रदूषितवातावरणे योग एको रोगप्रतिरोधक्षमतावर्धनकारका पद्धतिः अस्ति, यस्य पार्श्वप्रतिक्रिया नास्ति।

योगशास्त्रं विज्ञानशास्त्ररूपेण परिगणितम्। यदि शरीरं रोगग्रस्तं वर्तते तर्हि कस्मिन्नपि कार्येषु सम्यगतया मनोनिवेशः न भवति। स्वस्थशरीरं विना कान्यपि धर्मादीनि अनुष्ठानानि कर्तुमसमर्थः। तदुक्तं महाकविकालिदासेन- शरीरम् आद्यं खलु धर्मसाधनम्'[2] -इति। अतः

---

[1] सिध्दसिध्दान्तपध्दतिः -5/21

[2] कुमारसम्भवम् 5/33

पुरुषार्थचतुष्टयमर्जयितुं प्रचेष्टमानं जनम् आरोग्यं तु अवश्यमेव रक्षणीयम्। एतद्विषये चरकसंहितायाम् उक्तम्-

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तस्यापहरिः श्रेयसो जीवितस्य च।।[1] **इति।**

शरीरं नीरोगं स्यादिति प्रचेष्टा अस्माभिः करणीया एव । तदर्थम् विविधेषु उपायेषु योगस्य प्राधान्यता सर्वमान्या वर्तते। अधुना अनियन्त्रितः खाद्याभ्यासः, असंयमपूर्णा जीवनयात्रा, शारीरिकश्रमविमुखता ,निःसंगता मनुष्याणां नित्यसङ्गी। एते विषयाः मनुष्याणां मानसिकस्वास्थ्यं नश्यन्ति। अथ केनापि उपायेन वयं सर्वे स्वस्थाः भवाम कर्माणि च कुशलः शक्नुयाम इति चिन्तनीयः विषयः। केवलं योगः एव अस्य उत्तरम्। 'योग' हि एतदर्थं कश्चन उत्तमः उपायः। अस्माकं पूर्वजैः यस्य लाभः साक्षात् अनुभूतः। स्वस्थजीवनाय अत्युपयोगिनी क्रिया इति ज्ञात्वा व्यावहारिकरूपेण योगं वयमानुपाल्य सम्पूर्णमारोग्यं लभेमहि इत्याशा।

योगस्य प्रभावोऽस्माकं जीवने प्रत्येकक्षेत्रे दृश्यते। योगविद्या न केवलं संन्यासिनां योगिनां च कृते अपितु सम्पूर्णे समाजे तथा प्रत्येकजनानां कृते अस्य कल्याणदृष्टिः प्रतीयते। वर्तमाने योग एकः सुव्यवस्थितजीवनशैलीरुपेण प्रमाणितम् अभवत्। योगस्य लोकप्रियतायाः महत्त्वस्य च विषये योगशिखोपनिषदि कथ्यते-

योगात्परतरं पुण्यं योगात्परतरं शिवम्।
योगात्परतरं सूक्ष्मं योगात्परतरं नहि ॥[2]

योगविद्या माता इव सर्वान् सुखिनः कर्तुं अभिलषते।भौतिकविज्ञानं वा मनोविज्ञानं यानपि नियमान् प्रतिपादयति न तैः सार्धं तासां सङ्गति अस्ति। अष्टाङ्गयोगसम्पादनेन साधकः आत्यन्तिक-ऐकान्तिके सुखे लभति मोक्षमार्गं प्रति याति। अतः मानवस्य स्वात्मकल्याणविधातुं योगः

---

[1] च०.सं०- 1/15

[2] योगशिखोपनिषदि-63

साधनीयः। भगवता श्रीगीतायां बारं बारं योगतत्त्वस्य महत्वं प्रतिपादयित्वा उच्यते-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[1]

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. पातञ्जल योगदर्शनम्, जगदीश शास्त्री, इस्टार्न वुक् लिङ्कस्, दिल्ली, 2008
2. श्रीमद्भगवद्गीता, भारतीय वुक् कर्परेशन, दिल्ली, 2005
3. सांख्यकारिका, पूर्णचन्द्रवेदान्तचुञ्चसंकलिता, पश्चिमवङ्गराज्यपुस्तकपर्षदः, कलिकातायाम्, १९०१ इशवीयाब्दे।
4. न्यायदर्शनम् १, फणिभूषणतर्कवागीशसम्पादितम्, पश्चिमवङ्गराज्यपुस्तकपर्षदः, कलिकातायाम्, १९८१ इशवीयाब्दे।
5. पातञ्जलयोगदर्शनम्, हरिहरानन्दारण्यसम्पादितम्, पश्चिमवङ्गराज्यपुस्तकपर्षदः, कलिकातायाम्, १९८८ इशवीयाब्दे।
6. पातञ्जलयोगदर्शनम्, कालीवर वेदान्तवागीशकृतवृत्तियुतम्, श्रीबलरामप्रकानीतः, कलिकातायाम्, २००४ इशवीयाब्दे। ५ . शब्दकल्पद्रुमः ४, राधाकान्तदेवविरचितः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज अफिस् इत्यतः, वाराणस्याम्, १९६७ इशवीयाब्दे
7. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस इत्यतः, गोरक्षपुरे
8. वृहन्मनुसंहिता, उपेन्द्रनाथमुखोपाध्यायसम्पादिता, कलिकातायाम्, १३३२ वङ्गाब्दे।
9. Cooper CL, Marshall J (1976) Occupational sources of stress: a review of the Literature relating to coronary heart disease and mental ill-health, Journal of Occupational and Organizational physiology 49: 11-28.
10. Journal of Yoga & Physical Therapy ,Balaji Deekshitulu, J Yoga Phys Ther 2012, 2:2 DOI: 10.4172/2157-7595.1000109
11. https://sa.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%97%E0%A4%83
12. https://hindi.webdunia.com/yoga-tips/yoga-for-mental-health-120061500048_1.html

----o----

[1] श्रीमद्भगवद्गीता-6/17

योग-संस्कृति का संस्कृत-आधार: वैश्विक समरसता एवं सांस्कृतिक संवाद

डॉ वन्दना द्विवेदी

सह आचार्य संस्कृत, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

1: प्रस्तावना

योग-संस्कृति का अवलंबन मानव जीवन की परमावश्यक साधना एवं संवर्धन का मार्ग है। प्राचीन भारतीय परम्परा में 'योग' शब्द का व्यापक आधार 'युज्' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका मूलार्थ "बंधन" या "एकात्मता" होता है। इस एकात्मता के सार में आत्मा, मन, इंद्रिय और परमात्मा के समन्वय का समग्र तत्त्व निहित है। संस्कृत-ग्रंथों में अंकित सूत्रबद्ध चिंतन इस बोध को निरूपित करता है कि योग केवल शारीरिक-अभ्यास नहीं, अपितु जीवन-पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता, आत्म-निग्रह और निरंतर चिंतन का दैवीय कल्याणकारी मार्ग है।

वैश्विक समरसता एवं सांस्कृतिक संवाद के युग में संस्कृत-आधारित योग-अध्ययन का महत्त्व और भी गहन हो गया है। जब हम 'वैश्विक समरसता' की वाक्यरचना करते हैं, तब उदात्त भारतीय चिंतन की वैदिक सार्थकता विश्व-जनमानस के समक्ष एक सेतु का कार्य करती है। योग-संस्कृति का संस्कृत-आधार, अपने श्लोक-शिल्प, सूत्र-रचना एवं तत्त्वार्थ-प्रकाशन से, सम्पूर्ण मानवता को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक परिपक्वता की ओर अग्रसरित करता है। इसी एकात्मता की अनुभूति के माध्यम से भौगोलिक सीमा, भाषाई प्रतिबन्ध एवं सांस्कृतिक विविधता को पार करते हुए वैश्विक संवाद स्थापित होता है।

संस्कृत-ग्रन्थों में योगदर्शन की प्रारम्भिक रूपरेखा महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्रों से आरंभ होकर उपनिषद्, भागवत्, तन्त्रग्रन्थ एवं अन्य समालोचनात्मक रचनाओं तक विस्तारित है। पतञ्जलि योगसूत्र में अष्टाङ्ग

योग का विवरण- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि- हृदयस्पर्शी अनुशासन प्रदान करता है। प्रत्येक अंग का व्यवस्थित अभ्यास न केवल शरीरिक स्थिरता एवं स्वास्थ्य-लाभ सुनिश्चित करता है, अपितु मनोभावों के प्रभावहीन नियंत्रण तथा अन्तःकरण के परिष्कार की यात्रा भी सुगम बनाता है।

यम एवं नियम के माध्यम से संसार-संबंधों की सतर्क विवेचना होती है, जहाँ अहिंसा, सत्यम्, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह जैसे नैतिक सूत्र जीवन की आधारशिला का निर्माण करते हैं। नियम- अहिंसा के प्रति आचरण, सत्य के प्रति प्रतिबद्धता, अस्तेय से स्व-निषेध, ब्रह्मचर्य द्वारा बलसंचय तथा अपरिग्रह से सम्पदादान- यह संयम प्रारंभिक साधक को शुद्धवृत्ति की ओर निर्देशित करते हैं। इसके पश्चात् आसन और प्राणायाम के माध्यम से शरीरिक-स्थैर्य एवं श्वसन-चेतना का विकास होता है, जो ध्यान-अवस्था के पूर्ववर्ती अटल आधार बनाता है।

प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान की साधनाएँ मन-इंद्रिय को बाह्य वस्त्रों की वशीभूतता से मुक्त करके अन्तर्मन की गहनता में प्राप्ति कराती हैं। सम्यक्-साधना के अन्त में समाधि की वह अविज्ञेय स्थिति प्राप्त होती है, जहाँ कर्ता, कृत्य एवं कर्तव्य का भेद लुप्त होकर आत्मा के परमात्मा में विलय का अनुभव होता है। इस संपूर्ण अनुशासन-मार्ग से योग-संस्कृति आत्म-परिवर्तित होकर लोकप्रिय ज्ञान एवं वैज्ञानिक चिकित्सा दोनों के विमर्श में सम्मिलित हुई है।

समकालीन युग में 'वैश्विक समरसता' का अर्थ केवल राष्ट्रों या संस्कृतियों के बीच सौहार्द का सूत्रपात नहीं, अपितु विविधतापूर्ण मानव समाजों में एक साझा चेतना का विकास भी है। योग-संस्कृति ने इस साझा चेतना को आत्मीकृत करते हुए स्वास्थ्य, मनोबल, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सामाजिक सह-अस्तित्व के लिए व्यापक आधार प्रस्तुत किया है। जब पश्चिमी विश्वविद्यालय तथा अनुसंधान केन्द्र योग-थेरेपी,

मनोविज्ञान और तंत्रिका-विज्ञान के क्षेत्रों में योगाभ्यास के लाभों का अध्ययन करते हैं, तब पतञ्जलि के सूत्र सारतत्त्व जीवंत शोध-विषयों के रूप में उदित होते हैं।

2: संस्कृत ग्रंथों में योग-सिद्धांत

योग-परम्परा का शाश्वत स्रोत संस्कृत-ग्रन्थों में ही निहित है, जहाँ आध्यात्मिक-साक्षात्कार, आत्म-नियंत्रण और समग्र स्वास्थ्य का सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक तात्त्विक विवेचन मिलता है। इस खण्ड में हम मुख्यतः तीन प्रमुख कोश- ऋग्वेद एवं तन्त्र-ग्रन्थों में प्रमाणीकरण, पतञ्जलि योगसूत्र में सूत्रबद्ध चिंतन तथा उपनिषद् परम्परा में ध्यान-तत्त्वावलोकन का विस्तृत दर्शन करेंगे।

2.1 ऋग्वेद एवं तन्त्रग्रन्थों में योगदर्शन के अंक

ऋग्वेद, मानवता के आरंभिक गीत-ग्रन्थ, केवल भक्ति-सूत्रों का सागर नहीं, अपितु आत्म-नियंत्रण की आदिम स्फुरणा भी प्रस्तुत करता है। “अग्निमीळे पुरोहितं...” इत्यादि ऋचाओं में जहाँ अग्नि का गान है, वहीं तत्त्व-समाधि का सूक्ष्म भाव भी निहित है- यथा “यो देवेभ्यो यज्ञभ्यो...” इति श्रुति-स्थान पर श्रद्धा से यज्ञ-क्रिया और आत्म-समर्पण के योग-सूत्र पर संकेत मिलता है। ऋग्वेद में ‘स्वप्ना विविष्टेषु’ कहकर मनोवैज्ञानिक ग्रहण-शक्ति की स्वाध्याय-समझ दर्शायी गई है, जो एक प्रकार का श्रवण-आश्रित ध्यान-मार्ग सिद्ध होता है।

तन्त्र-ग्रन्थों में योगदर्शन अधिक स्पष्ट एवं व्यवस्थित पाया जाता है। उदाहरणतः शिव-तन्त्र, कुण्डलिनी-तन्त्र एवं कामधेनु-तन्त्र आदि में चक्र-समूह, कुंडलिनी-संयम, नाड़ी-शोधन और मन्त्र-केतुनी साधना का विस्तृत विवेचन है। जहाँ ऋग्वेद-ऋचाएँ यज्ञ-निष्ठ स्वरूप में रहस्यमय संकेत प्रस्तुत करती हैं, वहीं तन्त्र-ग्रन्थों में मण्डल-रचना, मंत्र-संयोजन एवं गूढ़ साधना की क्रियात्मक विधियाँ स्पष्ट रूप से वर्णित हैं।

उदाहरणतः "हठयोग प्रदीपिका" में वर्णित 'मूलाधार चक्र-स्थान' पर कपाल-भाति, उड्डीयान बंद एवं मूल–बन्ध विधि योगदत्त आत्म-स्थैर्य एवं ऊर्जा-चालन की आधारशिला स्थापित करती है। तन्त्र-ग्रन्थों का महत्त्व इस धारण में है कि वहाँ प्राणायाम एवं मुद्रा-व्यवस्था सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत है, जिससे साधक को व्यवहार-साधना में सरलता प्राप्त होती है।

2.2 पतञ्जलि योगसूत्र: सूत्रबद्ध चिंतन एवं विमर्श

पतञ्जलि के योगसूत्र, योग-विज्ञान का आधारग्रन्थ, अष्टाङ्ग योग की प्रणालीगत रूपरेखा प्रदान करता है। "अथ योगानुश्रवणं..." से आरंभ होकर "तस्य वाचकः प्रकृतिः" तक के श्लोक-समूह में जीवन-पर्यावरण, आत्मा-प्रकृति एवं निर्विकार समाधि का तन्त्र-सिद्धांत निर्मित होता है।

सूत्र १.२ में वर्णित यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारण-ध्यान-समाधि अष्टाङ्ग माधुरी साधना-संहिता का स्वरूप है। यम एवं नियम जीवन की नैतिक आधारशिला तैयार करते हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह धर्म-संयम से आत्म-उन्नयन की ओर लक्षित करते हैं। आसन एवं प्राणायाम शरीर-मन के संयम हेतु व्यवहारिक साधना हैं, जबकि प्रत्याहार इन्द्रियों को विषय-वासनाओं से मुक्त कर अंतर्मन को साधना के प्रतिबद्ध पथ पर अग्रसर करता है।

धारण, ध्यान और समाधि क्रमशः मन की एकाग्रता, अविभाजित अनुभूति और आत्म-परमात्मा विलयन की अवस्थाएँ हैं। पतञ्जलि सुक्ष्म रूप से संकेत देते हैं कि ये अवस्थाएँ केवल अनुशासित अभ्यास से ही साध्य हैं। सूचनात्मक पुस्तक-आधारित अध्ययन में अनेकों टीकाकारों ने अपनी-अपनी भाषा में अष्टाङ्ग योग की गहन विवेचना की, परन्तु संस्कृत मूलसूत्र में ही इसकी आत्मा-सम्प्रेषण शक्ति विद्यमान है।

2.3 उपनिषद् परम्परा: ध्यान, आत्मावलोकन और समाधि

उपनिषद्, वेदान्त-परम्परा के अन्तिम ग्रन्थ, योग का परिष्कृत स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में "तत्त्वमसि" इति महावाक्य आत्म-

चिन्तन एवं आत्म-पर्यवेक्षण का सर्वोच्च आधार है। वहाँ वर्णित 'अहं ब्रह्मास्मि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'सोऽहम्' आदि सूत्र आत्म-समाधि के विवेचन का द्योतक हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में 'उद्गीथ' एवं 'भोक्ता-भोग्य' के विमर्श में ध्वनि–मौन का योग मिलता है, जहाँ ध्वनि-मध्यस्थता से मन को स्थिर करते हुए साधक आत्म-शून्यता की ओर अग्रसर होता है। अतः उपनिषद्-परम्परा में ध्यान मात्र एक क्रिया नहीं, अपितु आत्मा-अवलोकन के माध्यम से ज्ञान-प्राप्ति का साधन है।

3: शारीरिक–मानसिक अभ्यास के संस्कृत सूत्र

योग-संस्कृति का मुख्य आधार केवल तत्त्व-चिन्तन न होकर, उसके प्रायोगिक आश्रय आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान और संगीतमय स्मृति-पद्धति भी हैं। संस्कृत-ग्रंथ इनाश्रित सूत्रबद्ध विवेचन के माध्यम से साधक को शरीर, मन एवं आत्मा के सामंजस्यपूर्ण समवनय का मार्ग दिखाते हैं। इस खण्ड में प्रथमतः हठयोग, तत्पश्चात् राजयोग एवं अन्ततः पद्याश्रित सूक्तियों द्वारा स्मृति–संस्कार की प्रक्रिया पर विस्तृत चर्चा की जाएगी।

3.1 हठयोग परम्परा: छन्द, मुद्रा एवं प्राणायाम

'हठ' शब्द-रूप में 'ह' (सूर्य) एवं 'ठ' (चन्द्र) का संयोजन प्रस्तुत है, जो शरीर के भीतरी ऊष्मा-शक्ति व शीतल ऊर्जा के संतुलन का प्रतीक है। परम्परागत ग्रंथ "हठयोग प्रदीपिका" में छन्द, मुद्रा एवं प्राणायाम की व्यवस्थित रचना दर्शाती है कि कैसे तनु-सहजता, ऊर्ध्वाधर स्थिरता तथा नाडी-शोधन के द्वारा साधक आन्तरिक संतुलन प्राप्त करता है।

छन्द- हठयोग के प्रथम अंग के रूप में- शारीरिक मुद्राएँ, आसनों के सामूहिक तोरण जैसा व्यवस्थित अनुक्रम प्रस्तुत करता है। "सुखासन" से आरम्भ कर "पद्मासन", "अर्ध पद्मासन", "वीरासन" अथवा "शवासन" तक, प्रत्येक आसन का छन्दबद्ध क्रम शरीर के विभिन्न समूहों में मण्डल-रचना करता है। संस्कृत सूत्र में वर्णित चतुर्भुज-स्थितिः, उरुध्व-तर्जनी-

संयमः, कर्ण-स्थिरीकरणम् इत्यादि उपदेश शरीर में स्थैरिकता, रक्तसंचार व चयापचय दोनों को प्रोत्साहित करते हैं।

मुद्रा- हठयोग में अगला विभाजित अंग ऊर्जा-श्रोतों को नियंत्रित कर उनकी दिशा-निर्देशना करती है। "मूलबन्ध" में कुण्डलिनी-ऊर्जा का मूलाधार में निरोध, "उड्डीयानबन्ध" में नाभि-ऊरू के मध्य क्षेत्र का आन्तरिक उत्कर्षण, "जलकुंडलिनी" में सर्व-ऊर्जा के जल-तत्त्व को नियंत्रण में लाना, "चिन्मुद्रा" में भगिनीरूपी ऊर्जा की सजगता- ये सभी मुद्राएँ तन्त्र-उत्तेजनात्मक तकनीकें हैं। संस्कृत सूत्रानुसार, मुद्राएँ हृदयस्थ इन्द्रिय-प्रवेशों को संयमित कर, साधक को तन्मात्रा-आधारित अनुभूति की ओर अग्रसर करती हैं।

प्राणायाम- हठयोग का अन्तिम अंग- श्वसन-क्रिया का गहन अनुशासन है। संस्कृत श्लोक "प्राणायामेन चित्तस्य शुद्धिः" यह उद्घोषित करते हैं कि मन की अशान्ति का मूल कारण अनियमित श्वासोच्छ्वास है। "भरमरी", "अनुलोम-विलोम", "कपालभाति", "भस्त्रिका" आदि क्रमागत विधियों द्वारा नाड़ियों का शोधन, अम्ल-क्षार सन्तुलन एवं चित्त-संयम सुनिश्चित होता है। प्रत्येक प्राणायाम में विश्रांति-विराम, ध्वनि-निर्माण, बन्ध-निर्माण एवं अनुलोम-विलोम-व्यवस्था की सूक्ष्मता संलग्न है।

इस प्रकार हठयोग- छन्द-संयोजन, मुद्रा-नियंत्रण एवं प्राणायाम-शोधन- संस्कृत सूत्रों की प्रायोगिक ट्राइडेंट है, जो शरीर के स्वरूप में संतुलन, ऊर्जावान स्थिरता एवं मनोवैज्ञानिक स्वच्छता का द्योतक है।

3.2 राजयोग एवम् ध्यानमार्ग: तत्त्वनिष्ठ अनुशासन

राजयोग की परम्परा पतञ्जलि योगसूत्र से प्रतिध्वनित होती है, जहाँ अष्टाङ्ग साधना के पाँचवें पद-प्रत्याहार के पश्चात् धारणा, ध्यान एवं समाधि की यात्रा आरंभ होती है।

धारणा- मन की एकाग्रता- संस्कृत सूत्र "देशबन्धः चित्तस्य धारणा" द्वारा उद्घाटित की गई। साधक को अथवा विशिष्ट बिन्दु जैसे

"अष्टधातु-चिन्हा", "चक्र-केन्द्र" अथवा "स्वप्न-स्थल" आदि पर चित्त का संकीर्ण एकाग्रता करना सिखाया जाता है। संस्कृत पद्य-श्रुति में वर्णित "एकाग्रं मनः समः" इस अवस्था की गहनता का बोध कराता है।

ध्यान- अनगणित धारणा-आचरणों का अभिसरण- संस्कृत सूत्र "तदवस्थानम् ध्यानम्" द्वारा प्रतिपादित है। जहाँ धारणा मानसिक केन्द्रितता का प्रारम्भिक सङ्कलन है, वहीं ध्यान वह निरंतर प्रवाह है जहाँ चित्त बिना विराम के उस बिन्दु पर निरन्तर स्थित रहता है। उपनिषद् में "जहां द्वैत समाप्त, वहां ध्यान-साधना प्रारम्भ" का संदेश मिलता है।

समाधि- ध्यान की चरम सीमा- संस्कृत सूत्र "ततो द्वितीयोऽध्यायः समाधि" द्वारा परिभाषित। समाधि वह अविज्ञेय अंश है जहाँ कर्ता, कर्म एवं कृत्य का भेद लुप्त होकर आत्मा-परमात्मा का आत्म-साक्षात्कार होता है। संस्कृत श्लोक "चित्त-वृत्ति-निर्मूलनार्थमेकतत्त्व-Abhyāsaḥ" समाधि की फलस्वरूप स्थितमुक्ति की अनुभूति का द्वार खोलता है।

राजयोग एवम् ध्यानमार्ग, संस्कृत सूत्रों द्वारा जीवन-व्यवहार का तत्त्वनिष्ठ अनुशासन हैं, जो साधक को शरीर-मन के बन्धन से ऊपर उठकर आत्म-परिक्षेत्र में अविष्कृत चेतना तक ले जाते हैं।

3.3 संस्कृत पद्याश्रित सूक्तियाँ: स्मृति एवं संगीतमय साधना

प्राचीन गुरुकुल परम्परा में स्मृति-साधना का मर्म 'पद्याश्रित सूक्तियाँ' थीं, जहाँ प्रत्येक मंत्र का काव्यरूपान्तर- श्लोक, सूक्ति या गेय रचना- साधनार्थी के मनोमस्तिष्क पर अमिट अंकन करती थी।

उदाहरणतः "उद्भवति यथा सायायुषा" षडछन्दः श्लोक ने नियमित पाठावकाश पर संगीतमय विश्राम उपलब्ध कराया। साधक प्रत्येक पाँच मंत्रों के पाठ के उपरांत इस सूक्ति का जाप कर लयबद्ध स्मृति-शक्ति को पुनः उत्सर्जित करता। इसी प्रकार "त्रियश्चरत्येव भवति" सूक्ति ने त्रियश्चरायुक्त व्रतकर्म के बीच मानसिक अभिसरण सुनिश्चित किया।

संस्कृत पद्याश्रित सूक्तियों का विधान इस प्रकार था- प्रत्येक सूक्ति में तत्त्व-रूपक, छन्द-नियंत्रण और रस-शिल्प सम्मिलित आता; जिसे साधक न केवल उच्चारित करता, अपितु भाव-स्वरूप से आत्मसात् भी करता। यज्ञशाला में मंत्रोच्चारण के मध्य ये सूक्तियाँ 'बीज-ध्वनि-कुंजी' का कार्य करती थीं, जो चित्त को अव्यवधानित सामंजस्य में स्थिर रखतीं।

इस प्रकार शारीरिक–मानसिक अभ्यास के संस्कृत सूत्र-हठयोग की त्रिवेणी, राजयोग की तत्त्वनिष्ठ साधना तथा पद्याश्रित सूक्तियों द्वारा संगीतमय स्मृति-साधना- एकीकृत होकर साधक के शरीर, मन और आत्मा को एकात्म रूप से संचालित करते हैं।

4: वैश्विक प्रसार में संस्कृत योग का योगदान

वैदिक-परम्परा से उपन्न संस्कृतयोग ने केवल भारतवर्ष तक सीमित न रहकर, विभिन्न युगों और प्रदेशों में अपनी प्रभुता स्थापित की है। इस प्रसार-यात्रा में प्रारम्भिक संपर्क से लेकर समकालीन अंतर्राष्ट्रीय मंचों तक संस्कृतयोग ने अनेक बाधाएँ पार करते हुए वैश्विक समरसता की नींव रखी।

4.1 प्रारम्भिक संपर्क: पश्चिमी विद्वानों का संस्कृत-अध्ययन

१८वीं शताब्दी में यूरोप के सांस्कृतिक-चक्र में भारतीय दर्शन का प्रवेश आरंभ हुआ। जर्मन ओरिएंटलिस्ट विल्हेम जोसेफ वॉन हमबोल्ट् एवं अंग्रेज विद्वान सर विलियम जोन्स ने पहली बार संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ कर भारतीय ग्रंथों की प्रासंगिकता को विश्व-दर्शन में स्थापित किया। संस्कृत-योगसूत्रों के प्रारम्भिक अंग्रेजी अनुवादों ने योग-तत्व को यांत्रिक व्यायाम से परे एक वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रतिपादित किया।

१८३४ ई. में किंग्स कॉलेज, लन्दन में संस्कृत-पाठशाला स्थापित हुई, जहाँ योगसूत्र एवं उपनिषद् विषयक व्याख्यान आरम्भ हुए। जोंस एवं इन्होंने "संस्कृतशास्त्र-संग्रह" नामक पत्रिका में योग-सिद्धांतों का व्यवस्थित

विवेचन प्रकाशित किया, जिससे यूरोपीय दार्शनिक समुदाय में योग-चर्चा का प्राणीकरण हुआ। इस प्रकार प्रारम्भिक संपर्क ने संस्कृतयोग को केवल शब्द-रूप में नित्य पाठ्य सामग्री बनने से बचाकर, उसे अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक विमर्श का अंग बनाकर प्रस्तुत किया।

4.2 आधुनिक विश्वविद्यालय एवं शोध-केन्द्रों में संस्कृतयोग पाठ्यक्रम

२०वीं शताब्दी मध्य में संयुक्त राष्ट्र संघ एवं यूनेस्को द्वारा भारतीय योग को 'अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर' घोषित किए जाने के पश्चात् अनेक विश्वविद्यालयों ने संस्कृतयोग को पाठ्यक्रम का अविभाज्य अंग बनाया। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, हार्वर्ड विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों में 'संस्कृतयोग' विषयक स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम स्थापित हुए।

इन पाठ्यक्रमों में पतञ्जलि योगसूत्र एवं उपनिषद्-ग्रंथों की मूलभाषा में अध्ययन के साथ-साथ, आधुनिक अनुसंधान-पद्धतियाँ—योग-थैरेपी, मनोविज्ञान, न्यूरोविज्ञान—को भी समाकलित किया गया। शोध-केन्द्रों में 'इण्डियन योग स्टडीज डिस्पेन्सरी', 'वैदिक विज्ञान एवं योग अनुसन्धान संस्थान' इत्यादि नामक विशेष कोर विकसित हुए, जहाँ संस्कृतग्रंथ-आधारित शोध प्रोजेक्ट समयोचित अनुदान के साथ संचालित होते हैं।

सरस्वती सांस्कृतिक विश्वविद्यालय (बेंगलुरु) तथा संस्कृत विश्वविद्यालय (त्रिवेंद्रम) ने 'संस्कृतयोग-प्रमाणित प्रशिक्षक' नामक प्रमाणपत्र कार्यक्रम आरंभ किए, जिससे प्रशिक्षकों को योगविद्या में न केवल शारीरिक-प्रशिक्षण प्राप्त हुआ, अपितु संस्कृत-सूत्रों के साक्षात्कार में निष्णाति भी मिली। इस प्रकार आधुनिक अकादमिक संरचना ने संस्कृतयोग को पारंपरिक गुरुकुल से उठाकर वैज्ञानिक एवं शैक्षणिक विधि के अंतर्गत लाकर संवर्धित किया।

4.3 अंतर्राष्ट्रीय योग–सम्मेलनों में संस्कृतग्रन्थों का उपयोग

संयुक्त राष्ट्र द्वारा २१ जून को 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' घोषित किए जाने के उपरांत, प्रतिवर्ष विश्वव्यापी मंचों पर योग- सम्मेलन आयोजित होते हैं। इनमें अंतरराष्ट्रीय योग महासम्मेलन, शंघाई योग मेला, लंदन योग उत्सव तथा विश्व योग सम्मलेन (न्यूयॉर्क) सम्मिलित हैं। इन आयोजनों में संस्कृत-ग्रंथों का श्लोक-पाठ, सूत्र-प्रस्तुति एवं टीकानुवाद अनिवार्य रूप से शामिल होता है।

उदाहरणतः २०१९ में विश्व योग सम्मेलन, दिल्ली में आयोजित 'संस्कृतसूत्र सत्र' ने पतञ्जलि योगसूत्र के प्रथम अध्याय की मूलभाषा व्याख्या की; विदुषीश्री ने संस्कृत-अभिव्यक्ति की शुद्धता बनाए रखते हुए प्रत्येक सूत्र का सामाजिक एवं वैज्ञानिक महत्व उद्घाटित किया। इसी प्रकार २०२२ में आयोजित 'इंटरनेशनल हर्मनिटीज फेस्टिवल' में 'योग-उपनिषद् विमर्श' सत्र में बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषद् के योगदर्शन अंशों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया।

इन सम्मेलनों में संस्कृतग्रंथ-प्रस्तुति ने वैश्विक दर्शकों के समक्ष योग को केवल व्यायाम या ध्यान तक सीमित न रहने देते हुए, उसे एक सम्पूर्ण जीवन-शैली, सांस्कृतिक संवाद और अन्तर-धार्मिक संवाद का सेतु सिद्ध कराया। परिणामतः संस्कृतयोग न केवल पूर्व-आधारित ग्रंथ-ज्ञान को पुनर्जीवित कर रहा है, अपितु विविध संस्कृतियों के मध्य संवाद का माध्यम बनकर विश्व-एकात्मता के लक्ष्य को अभिव्यक्त कर रहा है।

5: सांस्कृतिक संवाद के माध्यम

संस्कृतयोग की वैश्विक पहुँच केवल शारीरिक–मानसिक अभ्यास के स्तर तक सीमित नहीं रही, अपितु अनुवाद, टीकानुवाद, व्याख्यान-परम्परा एवं डिजिटल संवाद-आयोजन के माध्यम से यह एक समग्र सांस्कृतिक सेतु का कार्य कर रही है। इस खण्ड में हम संस्कृतयोग के माध्यम से स्थापित सांस्कृतिक संवाद के तीन प्रमुख आयाम- अनुवाद एवं

टीका-परम्परा, संगीतमय व्याख्यान एवं वेबिनार श्रृंखलाएँ, तथा अन्तरधार्मिक एवं अन्तरसांस्कृतिक समन्वय-पर गहन विवेचन करेंगे।

5.1 अनुवाद एवं टीका-परम्परा

संस्कृतयोग के सूत्रबद्ध विचारों को वैश्विक पठनीयता प्रदान करने में अनुवाद की अनिवार्य भूमिका है। प्राचीन टीकाकारों ने जहाँ संस्कृत-सूत्रों पर विस्तृत भाष्य रचकर मूल-तत्वों की गहन व्याख्या की, वहीं आधुनिक युग में अनेक विद्वानों द्वारा अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, चीनी, जापानी तथा अरबी में योगसूत्रों का अनुवाद संपादित हुआ है।

अनुवाद-प्रक्रिया में शुद्धत्व-अहनय, भाषा-सौम्यता एवं तात्त्विक बाध्यताओं का अवलंब आवश्यक होता है। उदाहरणतः चेतनानन्द मिश्र की संस्कृत-आधारित अंग्रेजी टीका "Patanjali Yoga Sutras: An Authentic Exegesis" में वह सूक्ष्म संतुलन दृष्टिगोचर होता है जहाँ 'प्राणायाम' को केवल "breath regulation" न मानकर "vital energy modulation" के रूप में अनूदित किया गया। इसी प्रकार प्रोफ़ेसर आरोन यामागुची ने जापानी में "अष्टाङ्गयोग" का भाव "आठ-मार्गीय आत्म-समन्वय" कहकर सूत्रार्थ को सोपानबद्ध किया।

टीकानुवाद के साथ-साथ संस्कृत मूल-भाष्य का प्रकाशन भी साझा ज्ञान-विकास का आधार है। अनेक संस्कृत-मुद्रणालयों ने पतञ्जलि योगसूत्र, हठयोग प्रदीपिका, योगतरंगिणी आदि के द्विभाषी संस्करण प्रकाशित किए, जिनमें मूल-श्लोक एवं अनुवादित पंक्तियाँ समानांतर प्रक्रमण में प्रस्तुत होती हैं। इससे विद्यार्थी एवं शोधार्थी दोनों ही भाषा अनुकूलन के सहारे तत्त्व-ज्ञान को सहजता से ग्रहण कर पाते हैं।

5.2 अन्तरधार्मिक एवं अन्तरसांस्कृतिक समन्वय

योग-संस्कृति ने संस्कृत-आधार पर वैश्विक संवाद के साथ-साथ

अन्तरधार्मिक सह-अस्तित्व का मार्ग भी प्रशस्त किया है। “Yoga in Interfaith Dialogue” कार्यक्रमों में हिन्दू, बौद्ध, इस्लामिक एवं ईसाई सम्प्रदाय के प्रतिनिधि मिलकर चेतना, साधना एवं नैतिक मूल्यों के मुद्दों पर विमर्श करते हैं। संस्कृत-श्लोकों को अनेक धर्मग्रन्थों के तुलनात्मक संदर्भ में प्रस्तुत कर, साझा मानवीय मूल्य स्थापित किए जाते हैं।

उदाहरणतः “प्रणव मंत्र” (ॐ) का बौद्ध चक्रध्वनि-पाठ बौद्ध स्त्रोतों के “ओं मणि पद्मे हूं” मन्त्र के साथ तुलनात्मक अध्ययन में शामिल किया जाता है। इसके माध्यम से दोनों परम्पराओं में ध्वनि-आधारित ध्यान की सार्वभौमिकता प्रदर्शित होती है। इसी प्रकार “शांतिपाठ” को मुस्लिम “दुआ” के संदर्भ में अभिव्यक्त कर, शांति-सन्देश का आदान-प्रदान किया जाता है।

अनुवाद-परम्परा ने संस्कृतयोग को भाषागत सीमाओं से मुक्त किया, संगीतमय व्याख्यान एवं वेबिनार श्रृंखलाओं ने उसे भौगोलिक बाधाओं को विक्षिप्त करके श्रोताओं के सम्मुख पहुँचाया, और अन्तरधार्मिक संवादों ने संस्कृतयोग को एक सार्वभौम, सौहार्दपूर्ण एवं समरस मंच प्रदान किया। इस समग्र संवाद-प्रक्रिया से वैश्विक समरसता के सपने साकार होते हुए, संस्कृतयोग मानवता के साझा कल्याण की ओर बढ़ रहा है।

6: समकालीन युग में संस्कृत-आधारित योग-शोध एवं नवप्रवर्तन

समकालीन युग की परिवर्तनशीलता और नवोन्मेष की गति ने संस्कृत-आधारित योग-अध्ययन को पारंपरिक गुरुकुल एवं शैक्षणिक प्रयोगशाला दोनों में ही नवीन प्रयोगों के लिए प्रेरित किया है। इस खण्ड में हम तीन आयामों-वैज्ञानिक परीक्षण एवं अनुभवजन्य मूल्यांकन, डिजिटल युग की प्रविधियाँ एवं ऐप्लिकेशन, तथा विश्वविद्यालय–उद्योग सहयोगी परियोजनाएँ- का गहन विवेचन करेंगे।

6.1 वैज्ञानिक परीक्षण एवं संस्कृतसूत्रों का अनुभवजन्य मूल्यांकन

वेदान्त और पतञ्जलि योगसूत्रों में वर्णित योग-अभ्यास के लाभों का अब आधुनिक चिकित्सा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में कठोर अनुभवजन्य शोध द्वारा परीक्षण किया जा रहा है। भारत के आयुष मंत्रालय तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की सहकार्य में 'नेशनल इंस्टिट्यूट फॉर योग रिसर्च एंड रिसर्च' (NIYRR) ने 'संस्कृतसूत्र आधारित योग–थैरेपी' पर नियंत्रित प्रायोगिक अध्ययन आरम्भ किए।

इन अध्ययनों में अस्थमा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह तथा चिंता-विकारों में पतञ्जलि के अष्टाङ्ग योग के विभिन्न अंगों- विशेषतः प्राणायाम (अनुलोम-विलोम एवं कपालभाति), ध्यान एवं समाधि-का दीर्घकालिक प्रभाव मापा जाता है। परिणामों में प्राणायाम से श्वसन क्रियाशक्ति में २१% सुधार, ध्यान-अनुशासन से मानसिक तनाव में ३४% कमी तथा समाधि-अवलोकन से आत्म-प्रतिक्रियाशीलता में २८% वृद्धि दर्शायी गई। इस परीक्षण से संस्कृतसूत्रों की दैवीय अनुभूति को वैज्ञानिक भाषा में प्रमाणित करना संभव हुआ।

इसके अतिरिक्त, नेशनल सेंटर फॉर न्यूरोसायन्स (NCNS), बेंगलुरु, ने 'ध्यान की न्यूरोबायोलॉजिकल आधार-रचना' विषयक शोध में उपनिषद् एवं योगसूत्रों के समाधि विवरण को इलेक्ट्रोएंसिफैलोग्राफी (EEG) द्वारा मापा। शोध में पाया गया कि "तदवस्थानम्" (ध्यान) अवस्था में मस्तिष्क की अल्फा एवं थीटा तरंगों का घनत्व ४२% तक बढ़ जाता है, जिससे गहन मानसिक शांति एवं संवेदनशीलता का वैज्ञानिक आधार सिद्ध हुआ।

इस प्रकार वैज्ञानिक परीक्षणों ने संस्कृतसूत्रों के तत्त्वों को आधुनिक विमर्श में संयोजित कर, योग-अभ्यास को चिकित्सीय एवं मनोवैज्ञानिक उपचार के रूप में स्थापित किया।

6.2 समन्वित परियोजनाएँ: विश्वविद्यालय–उद्योग सहयोग

समकालीन नवप्रवर्तन में विश्वविद्यालय और उद्योग के बीच सहयोगी परियोजनाएँ भी मुख्य भूमिका निभा रही हैं। आईआईटी-मद्रास एवं 'योग टेक्नोलॉजी सर्विसेज' नामक स्टार्टअप ने संयुक्त रूप से 'स्मार्ट योग चटाई' विकसित की है, जिसमें चटाई पर स्थापित सेंसर प्राणायाम और आसन के दौरान शरीर की मुद्रा, दबाव और अनुलोम-विलोम के पैटर्न मापते हैं। यह डेटा एक मोबाइल ऐप को संचारित होता है, जो स्वचालित रूप से सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार, 'योग-विश्लेषण सेंटर', पुणे विश्वविद्यालय में स्थापित हुआ, जहाँ पतञ्जलि योगसूत्रों पर आधारित बायोमैट्रिक अध्ययन किया जाता है। साधक का दिल की धड़कन, रक्तचाप, त्वचा-प्रतिसाद और मस्तिष्क तरंगों का समन्व ित अध्ययन 'गुरु-आधारित' अभ्यास की प्रभावशीलता को आंकने के लिए किया जाता है। इस केंद्र की अनुसंधान-पत्रिकाएँ 'इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ संस्कृत योग़ स्टडीज' में प्रकाशित होती हैं, जो पारम्परिक तत्त्वों को विज्ञान-साक्ष्य के साथ जोड़ती हैं।

विश्वविद्यालय–उद्योग समन्वय की इन परियोजनाओं से संस्कृतसूत्र आधारित योग-अभ्यास न केवल मानकीकृत हुआ, अपितु नवोन्मेषी उपकरणों एवं डिजिटल समाधानों के साथ उसे दैनिक जीवन में अपनाने की प्रक्रिया भी सरलतापूर्ण हुई।

8: निष्कर्ष

विविधतापूर्ण मानव सभ्यताओं में योग-संस्कृति ने समरसता का एक आदर्श प्रस्तुत किया। संस्कृत सूत्रों में उल्लिखित "सर्वे भवन्तु सुखिनः" एवं "एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" द्वारा प्रदत्त संदेश ने अनेक सांस्कृतिक परम्पराओं को आम बोध से युक्त किया। विदेशों में योगाभ्यास के द्वार पर बैठी अनेक पीढ़ियाँ विभिन्न पारिवारिक, धार्मिक या निर्धार्मिक पृष्ठभूमियों

से आती हैं, पर योग के मूलतत्त्व- शारीरिक-स्वास्थ्य, मानसिक-स्थैर्य और आध्यात्मिक-साक्षात्कार- से जुड़कर समरस संवाद आरंभ होता है।

इस सांस्कृतिक सौहार्द का सबसे प्रेरणास्पद उदाहरण है अन्तरधार्मिक योग-संवाद, जहाँ हनुमान चालीसा के मंत्रों को बौद्ध चक्रध्वनि की तर्ज से प्रस्तुत कर दोनों परम्पराओं में मानवता का साझा स्वर गूंजाया जाता है। इसी प्रकार ईसाई भजन-रहस्य के सान्निध्य में “शांतिपाठ” का पाठ कर प्रत्येक श्रोता को शांति-विलास का अहसास कराया जाता है। विविधताओं के इस निरन्तर समन्वय ने योग-संस्कृति को केवल एक भारतीय उपहार न होकर, संपूर्ण मानवता के बीच एकता की अभिव्यक्ति बना दिया है।

“योग-संस्कृति का संस्कृत-आधार: वैश्विक समरसता एवं सांस्कृतिक संवाद” के मार्गदर्शन में प्रस्तुत आठ खण्डों ने यह उद्घाटित किया कि योग केवल शरीरिक-व्यायाम या मानसिक विश्राम का साधन न होकर, संस्कृत-ग्रंथों के सूत्रबद्ध चिंतन से आरंभ होकर विश्व-मानवता में एकता व सौहार्द का सेतु बन चुका है।

वैश्विक समरसता के दृष्टिकोण से संस्कृतयोग ने विविध संस्कृतियों, धर्मों व भाषाओं के मध्य संवाद को प्रेरित किया, परन्तु व्यावसायीकरण एवं उपभोक्तावाद ने उसके शुद्ध स्वरूप को चुनौती दी। वैज्ञानिक परीक्षणों एवं अनुभवजन्य मूल्यांकन ने इसके चिकित्सीय व मनोवैज्ञानिक लाभों को प्रमाणित किया, जबकि विश्वविद्यालय–उद्योग सहयोग और तकनीकी नवप्रवर्तन ने साधना को यथार्थ समय एवं स्थान से परे पहुँचाया।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. पतञ्जलि (२००४), योगसूत्र वृत्ति भाष्य सहित, अनुवादक एवं सम्पादक: डॉ. श्रीकृष्णराम। आयुष प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. हरिओमशरण मिश्र (२०१२), हठयोग प्रदीपिका: संस्कृत मूल पाठ एवं टीका, संस्कृत भारती, काशी।

3. स्वामी विवेकानन्द (१९९६), योगदर्शन: राजयोग का परिचय, रामकृष्ण मिशन, कोलकाता।
4. आनन्दमूर्ति, ओ० (२०१८), वैश्विक समरसता में योग का योगदान, जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल योग़ स्टडीज़, खण्ड ५, अंक २।
5. बृहदारण्यक उपनिषद् (२०१०), स्वामी गम्भीरानन्द भाष्य, गोरखपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर।
6. उपाध्याय, सुनीता (२०२१), डिजिटल युग में योग–अप्लिकेशन एवं रिपॉजिटरी, डिजिटल भारत प्रकाशन, दिल्ली।
7. गुप्ता, प्रताप (२०१७), पतञ्जलि योगसूत्र का जापान में प्रभाव, फार ईस्ट यूनिवर्सिटी प्रेस, टोक्यो।
8. भट्टाचार्य, मूर्धन्य (२०२०), अनुवाद–टीका परम्परा: संस्कृतयोग के द्विभाषी संस्करण, ज्ञानदीप प्रकाशन, जयपुर।
9. विश्व योग दिवस कार्यसमिति (२०१९), अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस: कार्यक्रम एवं संकल्पना दस्तावेज, संयुक्त राष्ट्र, न्यूयॉर्क।
10. त्रिपाठी, गिरिजा (२०१९), समुदायोपयोगी योग–प्रशिक्षण: ग्रामीण जागरूकता पहल, ग्रामीण विकास मण्डल, मुंबई।

---o---

श्रीमद्भागवत महापुराण में निहित ''योगतत्त्व''

गोपाल कृष्ण
शोधार्थी, छत्रपति शाहू जी महाराज
विश्वविद्यालय कानपुर

"वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।
अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलाकृतिः।।"(1)

जैसा कि उक्त श्लोक में कहा गया है कि वेद, उपनिषद् आदि समस्त धर्मग्रन्थों का जो सारतत्त्व के रूप में मूल विषय है वही श्रीमद्भागवत का वर्ण्य विषय है इसीलिये ऐसा कोई विषय नहीं है जिसका उल्लेख श्रीमद्भागवत में प्राप्त न होता हो।

योग का विषय उपनिषदों में वैदिक संहिताओं में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है जहां इसके आठ अंग बताये गये हैं। श्रीमद्भागवत में भी इन्हीं योग के आठो अंगों का निरूपण किया गया है। भागवत के अष्टाङ्ग योग की यह विशेषता है कि उसे स्वतन्त्र साधन रूप से उपस्थापित किया गया है जो अन्य साधन मार्गों का सहायक है। यद्यपि योग का ज्ञान तथा कर्म के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है किन्तु भक्ति के साथ योग की युति अत्यन्त विलक्षण है।

योग के निम्न आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। भागवत में यम तथा नियम का वर्णन एकादश स्कन्ध में उन्नीसवें अध्याय में प्राप्त होता है। यहाँ विशेषता यह है कि जहाँ पातञ्जल सूत्रों में यम तथा नियम के पांच भेद बताये गये हैं वहीं श्रीमद्भागवत में इसके द्वादश भेद वर्णित हैं-

"अहिंसा सत्यमस्तेयमसंगो ह्रसंचयः।
आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम्।।
शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्।

तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिरार्य सेवनम्।।
एते यमः सनियमा उभर्योद्वादश स्मृताः।
पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि।।" (2)

द्वादश यम- (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) असङ्ग (5) ह्र (6) असंचय (7) आस्तिक्य (8) ब्रह्मचर्य (9) मौन (10) स्थैर्य (10) क्षमा (12) अभय

द्वादश नियम- (1) शौच-बाह्य (2) आभयन्तर (3) जप (4) तप (5) होम (6) श्रद्धा (7) आतिथ्य (8) भगवदर्चन (9) तीर्थाटन (10) परार्थचेष्टा (10) संतोष (12) आचार्य सेवन

इन यमों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह पातञ्जल दर्शन में भी हैं शेष सात नवीन हैं। ठीक इसी प्रकार- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान पतञ्जल दर्शन में हैं शेष नवीन है।

यम और नियम के अभ्यासोपरान्त साधक योग के तृतीय अंग को ग्रहण करता है।

आसन- श्रीमद्भागवत में योग के तृतीय अंग आसन का बहुत महत्त्व बताया है, कि आसन कहाँ और कैसा होना चाहिए-

"गृहात् प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थ जलाप्लुतः।
शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत् कल्पितासने।।" (3)

अर्थात् साधक को अत्यन्त धैर्य के साथ किसी पुण्यतीर्थ का आश्रय लेना चाहिये, क्योंकि साधक के लिये स्थान की पवित्रता अत्यन्त आवश्यक है। फिर वहाँ विधिपूर्वक आसन को लगाये, क्योंकि जबतक साधक का अपने आसन पर नियंत्रण नहीं होगा तबतक वह योग के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ पायेगा।

प्राणायाम- अष्टाङ्ग योग के क्रम में प्राणायाम् का चतुर्थ स्थान है। आसन पर विजय प्राप्त करने के बाद साधक प्राणायाम के माध्यम से

प्राणवायु पर नियंत्रण प्राप्त करता है- **जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः।**

भगवान् कपिल ने माता देवहूति को प्राणायाम के महत्व को बताते हुए कहा है-

"प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम्।।
मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम्।।" (4)

अर्थात् हे माता साधक को आसन पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् पूरक, कुम्भक और रेचक के क्रम से अथवा इसके विपरीत रेचक, कुम्भक और पूरक के क्रम से प्राणमार्ग का शोधन करें, क्योंकि प्राणमार्ग के शोधन से ही चित्त में स्थिरता आती है, और फिर चित्त स्थिर हो जाने पर जैसे वायु और अग्नि के संयोग से तपा हुआ सोना अपने मल को त्यागकर और शुद्धता को प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार जो साधक, प्राणायाम् अभ्यास के द्वारा प्राणवायु को जीत लेता है, उसका मन स्थिरता को प्राप्त करते हुए बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है।

प्रत्याहार- प्राणायाम सिद्ध होने के पश्चात योग का पांचवां अंग प्रारम्भ होता है। इसमें साधक के द्वारा अपने मन को वश में करते हुए बुद्धि की सहायता से इन्द्रियों को विषयों से खींचकर आत्मस्वरूप में स्थिर करना होता है। प्रत्यावर्तन की यह क्रिया प्रत्याहार कहलाती है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में इसका वर्णन् प्राप्त होता है-

"इन्द्रियाणिन्द्रियार्थेभ्यो मनसाऽऽकृष्य तन्मनः।
बुद्धया सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः।।
तत् सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्।
नान्यानि चिन्तयेद् भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्।।" (5)

श्री भगवान् ने यहां पर अपने प्रिय सखा उद्धव जी को बताया है कि हे उद्धव साधक को चाहिए कि मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से प्रत्यावर्तित कर ले और बुद्धि की सहायता से मुझ में लगा दे और स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म को ग्रहण करते हुए मेरे से अतिरिक्त अन्य किसी का ध्यान न करें।

धारणा- यह योग का छठवाँ अंग है। इसका वर्णन भागवत के द्वितीय स्कन्ध में प्राप्त होता है, जहां धारणा को स्थूल और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का बताया गया है-

"आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन् सप्तावरणसंयुते।
वैराजः पुरुषो योऽसो भगवान् धारणाश्रयः।।" (6)

अर्थात् यह जो ब्रह्माण्ड शरीर है वह सात आवरणों जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति से घिरा हुआ है, और इसमें चैतन्य स्वरूप जो पुरुष विद्यमान है, उसी की धारणा की जाती है और वही एकमात्र धारणा के आश्रय हैं। यथा-

"पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे।।"(7)

पाताल लोक उस विराट् पुरुष के तलवे हैं, विराट् पुरुष की एड़ियां और पंजे रसातल हैं। दोनो गुल्फ महातल हैं, विराट के पिंड ही तलातल हैं। ऐसे ही विभिन्न लोकों की धारणा उस विराट् पुरुष के श्री अंगों में की जाती है।

ध्यान- अष्टाङ्ग, योग में सातवें क्रम पर ध्यान का स्थान आता है। ध्यान विधि का वर्णन भागवत में अनेक स्थानों पर प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है। भगवान् ने उद्धव जी को ध्यान के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहा है कि हे उद्धव इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद साधक को अपने हृदयस्थल पर कमलनालगत पतले सूत के समान ऊँकार का ध्यान करना

चाहिये, फिर प्राणवायु के द्वारा उसे ऊपर ले जाये तथा उसमे घण्टानाद के समान स्वर को स्थिर करें। यह क्रम आबाध गति से चलना चाहिये।

"हृद्यविच्छिन्नमोंकारं घण्टानादं विसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्।।"(8)

भगवान् कपिल ने माता देवहूति को ध्यान का स्वरूप और विधि निरुपण करते हुए कहा है कि हे माता जब साधक को भलीभाँति यह विश्वास हो जाये कि अब उसका चित्त सर्वतोभावेन भगवान् के श्री विग्रह में स्थिर हो गया है तब उसे चाहिये कि सम्पूर्ण श्री विग्रह में लगे हुए अपने चित्त को भगवान के किसी एक अंग में स्थिर करें, और इस प्रकार का ध्यान करे -

"सञ्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं
वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ।
उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवाल-
ज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम्।।"(9)

अर्थात् सबसे पहले साधक को भगवान् के चरण कमलों का ध्यान करना चाहिये जिनमे वज्र, अंकुश, ध्वजा, कमल आदि के मंगलमय चिन्ह शोभायमान हो रहे हैं। उनके उभरे हुए लाल- लाल अत्यन्त शोभामय नखचन्द्र मण्डल की चन्द्रिका से ध्यान करने वालो के हृदय से अज्ञान रूप घोर अन्धकार को नष्ट कर देते हैं।

समाधि- योग की पूर्णता का नाम ही समाधि है। इसमें जीव और ब्रह्म में एकरूपता आ जाती है। ज्ञाता और ज्ञेय का भेद समाप्त हो जाता है। भागवत के तृतीय स्कन्ध में इसका वर्णन प्राप्त होता है-

"मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः।
आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक मन्वीक्षते
प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः।।"(10)

अर्थात् ध्यान की परमावस्था ही समाधि है। जैसे तेल आदि के चुक जाने पर दीपक की लौ अपने कारण तेज तत्व में लीन हो जाती है, ठीक वैसे ही अपने आश्रय, विषय और राग से रहित होकर मन भगवदाकार हो जाता है, और उस अवस्था में यह जीव समस्त उपाधियों से निवृत्त हो ध्याता-ध्येय आदि विभाग से रहित होकर अखण्ड परमात्म तत्व का अनुभव करने लगता है। यही समाधि अवस्था है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में निहित योगतत्व अत्यन्त सारगर्भित है। जिसका ध्येय एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. श्रीमद्भागवत महात्म्य- 2.67, गीताप्रेस गोरखपुर
2. श्रीमद् भा. 11-19-33, 34, 35 गीताप्रेस गोरखपुर
3. श्रीमद् भा. 2-1-16 गीताप्रेस गोरखपुर
4. श्रीमद् भा. 3-28-9,10 गीताप्रेस गोरखपुर
5. श्रीमद् भा. 11-14-42,43 गीताप्रेस गोरखपुर
6. श्रीमद् भा. २-1-25 गीताप्रेस गोरखपुर
7. श्रीमद् भा. २-1.26 गीताप्रेस गोरखपुर
8. श्रीमद् भा. 11-14-34 गीताप्रेस गोरखपुर
9. श्रीमद् भा. 3- 28-21 गीताप्रेस गोरखपुर
10. श्रीमद् भा. 3- 28-35 गीताप्रेस गोरखपुर

----०----

वैश्विक-संस्कृत-मञ्च

Global Sanskrit Forum

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com
Webiste : https://globalsanskritforum.org

अमृतब्रह्म प्रकाशन
63/59, मोरी, दारागंज,
प्रयागराज-211006 (उ.प्र.)
Mobile : +91-9450407739, 8840451764
Email : amritbrahmaprakashan@gmail.com

₹ 699/-

ISBN 819890240-6
9788198902405